

राष्ट्रीय चेतना के प्रकाश में

भारत में राष्ट्रीयता का स्वरूप

(प्रारम्भ से मुस्लिम काल तक)

डा० सतीश चन्द्र मित्तल

प्राक्कथन

यदि कोई विद्वान अथवा इतिहासकार मुझसे भारत के सन्दर्भ में पूछे कि राष्ट्र, राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद क्या है तो यह मेरे लिए सचमुच आश्चर्य की बात होगी। निःसन्देह विश्व के प्राचीनतम भारत के ग्रन्थ ऋग्वेद से लेकर अन्य वैदिक ग्रन्थों, पुराणों, रामायण, महाभारत तथा विभिन्न संस्कृत साहित्य में इसकी विस्तृत चर्चा की गई है। यदि कोई पाश्चात्य जगत में 18-19वीं शताब्दियों से पूर्व राष्ट्रवाद की चर्चा करे तो अधिक आश्चर्य होगा और यदि इस्लाम मजहब में राष्ट्रवाद ढूंढे तो इससे भी अधिक आश्चर्य होगा।

प्रस्तुत ग्रन्थ में भारतीय राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद की संकल्पना का संक्षेप में वर्णन किया गया है। इसमें भारत के अतीत से लेकर मुगलों के शासन (1526-1707 ई.) तथा सार रूप में सर्वेक्षण किया गया है। इसमें राष्ट्रीयता की भारतीय अवधारणा, वैशिष्ट्य के साथ इसके क्रमिक विकास का वर्णन किया गया है। मातृभूमि के प्रति अटूट प्रेम तथा सांस्कृतिक जीवन मूल्यों के विभिन्न तत्वों का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। साथ ही इसके सन्दर्भ में पाश्चात्य भ्रांतियों को भी स्पष्ट किया है। पुस्तक में समय-समय पर विदेशी आक्रमणों के साथ, इसकी अस्मिता के लिये किये गये अक्षुण्ण प्रयासों की चर्चा की गयी है। प्रमाणों से यह भली भांति ज्ञात होता है कि इस्लाम मजहब, राष्ट्रवाद को स्वीकार नहीं करता है, बल्कि इसे अपने प्रसार में सबसे बड़ी बाधा मानता है। जहां एक ओर पठानों तथा मुगल शासकों द्वारा भारत में इस्लामीकरण तथा गुलामीकरण के प्रयास हुए, वहां राजा दाहिर, पृथ्वीराज चौहान, राणा सांगा, हेमचन्द्र विक्रमादित्य, महाराणा प्रताप, रानी दुर्गावती, शिवाजी तथा गुरु गोविंद सिंह के भारतीय जीवनमूल्यों की रक्षा के

लिए सतत संघर्ष हुए। वामपंथियों ने भ्रम फैलाने के लिए जहां बाबर, अकबर, औरंगजेब को 'राष्ट्रीय शासक' कहा, वहां हेमचन्द्र, महाराणा प्रताप, शिवाजी तथा गुरुगोविन्द के राष्ट्रगत विचारों तथा प्रयासों की अवहेलना कर, उनके स्वतन्त्रता के लिए किये गये प्रयत्नों को तोड़ मरोड़कर प्रस्तुत किया। इस ग्रन्थ में उनके कपोलकल्पित कथनों की आलोचना की गई। अन्त में मुस्लिम शासन के लम्बे काल खण्ड में, हिन्दुओं द्वारा प्रस्थापित भक्ति आन्दोलन तथा इसमें सम्मिलित अनेक सन्तों, भक्तों, सुधारकों की संक्षिप्त चर्चा की है।

प्रस्तु ग्रन्थ के लिए लेखक उन सभी श्रेष्ठ विद्वानों, विचारकों, लेखकों तथा इतिहासकारों का कृतज्ञ है जिन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इसके लेखन में सहायता दी। उपरोक्त रचना के लिए मैं, श्री बाल मुकन्द, राष्ट्रीय संगठन सचिव, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना का विशेष कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे इस लघु ग्रन्थ को लिखने के लिए सतत आग्रह तथा प्रोत्साहन दिया। पुस्तक के लेखन के लिए मैं अपने प्रिय पुत्र आशीष मित्तल का भी आभारी हूँ।

आशा है प्रस्तुत ग्रन्थ देश की युवा पीढ़ी को, भारतीय राष्ट्रीय संकल्पना को समझने में सहायक होगा ताकि हमारा देश भारत एक सशक्त, सबल, सुदृढ़ तथा समृद्ध हो सके।

– सतीश चन्द्र मित्तल

विषय अनुक्रमणिका

प्राक्कथन	पृष्ठ संख्या
	(i) - (ii)
अध्याय एक : भारतीय राष्ट्र चिंतन के मूल तत्त्व	1
अध्याय दो : प्राचीन काल में भारतीय राष्ट्रीयता का विकास	40
अध्याय तीन : भारत में मुस्लिम शासन तथा राष्ट्रीयता	87
अध्याय चार : भक्ति आन्दोलन : एक महान राष्ट्रीय जागरण	150
उपसंहार	191
सन्दर्भ सूची	199



डा० सतीश चन्द्र मित्तल

जन्म	: सन् 1938 ई. में
शिक्षा	: एम०ए० (इतिहास तथा राजनीति विज्ञान), पीएच.डी.
अध्यवसाय	: सेवानिवृत्त प्रोफेसर, इतिहास-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय
सम्बद्धता	: विद्या-भारती, भारतीय-इतिहास-अनुसंधान-परिषद् तथा भारतीय इतिहास कांग्रेस
सम्प्राति	: कार्यकारी अध्यक्ष, अखिल भारतीय इतिहास-संकलन योजना

प्रमुख पुस्तकें :

1. फ्रीडम मूवमेंट इन पंजाब
2. सोर्सेज ऑन नेशनल मूवमेंट इन इण्डिया
3. हरियाणा : ए हिस्टोरिकल पर्सपेक्टिव (1761-1966)
4. सेलेक्टेड एनोटेटेड बिब्लियोग्राफी ऑन फ्रीडम मूवमेंट इन इण्डिया : पंजाब एण्ड हरियाणा
5. इण्डिया डिस्टर्टेड : ए स्टडी आफ हिस्टोरियन्स ऑन इण्डिया (3 भागों में)
6. मॉडर्न इण्डिया
7. भारत का सामाजिक-आर्थिक इतिहास
8. विश्व में साम्राज्यवादी साम्यवाद का विकास तथा पतन
9. साम्यवाद का सच
10. भारत के राष्ट्र-चिन्तकों का वैचारिक दर्शन तथा इतिहास-दृष्टि
11. आधुनिक भारतीय इतिहास की प्रमुख भ्रान्तियाँ
12. 1857 का स्वातन्त्र्य समर : एक पुनरावलोकन (हिंदी, कन्नड़ एवं गुजराती-3 भाषाओं में)
13. मुस्लिम शासक तथा भारतीय जनसमाज
14. अविस्मरणीय विजयनगर साम्राज्य तथा महाराजा कृष्णदेवराय
15. 1857 : द वनवासी (ट्राइबल) लीडरशिप (अंग्रेजी एवं हिन्दी - 2 भाषाओं में)
16. क्या पंजाब अंग्रेजों के प्रति वफादार रहा ?
17. ब्रिटिश-इतिहासकार तथा भारत
18. काँग्रेस : अंग्रेज भक्ति से राजसत्ता तक
19. मराठा शक्ति का उदय : महान संगठक शिवाजी
20. देशरत्न लाला लाजपतराय
21. राष्ट्रीय चैतन्य के प्रकाश में भारत का स्वाधीनता संघर्ष

इसके अतिरिक्त भी लगभग एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित; अनेक लेख प्रतिष्ठित शोध-पत्रिकाओं, संगोष्ठियों तथा सम्मेलनों में पठित एवं प्रकाशित

अध्याय-एक भारतीय राष्ट्रीय चिन्तन के मूल तत्त्व

राष्ट्र, राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद विश्व के इतिहास में जाने पहचाने शब्द हैं। जहां भारतीय चिंतन में इसकी संकल्पना प्राचीनतम है, वहां पाश्चात्य जगत में इसका चिन्तन 18वीं तथा 19वीं शताब्दी की देन है। एक का आधार मूलतः सांस्कृतिक है, दूसरे का राजनीतिक है। स्वाभाविक है कि दोनों की अवधारणा तथा विकास का क्रम भिन्न रहा है।

भारत के ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में इसे जानने के लिए इसके अर्थ, प्रकृति, व्यापकता तथा इसके आवश्यक तत्वों को जानना आवश्यक होगा। इससे सम्बन्धित अनेक प्रश्न हैं। राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद क्या है? क्या यह कोई प्राचीन अवधारणा अथवा आधुनिक विचार है? इसका विभिन्न देशों में, विभिन्न कालों में क्या स्वरूप रहा? क्या यह भावात्मक अभिव्यक्ति, वर्तमान ग्लोबल चिन्तन में बाधा तो नहीं है?

सामान्य अर्थों में देश एक भौगोलिक इकाई, राज्य एक राजनीतिक रचना तथा राष्ट्र एक भावात्मक अभिव्यक्ति है। देश में इसकी भौगोलिक सीमायें होती हैं। राज्य में क्षेत्र, जनसंख्या, एक निश्चित सरकार तथा प्रभुसत्ता होती है। राष्ट्र मानव की उन भावनाओं का प्रतीक है जिससे वह अपने अतीत से जुड़ा रहता है, वर्तमान में वास करता है, भविष्य की आकांक्षा तथा कल्पना को संजोता है। अतः वह किसी भी देश या राज्य में अपने अतीत, वर्तमान तथा भविष्य से जुड़ा है। इसमें उसके अपने महानपुरुषों, वर्तमान के व्यक्तिगत पूर्वजों तथा आगामी आने वाली पीढ़ियां आती हैं। अतः राष्ट्रवाद भावात्मक, रागात्मक तथा समर्पण भाव का एक अटूट सम्बन्ध है।

राष्ट्रवाद का अर्थ

राष्ट्रवाद अथवा राष्ट्रीयता सम्बन्धी विचार पर पाश्चात्य विचारकों तथा भारतीय तत्त्ववेत्ताओं ने समय-समय पर इसके अर्थ तथा भाव को प्रकट किया है। आधुनिक भारत की राष्ट्रीयता विषयक अवधारणायें मुख्यतः पाश्चात्य चिंतन से प्रभावित हैं। 'इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका' में दिया है,¹ "राष्ट्रीयता एक मनोदशा है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने राष्ट्र के प्रति उच्चतम भक्ति अनुभव करता है।" ब्रिटेन के प्रसिद्ध विद्वान होन्स कोहन ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा,² "राष्ट्रीयता एक विचार है, एक विचार शक्ति है जो मनुष्य के मस्तिष्क तथा हृदय को नये विचारों और मनोभाव से भर देता है और उसकी चेतना को संगठित कर तथा कार्यों में परिवर्तन करने के लिए प्रेरित करता है।" इसी भांति इन्साइक्लोपीडिया आफ सोशल साइंसेज³ में भी इसका विवेचन करते हुए बतलाया गया, "एक विशिष्ट - अधिक व्यापक अर्थ में राष्ट्रीयता वह प्रकृति है जो जीवन के मूल्यों तारतम्य में राष्ट्रीय व्यक्तित्व को एक उच्च स्थान प्रदान करती है।"

भारत के प्राचीन साहित्य में राष्ट्रवाद का महती यशोगान किया गया है। इसे मातृभूमि के सम्मान तथा सुरक्षा के लिए सबकुछ अर्पित करने की, सदैव तत्पर भावना बतलाया गया है। इसे भूमि से सर्वोच्च तथा भावात्मक सम्बन्ध बताया गया है। वैदिक तथा बाद के साहित्य में इस पर बल दिया गया है। इसे राष्ट्र या देश की आत्मा बतलाया है। भारत का राष्ट्रीय जीवन सहस्रों राष्ट्रपुरुषों के कर्म, तप और यज्ञ के कारण सदा जीवनमान और सदाप्रवाही रहा।

विष्णु पुराण⁴ में देश प्रेम एवं भारत भक्ति का वर्णन करते हुए लिखा है -

गायन्ति देवाः किल गीतकानि,
धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्ग भूते,

भवन्ति भूयातः पुरुषा सुरत्वात् । ।

अतः युग युगों में यही भावना बार-बार भारत के अनेक ऋषियों, मुनियों, चिंतकों, लेखकों, सुधारकों, सन्तों तथा भक्तों ने व्यक्त की है। वस्तुतः राष्ट्रवाद का यह यशोगान, यह श्रद्धापूर्ण जिज्ञासा अनेक ग्रन्थों में व्यक्त की गई। महाभारत के शांतिपर्व⁵ में युधिष्ठिर, भीष्म के पास जाकर अपनी जिज्ञासा प्रकट करते हैं तथा राष्ट्र की रक्षा तथा वृद्धि के लिए क्या उपयोगी है? पूछते हैं। इसके उत्तर में भीष्म पितामह करते हैं, “युद्ध में प्राणों की बलि का अवसर आने पर जिस राष्ट्र का ऐसा निश्चय हो जाता है कि इसके संरक्षण या देश की रक्षा करके रहूंगा, उसे ब्रह्मलोक प्राप्त होता है।”

आधुनिक काल में भारत के श्रेष्ठ महानपुरुषों ने राष्ट्र तथा राष्ट्रीयता को बड़ा महत्त्व दिया है। स्वामी विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक, महर्षि अरविन्द, बंकिम चट्टोपाध्याय सभी ने राष्ट्रीयता की भावना को सर्वोत्तम तथा उच्चतम बतलाया है। स्वामी विवेकानन्द⁶ ने भारत की राष्ट्रीय आत्मा धर्म को बतलाया है। लोकमान्य तिलक⁷ ने धर्म को ऊंचा स्थान दिया और राष्ट्र का ईश्वर के साथ एकात्म सम्बन्ध स्थापित किया। उनका कथन है कि ईश्वर तथा हमारा देश एक दूसरे से भिन्न नहीं है। संक्षेप में हमारा देश ईश्वर का ही एक रूप है। महर्षि अरविन्द⁸ ने अपने प्रसिद्ध उत्तरपाड़ा के भाषण में राष्ट्रीयता की व्याख्या करते हुए बोला, “राष्ट्रीयता, राजनीति नहीं, बल्कि एक धर्म है। एक विश्वास है, एक निष्ठा है, सनातन धर्म ही, मेरे लिये राष्ट्रीयता है।”

एक दूसरे स्थान पर उन्होंने कहा,⁹ “राष्ट्रवाद एक धर्म है जो भगवान की देन है। राष्ट्रवाद एक सिद्धांत है जिसे आधारित करता है। राष्ट्रवाद की शक्ति भगवान की शक्ति है राष्ट्रवाद अमर है, वह मर नहीं सकता। भगवान मारे नहीं जा सकते। भगवान को बन्दी नहीं बनाया जा सकता।”

श्री अरविन्द ने राष्ट्रीयता एवं मातृभूमि के प्रति सामंजस्य की भावना व्यक्त

करते हुए ‘भवानी मन्दिर’ में कहा,¹⁰ “राष्ट्र क्या है? हमारी मातृभूमि क्या है? यह कोई भूमि का टुकड़ा, भाषा का अलंकार या मन की कहानी नहीं है। जैसे भवानी महिषामर्दिनी का प्रादुर्भाव करोड़ों देवताओं की शक्ति के मिलने से हुआ था, उसी तरह भारत माता एक शक्ति है जो करोड़ों देशवासियों से मिलकर बनी है, जिस शक्ति को हम भारतवर्ष या भवानी भारती कहते हैं, यह भारत के समस्त लोगों की जीवित जागृत शक्ति है।” अपनी पत्नी मृणालिनी को एक पत्र में¹¹ उन्होंने लिखा था, “अन्य लोग स्वदेश को जड़ पदार्थ, कुछ खेत, वन, पर्वत, नदी भर मानते हैं, लेकिन मैं स्वदेश को मां मानता हूं, इसकी भक्ति और पूजा करता हूं।”

अतः श्री अरविन्द ने राष्ट्रीयता को एक धर्म, भगवान की शक्ति तथा भारत माता के रूप में देखा। उन्होंने इसी भक्ति और शक्ति से राष्ट्रीयता को चित्रित किया।

श्री बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय ने राष्ट्रवाद की व्याख्या सर्वोत्तम धर्म के रूप में की। उन्होंने अपने प्रसिद्ध उपन्यास ‘आनन्दमठ’ में ‘वन्देमातरम्’ को राष्ट्रीय मन्त्र के रूप में प्रस्तुत किया।

वर्तमान काल में भारत के महान चिंतक श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर (श्री गुरुजी)¹² ने राष्ट्रीयता का आधार, राष्ट्र को एक सावयव प्रकृति तथा सांस्कृतिक आधार बतलाया है। उनके अनुसार राष्ट्र में एक भौगोलिक एकता, समान अनुभव, समान ऐतिहासिक विकास तथा समान जीवन मूल्य महत्त्वपूर्ण तत्व हैं।

भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्री मुरारजी देसाई¹³ के अनुसार राष्ट्र का हित ही राष्ट्रीयता है, जो बात राष्ट्र के खिलाफ है, वह राष्ट्रीयता नहीं है।

आधुनिक भारत के प्रसिद्ध इतिहासकारों, समाज शास्त्र के ज्ञाताओं ने राष्ट्रीयता पर गंभीर चिन्तन तथा इसका विशद वर्णन किया है। डॉ. सत्यनारायण दूबे के विचार को निष्कर्ष रूप में देना अनुचित न होगा। उसके शब्दों में, “राष्ट्र के हित में प्रधानता और

प्राथमिकता ही राष्ट्रीयता है,¹⁴ 'राष्ट्रीयता एक विशिष्ट प्रकार का मनोभाव है, एक आध्यात्मिक भावना है, जिसका केन्द्र वह जनसमुदाय होता है जिसे राष्ट्र कहते हैं।'¹⁵ "राष्ट्रीयता की भावना में मातृभूमि, पितृभूमि जन्मभूमि का महत्वपूर्ण स्थान है।"¹⁶

डॉ. दूबे का पुनः कथन है कि "राष्ट्रीयता कोई सुसुप्त भावना नहीं है। यह एक अत्यन्त गतिशील, सक्रिय और उत्तेजक भावना ही है और लोगों की राष्ट्र की समृद्धि के लिए संगठित रूप में प्रयत्न करने के लिए प्रेरित करती है।"¹⁷ संक्षेप में, राष्ट्र सर्वोपरि है, इन अक्षरों में राष्ट्रीयता का सार निहित है।"¹⁸

अतः संक्षेप में राष्ट्रीयता के बारे में यह कहना उचित होगा कि आधुनिक युग में मनुष्य जाति को इस मनोभाव ने जितना प्रभावित और अनुप्राणित किया है, उतना शायद ही किसी अन्य भाव अथवा आदर्श ने किया है।

यूरोप में राष्ट्रवाद का स्वरूप

यूरोपीय जगत में राष्ट्रवाद मुख्यतः एक राजनीतिक विचार है जो सामान्यतः राष्ट्र तथा राज्य में ज्यादा अन्तर नहीं मानता है। ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में यूरोप में राष्ट्रीय राज्यों की संकल्पना विभिन्न देशों में विभिन्न समयों तथा परिस्थितियों में हुई। ज्यादातर राज्यों का निर्माण युद्धों का परिणाम रहा।

'नेशन' लैटिन शब्द 'नाट्यो' (Natio) से माना जाता है। सामान्यतः इसका अर्थ जन्म से जुड़ा है।¹⁹ अर्थात् इसका शाब्दिक अर्थ एक सामाजिक समूह से है जो रक्त सम्बन्ध से जुड़े हैं। वस्तुतः राष्ट्रीयता, राष्ट्रवाद, जन, देश के अर्थ का भी प्रयोग भी भिन्न-भिन्न रूप में हुआ है। इसकी निश्चित व्याख्या नहीं की जा सकती। इसे नगर राज्यों के बृहत्तर स्वरूप के रूप में जाना जाता है।

पाश्चात्य जगत में समाज का निर्माण क्रमशः तीन ऐतिहासिक कालखण्डों में बांटा गया है। ये हैं पहला प्रारम्भ से 500 ई. तक, दूसरा काल 500 ई. से 1500 ई. तक

तथा तीसरा काल 1500 ई. से वर्तमान तक है। इसे प्रीमिटिव युग, मध्य युग तथा आधुनिक युग भी कहा गया है। कुछ यूरोपीयन विद्वानों के अनुसार, यूरोप में आधुनिक अर्थों में राष्ट्र का निर्माण उत्तर मध्य युग में हुआ। जबकि उनमें प्रीमिटिव युग की भावनायें तथा प्रवृत्तियाँ, जो मानव स्वभाव में हैं, विद्यमान हैं, रही। आधुनिक काल में धीरे-धीरे राजनीतिक संगठन को विकसित करने की अवधारणायें बन गई थीं।²⁰

15वीं तथा 16वीं शताब्दी के पुनर्जागरण तथा सुधार आन्दोलनों ने इसे गति दी। यद्यपि प्रो. एफ.एम. पोविक (F.M. Powick) ने इस भावना का निर्माण 1204 ई. में नार्मण्डी की हानि से बताया। जिसमें यह कहा गया है कि नार्मण्डी के कुलीन या तो द्विपों को छोड़ दें, यदि वे इंग्लैण्ड जाना चाहते हैं, या नार्मण्डी रहना चाहते हैं तो इंग्लैण्ड छोड़ दें।²¹ धीरे-धीरे अनेक तत्वों²² जैसे समान भाषा, साहित्य, कानून, प्रतिनिधि सरकार, युद्ध, विदेशी व्यापार आदि ने राष्ट्रीय भावनाओं को प्रोत्साहन दिया।

पाश्चात्य जगत में इंग्लैण्ड अपने को आधुनिक राष्ट्रवाद का मूल प्रारम्भकर्ता मानता है।²³ इसका विकास उत्तर मध्ययुग में बताया गया है। इंग्लैण्ड की राष्ट्रीय भावनाओं के महाकवि शेक्सपीयर के कार्यों – विशेषकर 'हेनरी फिफ्थ' तथा 'रिचर्ड सेकिण्ड' को इस दृष्टि से देखा गया। हेनरी फिफ्थ राजा कहता कि "तुम अच्छे जवान हो जिसके बाजुएं इंग्लैण्ड की बनी हैं। इसी प्रकार की भावनाएँ जान मिल्टन, क्रामवेल, जान लाक, ह्विगो, कोलिंगब्रक, टोरियो, सभी के द्वारा, इंग्लैण्ड के गौरव बढ़ाने वालों के रूप में बताई गई है।

प्रमुख रूप से राष्ट्रीय अस्तित्व या पहचान ने दूसरे देशों के साथ युद्धों ने बड़ा बल दिया। इसने राजनीतिक, आर्थिक, वंशीय, सांस्कृतिक, धार्मिक आधार भी प्रदान किया। हनटिंगटोन²⁴ ने यह माना है कि युद्ध राज्य बनाते हैं तथा राष्ट्रों का निर्माण होता है। माइकेल होवर्ड²⁵ का भी कथन है कि कोई भी राष्ट्र शब्द के सही अर्थों में बिना युद्ध के

राष्ट्र के रूप में जन्म नहीं ले सकता..... कोई भी स्वाभिमानी समुदाय विश्व में एक नवीन तथा स्वतन्त्र कर्ता के रूप में बिना सशस्त्र संघर्ष या चुनौती के स्थापित नहीं हो सकता।”

अतः ब्रिटिश राष्ट्र का निर्माण युद्धों, मुख्यतः फ्रांस के साथ युद्धों तथा नेपोलियन के युद्ध स्वरूप हुआ। बार-बार फ्रांस के संघर्षों ने इंग्लैण्ड, स्काटलैण्ड तथा वेल्स के लोगों को फ्रांस के विरोध में जोड़ दिया। इतना ही इन संघर्षों तथा युद्धों को विश्व की प्रसिद्ध कैथोलिक शक्ति के विरुद्ध प्रोटेस्टेंटों का बतलाया गया। औद्योगिक क्रांति ने व्यापारिक तथा आर्थिक प्रतिस्पर्धा को भी बढ़ा दिया।

सर तेजबहादुर सप्रू²⁶ ने इसे, ‘वियना सन्धि (1815 ई.) का फल’ बताया जिसने यूरोप की व्यापारिक प्रतियोगिता को बढ़ावा दिया। उल्लेखनीय है कि महर्षि अरविन्द यूरोप में राष्ट्रवाद को 18वीं या 19वीं शताब्दी की देन स्वीकार नहीं करते। उन्होंने स्पेंग्यूलर के मत को भी स्वीकार नहीं किया जिसने राजवंशों की समाप्ति के रूप में फ्रांस की क्रांति से इसमें महत्वपूर्ण तत्त्व देखे। वह मार्क्सवादी विचारक के तर्क को भी स्वीकार नहीं करते जो उसे बुर्जुआ के आर्थिक हितों को तर्क संगत बताने की प्रक्रिया का नाम देते हैं।²⁷

इंग्लैण्ड के पश्चात् फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल तथा डेनमार्क में इसका विकास हुआ। फ्रांस की क्रांति तथा नेपोलियन के युद्धों ने समूचे यूरोप अर्थात् मध्य तथा पूर्वी यूरोप में भी चेतना जगाई। यहां यह लिखना आवश्यक है कि इंग्लैण्ड से भी पूर्व जर्मनी में राष्ट्रीय चेतना तथा राष्ट्रीय भाव का विकास हुआ। 1748 ई. में जर्मनी के विख्यात विचारक जे. सी. हर्डर^{27(अ)} ने ‘आईडियाज आन फिलासोफी एण्ड हिस्ट्री ऑफ मैनकाइण्ड’ नामक पुस्तक लिखी। जिसके कारण उसे जर्मनी के ‘सांस्कृतिक राष्ट्रवाद’ का जनक माना जाता है। इस पुस्तक में उसने किसी विदेशी तरीकों के अनुकरण का विरोध किया तथा

उनका मत था कि सच्ची सभ्यता स्थानीय मूल से ही विकसित हो सकती है। उनके अनुसार एक भाषा वाली जनता की अपनी विशिष्ट प्रवृत्ति होती है। उनका कथन है कि ‘प्रत्येक सभ्यता की एक आत्मा’ होती है। यही राष्ट्रीय आत्मा का विचार जर्मनी में फैला। जान फिकटे ने 1808 ई. में ‘ऐड्रेसेज टू नेशन’ नामक पुस्तक द्वारा जर्मन में राष्ट्रीय भावना का पितृभूमि के प्रति निष्ठा बढ़ाई। इसी विचार को आगे हीगेल तथा लियोपोल्ड फान रैन्के (1795-1886 ई.) आगे बढ़ाया। यद्यपि जर्मनी का एकीकरण 1871 ई. में हुआ परन्तु उसमें प्रखर राष्ट्रवाद इंग्लैण्ड अथवा यूरोप के किसी अन्य देश से पूर्व हुआ। इसी भांति इटली के एकीकरण तथा रूस में भी राष्ट्रीयता की नव भावना आई। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इतना ही नहीं यूरोप के बड़े व्यक्ति - आटोमन तुर्की साम्राज्य में भी कुछ चेतना आई। ऐशिया तथा अफ्रीका के अधिकतर देशों में यह राष्ट्रीयता की भावना प्रथम महायुद्ध के पश्चात् पनपी।

आधुनिक चिंतकों मुख्यतः होन्स कोहन²⁸ तथा सी.जे. हेज़ ने 19वीं शताब्दी में प्रचलित राष्ट्रवाद को दो श्रेणी में बांटा है। एक वे जिनका निर्माण पाश्चात्य जगत में हुआ तथा दूसरे वे जो मध्य या पूर्वी यूरोप अपना ऐशिया में विशेषकर जर्मनी, रूस तथा भारत में हुए। लुई एल. सिएण्डर²⁹ ने होन्स कोहन के विचारों को एक चार्ट के माध्यम से दोनों में अन्तर बतलाया है।

लुई सिएण्डर ने अपनी व्याख्या करते हुए, पाश्चात्य राष्ट्रवाद को एक बहुवादी तथा खुला समाज बतलाया जबकि गैर पाश्चात्यवादी राष्ट्रवाद को एक अधिनायकवादी तथा बन्द समाज बतलाया। इसी भांति उसने पाश्चात्य राष्ट्रवाद में राजनीतिक यथार्थ को महत्त्व देने वाला, समान इच्छा तथा समान भविष्य से जुड़ा एकजुट नागरिकों का समूह, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का इच्छुक, आत्मविश्वासी, आशावादी तथा शक्तिशाली मध्यवर्ग से समर्थित बतलाया। जबकि उसने गैर पाश्चात्यवादी राष्ट्रवाद को शाश्वत् एवं आदर्श

पितृभाव रखनेवाला, लोक समुदाय, सामूहिकता का प्रशंसक, आत्म चेतना हीन तथा कुलीन तथा जनता से समर्थित बतलाया।

पाश्चात्य जगत की भ्रामक धारणा

सामान्य भारतीय राष्ट्रवाद के बारे में इसमें आवश्यक तत्त्वों के आधार पर विभिन्न विचारों को व्यक्त किया गया है। साधारणतः इन विचारों को दो प्रकार में विभक्त कर सकते हैं।

प्रथम श्रेणी में वे विचारक हैं जो यह मानते हैं कि भारत में राष्ट्रवाद पश्चिम जगत से लिया गया है। विशेषकर वे इसे इंग्लैण्ड की देन मानते हैं। उनके अनुसार अंग्रेजों से पूर्व भारत में न कोई राष्ट्रवाद का अस्तित्व था और न ही कोई राष्ट्रीय भावनाएँ ही। उनके विचार से भारत में राष्ट्रवाद का उद्भव 19वीं शताब्दी में हुआ।

प्रसिद्ध विद्वान ए.आर. देसाई³⁰ का मत है, “भारतीय राष्ट्रवाद एक आधुनिक विचार है इसका प्रारम्भ ब्रिटिश काल में अनेक क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं की व्यक्तिगत तथा निष्पक्ष शक्तियों द्वारा हुआ, जो भारतीय समाज में ब्रिटिश शासन की अवस्था तथा विश्व की शक्तियों के कारण विकसित हुई।”

एक दूसरे प्रमुख इतिहासकार एस.एल. सीकरी³¹ ने भारत से राष्ट्रवाद के बारे में कहा, “इसके आवश्यक तत्त्वों में कुछ बीज रूप में पैदा हुए, कुछ का विकास हुआ, कुछ ने इसका स्वरूप धारण किया और कुछ ने इसकी विचारधारा तथा तकनीकी को प्रभावित किया। अतः भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के उद्भव, विकास तथा तेजी से प्रगति के उत्तरदायी कारणों, विभिन्न तथा अनेकरूपी हैं।” इसी भाँति एस.सी. मिश्र भी भारत में राष्ट्रवाद का विकास 19वीं शताब्दी में मानते हैं। उनके अनुसार भारत में राष्ट्रवाद का विकास 19वीं शताब्दी में ब्रिटिश राज्य की उपज है। वे इसे देश का राजनीतिक एकत्रीकरण, भारत के पुराने सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था का ध्वंस, आधुनिक शिक्षा

प्रणाली, आधुनिक व्यापार तथा उद्योग का प्रारम्भ और नये सामाजिक वर्ग के उदय को राष्ट्रवाद का आधार मानते हैं। परन्तु अधिकतर भारतीय विद्वान उपरोक्त मत से जरा भी सहमत नहीं हैं। सर तेज बहादुर सप्रू^{31(अ)} ने 1940 में कहा कि भारतीय राष्ट्रीयता निश्चित रूप से यूरोप की इस प्रादेशिक राष्ट्रीयता से भिन्न है जो 100 वर्ष पूर्व की है।

वस्तुतः पाश्चात्य विद्वानों अथवा कुछ अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीय विद्वानों ने भी भ्रमवश यह बतलाया कि राष्ट्रवाद का चिंतन मूलतः एक यूरोपीयन विचार है। कुछ ने आगे बढ़कर यह भ्रम भी फैलाया कि यह इंग्लैण्ड की देन है तथा इसका विकास भारत में 19वीं शताब्दी में हुआ। यह सोचना मूर्खतापूर्ण होगा कि प्रत्येक देश का ऐतिहासिक विकास यूरोप अथवा पश्चिम जगत की देन है। सही बात तो यही है कि इसका विकास विभिन्न देशों में विभिन्न कालों में विभिन्न परिस्थितियों में हुआ। उनकी परिस्थितियाँ तथा उत्तरदायी तत्व भी एकरूप न थे।

भारत एक पुरातन राष्ट्र

निश्चित ही भारतीय राष्ट्र तथा राष्ट्रीयता का विकास अत्यन्त प्राचीन है। यह एक ऐतिहासिक सच्चाई है कि यह विश्व के प्राचीनतम राष्ट्रों में से एक है। कुछ का मत है कि अन्य प्राचीन राष्ट्र चीन, तारतर, अरब व पर्शियन हैं।³²

यूरोपीय राष्ट्रों के विपरीत, भारतीय राष्ट्र मूलतः सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक, सामूहिक व विवेक दृष्टि से सनातन धर्म (वैश्विक) पर आधारित है। इसकी प्रमुखता तथा बल राजनीतिक व आर्थिक की बजाय सांस्कृतिक तथा सामाजिक रहे हैं। यह धर्म पर आधारित है। किसी एक राजनीतिक शक्ति की अपेक्षा राजनीतिक शक्तियों के विकेन्द्रीकरण में विश्वास करता है। यह राज्यों के राष्ट्र पर विश्वास करता है, न कि राष्ट्रों के राज्य पर। यह एक विकासवादी राष्ट्र है, न कि परिस्थितियों की अचानक आवश्यकता तथा मांग की उपज है। यह किसी व्यापारिक या राजनीतिक प्रतिस्पर्धा, प्रतियोगिता या

संघर्ष का परिणाम नहीं है। वैदिक साहित्य में 'नेशन' शब्द को 'राष्ट्र' के रूप में कहा गया है। अतः राष्ट्र एवं राष्ट्रवाद का चिन्तन उतना ही पुराना है जितना वैदिक सभ्यता। राष्ट्रवाद का आधार प्राचीन संस्कृति रही है। यहां तक कि पाश्चात्य सभ्यता में रचे पचे भारत के पूर्व प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने भी माना कि "भारत की एकता का स्वप्न भारतीय के मस्तिष्क ने, सभ्यता के प्रारम्भ से ही स्वीकार किया।"³³

भारत राष्ट्र के तत्त्व

सामान्यतः भारतीय चिन्तकों ने राष्ट्र के लिए दो तत्त्वों को सर्वोच्च स्थान दिया है। यह है प्रथम, निश्चित समान भूमि तथा दूसरे जीवन के समान सांस्कृतिक मूल्य। पहले में भारत तथा इस भूमि के साथ यहां के लोगों का अटूट सम्बन्ध बतलाया है तथा दूसरे में सांस्कृतिक जीवन मूल्यों को विकसित तथा अस्मरणीय काल से बताया है।

अतः राष्ट्र का आधार भौगोलिक तथा सांस्कृतिक एकता रहा है। यह एक समान भूमि को दर्शाता है, जहां लोग रहते थे, जिनमें सांस्कृतिक एकता तथा परम्परायें थीं। अतः इसके अनुसार राष्ट्र किसी समझौते या सहमति का परिणाम नहीं है बल्कि यह स्वनिर्मित है। इसका शरीर भूमि तथा इसकी आत्मा संस्कृति है। इन दोनों तत्त्वों को विस्तार से जानना आवश्यक होगा।

मातृभूमि से अटूट प्रेम

राष्ट्रवाद के चिन्तन तथा व्याख्या का प्रथम प्रमुख आधार भूमि माना है। यजुर्वेद के कुछ मंत्रों में राष्ट्र के गुणों की चर्चा की गई है। इसके अनुसार राष्ट्र उन व्यक्तियों के मिलकर रहने से होता है जो एक निश्चित भूमि पर रहते हैं जो विवेक, बुद्धि को प्रमुखता देते हैं तथा आन्तरिक प्राकृतिक संकटों से सुरक्षा में सक्षम हैं।³⁴

भारतीय राष्ट्र की विस्तृत व्याख्या तथा इसके भूमि से अटूट सम्बन्धों का वर्णन अथर्ववेद के 'पृथ्वी सूक्त' अथवा भूमि सूक्त में किया गया है। इसमें भूमि अथवा

मातृभूमि के प्रति 63 अत्यन्त भावपूर्ण समर्पित मन्त्रों में की गई हैं। इसमें कहा गया है कि यह भूमि चारों ओर ऋषियों तथा विभिन्न भाषाओं के बोलने वाले तथा अनेक परम्पराओं को मानने वाले व्यक्तियों से आच्छादित है। कुछ विद्वानों ने इन पदों को 'वेदों का राष्ट्रीय गीत' कहा है।³⁵ इसमें से कुछ मन्त्र निम्नलिखित हैं। ये मन्त्र अथर्ववेद के 12वें अध्याय में हैं।

"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।"³⁶ अर्थात् मेरी माता भूमि है तथा मैं पृथ्वी का पुत्र हूं। "सा नो भूमिर्विसृजन्ता माता पुत्राय मे पय।"³⁷ यानि भूमि मेरी माता है जो मुझे दूध पिलाती है। इसी भांति एक मन्त्र में कहा है कि "भूमे मातर्निधेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम्।"³⁸ अर्थात् हे मातृभूमि मेरी रक्षा करें।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण मन्त्र³⁹ में कहा है, "त्वज्जातास्तवयि चरन्ति मर्त्याः त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः। तवेमे पृथिवी पंच मानवा येभ्यो ज्योतिरभूतं मर्त्येभ्यः उद्यन्तसूर्यो रश्मि भिरातनोति।।" अर्थात् मातृभूमि (तुम्हारे शरीर से उत्पन्न हुए हम सब मनुष्य) तुम्हारे ऊपर संचार करते हैं। तुम ही द्विपादों और चतुष्पादों का संरक्षण तथा धारण पोषण करती हो। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद ये पञ्चजन निःसन्देह तुम्हारे ही पुत्र हैं। इनके लिए सूर्य उदय होकर प्रकाश देता है।

पृथ्वी सूक्त के एक मन्त्र में⁴⁰ आठ गुणों की याचना की गई है। मन्त्र है, "सत्य बृहद्वमुग्रं दीक्षा, तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवी धारयन्ति। सा नो भूतस्य भव्यस्ये पल्युरं लोकं पृथिवी न कृणोतु।।" अर्थात् ये गुण हैं सत्य, उदारता का भाव, सरलता, दक्षता, सहन करने की शक्ति, ज्ञान एवं विज्ञान तथा श्रेष्ठ सज्जनों का सत्कार, परस्पर सहयोग तथा संरक्षण। इसके लिए प्राकृतिक सम्पदायें दी गई हैं, जैसे नदियां, पर्वत, वृक्ष व अन्य वनस्पतियां तथा खेतिहर समृद्धि।

मनु ने इस समुदाय की भूमि को देवताओं की देन कहा है।⁴¹

विष्णु पुराण में अनेक स्थानों पर इस भूमि की प्रशंसा की है तथा विभिन्न देशों में सर्वोत्तम माना है। वस्तुतः उपरोक्त पुराण में एक पूरा अध्याय इसी से जुड़ा है। इसका एक प्रमुख पद है,⁴²

“उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिण ।
वर्ष तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ।।”

अर्थात् जो देश समुद्रों के उत्तर में तथा हिमालय के दक्षिण में भारत है तथा इस देश के लोग भारतीय हैं।

भारतीय राष्ट्रवाद में लोगों का भूमि के प्रति अनन्य भक्ति रही है। मातृभूमि के प्रेम तथा समर्पण को सर्वोच्च, महानतम तथा पवित्रतम माना है। विष्णु पुराण में एक अन्यत्र स्थान पर यह कहा गया है।⁴³

“न में वाञ्छाऽस्ति यशसि विद्वत्त्वे न च वै सुखे ।
प्रभुत्वे नैव वास्वर्गे मोक्षेऽप्यानन्द दायके ।।
परन्तु भारते जन्म मानवस्य च क पशोः ।
विहंगस्य च वा जन्तोर्वृक्ष पाषाणयोरपि ।”

अर्थात् मैं किसी प्रकार की प्रतिष्ठा, ज्ञान, जीवन के सुखों, शक्ति यहां तक कि स्वर्ग या मोक्ष का इच्छुक नहीं हूं परन्तु मेरी मनोकामना है कि मेरा पुनर्जन्म भारत में हो, चाहे किसी एक मानव या एक जानवर या एक पक्षी या एक कीट पतंग या एक पत्थर के रूप में ही क्यों न हो।

इसी भांति वाल्मीकि रामायण⁴⁴ में भगवान राम ने मातृभूमि के प्रति अनन्य भक्ति को स्वर्ग से महान माना है। इसमें दिया है,

“जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गिरीयसी”

अर्थात् जननी जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान है। इसी भांति महाभारत के शान्तिपर्व⁴⁵ में राष्ट्र का यशोगान किया गया है। अतः सभी वैदिक या प्राचीन साहित्य में पृथिव्या समुद्रपर्यन्ताया एकराट् अर्थात् समुद्रों तट की समस्त भूमि का एक राष्ट्र माना गया है।

अनेक ग्रन्थों में आसेतु-हिमाचल एक राष्ट्र की बात की है। आचार्य चाणक्य से लेकर राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने पर्वतराज हिमालय का यशोगान किया गया है। चाणक्य ने समुद्रों के उत्तर में हिमालय का वर्णन करते हुए उसने इसकी लम्बाई 1000 योजन बतलाई है। उसने लिखा है, “हिमवत्समुद्रान्तरमुदीचीनं योजन सहस्रपरिमाणम्”।

महाकवि कालिदास⁴⁶ ने हिमालय की देवीय बतलाये हुए उसका सजीव तथा भावपूर्ण श्रद्धांजलि देते हुए लिखा है -

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः ।
पूर्वापरौ तोयनिधी बगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ।

अर्थात् दैवीय हिमालय पर्वत के शिखर पर हिमालय का राजा है जिसके दोनों बाजु पूर्व तथा पश्चिम समुद्र तक हैं तथा वह पृथ्वी के मानदण्ड की तरह खड़ा है।

अतीत से वर्तमान तक सदैव भारतीयों का अपनी मातृभूमि से अटूट प्रेम तथा भक्ति रही है। वर्तमान काल में स्वामी विवेकानन्द, बंकिम चट्टोपाध्याय महर्षि अरविन्द, गुरु गोलवलकर ने मातृभूमि के प्रति अनन्य भक्ति दर्शाते हुए भारतीयों के मन की बात कही है। स्वामी विवेकानन्द⁴⁷ ने स्पष्ट कहा कि पृथ्वी पर भी कोई भी भूमि है जिसे ‘पुण्य भूमि’ कहा गया है, जो किसी भी आत्मा को ईश्वर की ओर प्रकृत करती है, वह भारत है। उन्होंने भारत भूमि के प्रत्येक धूलिकण को अत्याधिक पवित्र माना है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर संघचालक श्री गुरु जी ने विस्तार से समस्त हिन्दू समाज की श्रद्धा का केन्द्र मातृभूमि को बतलाया है।⁴⁸

भारत भूमि के प्रति भक्ति तथा समर्पण भाव

अतीत से वर्तमान तक हिन्दू समाज का सदैव मातृभूमि के प्रति अटूट लगाव तथा प्रेम रहा है। भारत में तीर्थयात्राओं का आयोजन है, मातृभूमि की पूरी प्रदक्षिणा। इन यात्राओं के द्वारा भारतीय मातृभूमि के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हैं। यह तीर्थ स्थल सम्पूर्ण भारत में फैले हैं। इस मातृभूमि के आसेतु-हिमालय का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। महाभारत के वन पर्व में नारद तथा धौम्य ऋषि द्वारा तीर्थों की विस्तृत सूची दी गई है। गरुड़ पुराण में 66वें अध्याय में तीर्थ स्थलों की सूची दी गई है। तांत्रिक चूडामण में 52 शक्ति पीठों का वर्णन है। इसी भांति देवी भागवत में 108 तीर्थों की सूची दी है। कालिका पुराण, शिव पुराण तथा स्कन्द पुराण में अनेक स्थलों का वर्णन है। जगत गुरु शंकराचार्य के चार मठ भारत भूमि की चार दिशाओं में हैं। महाकुंभों के पर्व उज्जैन, हरिद्वार, प्रयाग तथा नासिक में होते हैं। अतः देवदर्शन के निमित्त मातृभूमि का प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं।

आज भी प्रत्येक हिन्दू भारत भूमि की पवित्र नदियों का स्मरण करता है तथा उसकी इच्छा रहती है कि कम से कम जीवन में एक बार प्रत्येक नदी में स्नान करे। इस सन्दर्भ में पवित्र मन्त्र है -

“गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति,
नर्मदे सिंधु कावेरि जलेऽस्मिन् सप्तिधिं कुरु।।”

हिन्दू समाज के दैनिक तथा लौकिक जीवन में बार-बार मातृभूमि का स्मरण किया जाता है। प्रातः उठते ही वह भूमि पर पांव रखते ही वह क्षमायाचना करते हुए कहता है -

“समुद्रवसने देवि पर्वत स्तनमंडले।

विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्श क्षमस्व मे।।”⁴⁹ अर्थात् हे देवी ! समुद्र तेरा वसन है और पर्वत तेरा वक्षस्थल के समान है। मैं तुझ पर पैर रखता हूँ इसके लिये क्षमा कर।

प्रायः सभी धार्मिक रीतिरिवाज भूमि पूजन से प्रारम्भ होते हैं। किसी भी संकल्प के समय सम्पूर्ण भारत में “जम्बू द्वीपे, भारतवर्षे भरतखण्डे.....” आदि कहकर मातृभूमि का स्मरण किया जाता है। भगिनी निवेदिता⁵⁰ का कथन है कि निगारा का प्रपात यदि गंगा के तट पर होता तो भारत में इसका मूल्यांकन भिन्न प्रकार से होता।

अतः संक्षेप में यह माननीय है कि भारतीय राष्ट्रवाद का एक प्रमुख तत्व भूमि तथा उसके प्रति अनन्य भक्ति सदैव रही है।

समान सांस्कृतिक जीवन मूल्य

मातृभूमि के प्रेम के अतिरिक्त भारत राष्ट्र का दूसरा आधारभूत तथा महत्वपूर्ण तत्व जीवन के सांस्कृतिक मूल्यों को माना गया है। इसने सम्पूर्ण समाज को युगों-युगों से सुदृढ़ रूप से जोड़ा हुआ है।

धर्म

जीवन के सांस्कृतिक मूल्यों में सर्वप्रथम भारत का वैशिष्ट्य धर्म तथा आध्यात्म है। धर्म जीवन को उदात्त एवं विशाल बनाता है। धर्म शब्द का भाषान्तर अथवा पर्यावाची अंग्रेजी का न ‘रीलीजन’ है और न ही मुस्लिमों का ‘मजहब’।

‘धर्म’ शब्द धृ धातु से बना है। कहा गया है कि ‘धरयते इति धर्म’। अतः जिसमें समाज की धारणा होती है वह धर्म है। धर्म का अर्थ ‘कर्तव्य’ है। धर्म शब्द किसी विशेष, सर्वोच्च रक्षक या अंतिम पैगम्बर या किसी विशेष पुस्तक, संगठित स्थल या निश्चित नियमों पर आधारित नहीं है।

सभी सम्प्रदायों के प्रति सर्वपंथ समभाव का विचार ऋग्वेद⁵¹ में मूल रूप से है

जहां एकम सद विप्रा भद्रवदन्ती अर्थात् सत्य एक है जिसे विद्वान अलग-अलग ढंग से व्यक्त करते हैं।

धर्म का धर्मान्तरण या हिंसा से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह सर्वदा सकारात्मक, जनहितकारी तथा मानवता का रक्षक होता है, धर्म के दो अर्थ हैं, व्यक्तित्व का विकास तथा सामाजिक व्यवस्था का निर्माण। धर्म का उद्देश्य बतलाया गया यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः, अर्थात् इससे इस जीवन में पूर्ण सुख और परलोक में शांति मिलती है।

धर्म की देश की एकता में तथा सामाजिक व्यवस्था के निर्माण में प्रमुख भूमिका रहती है। यह एक ऐसा महत्वपूर्ण साधन रहा जिसने राष्ट्रवाद तथा देश की एकात्मकता को बनाये रखने में महत्वपूर्ण कार्य किया।

भारत के प्राचीन साहित्य - वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रन्थों, उपनिषदों, पुराणों, स्मृतियों तथा धर्मशास्त्रों में इसकी विस्तृत चर्चा की गई है। धर्म, व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र जीवन को एक करने की कड़ी है। धर्म ने अनेक विचारों को जोड़ा तथा असहिष्णुता तथा अलगावपन को त्यागा तथा अस्वीकार किया।

धर्म इसलिए भी एक महत्वपूर्ण तत्व है जो व्यक्ति की पहचान⁵² से जुड़ा है। यह मानव व मानवता के सम्बन्धों को दर्शाता है। अतः मानवी प्रगति की पूर्णता का बोध कराता है। 1915-1918 ई. के दौरान महर्षि अरविन्द ने अपने 'आर्य' में प्रकाशित लेखों में जो बाद में एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुए, धर्म के मर्म को समझाया है। श्री अरविन्द मानवीय एकता के विकास की प्रक्रिया का वर्णन करते हैं। वे मानव के सम्बन्ध क्षेत्र, समाज तथा राज्य से बतलाते हैं। उनका मत है कि यहां तक कि संगठित राज्य, न ही राष्ट्र का सुन्दरतम मन है, और न ही समुदाय की ऊर्जा का योग। बल्कि वे इसे सामूहिक अहंकारवाद बतलाते हैं जो समुदायों की योग्यता से भी निम्न हैं। वह राष्ट्र

के विचार को स्वाभाविक मानते हैं। उनके अनुसार राज्य केवल एकरूपता चाहता है जो अन्तोत्तात्वा जीवन नहीं है। उनके अनुसार जीवन विविधता में है। मनुष्य का विकास व्यक्ति के आसपास जुड़े व्यक्तियों, परिवार, कुटुम्ब, कबीला, राज्य तथा राष्ट्र से होता है और तब कहीं जाकर सम्पूर्ण मानवता का विचार विकसित होता है। वे राज्य के विचार को क्षुद्र तथा जीवित मशीन की भांति मानते हैं तथा मानव का विचार उदात्त तथा ईश्वर के निकट मानते हैं।

भारत एवं सनातन धर्म

भारतीय धर्म की एक महान देन इसका एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण है। इसे सनातन धर्म कहा गया है। यह मानवीय दृष्टि प्रकृति तथा उसके विभिन्न उपांगों में देखती है। इस दृष्टि से राष्ट्र के प्रति भारतीय दृष्टिकोण पाश्चात्य दृष्टिकोण से भिन्न है। यहूदी-ईसाई (Judeo-Christian) परम्परा के प्रारम्भ से, पश्चिम का नाता प्रकृति से टूट गया तथा वे इसे अधिक से अधिक निर्जीव समझकर अपना शोषण करने की वस्तु समझने लगे। इसको ओल्ड टेस्टामेन्ट और जीनीसस से देखा जा सकता है। जबकि छोटे दिन जाहोवल घोषणा करता है कि हमने मनुष्य का अपना चित्र बनाना चाहिए। हमारी इच्छानुकूल समुद्र की मछलियों पर, आकाश में पक्षियों पर, पशुओं पर, तमाम पृथ्वी पर तथा पृथ्वी पर घूमने वाले सभी जीवों पर राज्य करना चाहिए⁵⁴ और उसने नवजात व्यक्ति से कहा "पृथ्वी पर अपना अधिपत्य करो। इसके विपरीत भारत की सांस्कृतिक परम्परा पृथ्वी को एक देवी अर्थात् भूदेवी, नदियों को देवियां, पर्वतों को देवताओं, अनेक वृक्षों को पवित्र, यहां तक अनेक पौधों और फूलों को रीतिरिवाजों में प्रयोग करते हैं। लगता है कि समस्त राष्ट्र दैवीय शक्ति से व्याप्त है।⁵⁵ प्रकृति उनके लिये प्राकृतिक साधनों का एक मृत ढेर नहीं बल्कि सुन्दरतम सुरक्षा है।

एक विद्वान के अनुसार⁵⁶, सनातन धर्म आत्मा-धर्म है, और इसी लिए यह विश्व

धर्म है। यह अनेक सम्प्रदायों की माता है। वह लिखता है⁵⁷, सनातन धर्म एक पाठ सिखाता है – अयथार्थ से यथार्थ, अन्धकार से प्रकाश की ओर, तथा मृत्यु से अमरता की ओर। वह तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर कहता है कि समस्त आधुनिक सेकुलर विचारक आदमी में जानवर के बीज रूप देखता है जबकि सनातन धर्म जानवरों में ईश्वर, उसकी शक्ति तथा देवताओं की उपस्थिति देखता है। ये जानवरों के प्रति सदव्यवहार सिखाता है, यह जीव-दया सिखाता है।⁵⁸

सनातन धर्म सिखलाता है कि मानव एक महान समुदाय से सम्बन्ध रखता है। मानव एक जागतिक है। मानव एक व्यापक तथा नैतिक दृष्टि होने से एक सच्चे, बड़े तथा दयालु संस्कृति का आधार दे सकता है।

अनेक महापुरुषों जैसे स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविन्द, मदनमोहन मालवीय, महात्मा गांधी ने सनातन धर्म के सांस्कृतिक मूल्यों का विस्तृत विश्लेषण किया है। श्री अरविन्द⁵⁹ ने सनातन धर्म को ‘मानवीय कल्याण का निर्माता’ कहा है। वह सनातन धर्म को भारत की आत्मा व राष्ट्रवाद कहते हैं। मालवीय का कथन है कि सनातन धर्म विश्व की सर्वप्रिय वस्तु है।⁶⁰ वासुदेव शरण अग्रवाल⁶¹, एक प्रसिद्ध इतिहासकार ने सनातन धर्म के विचार पर विस्तृत अध्ययन किया। उनके अनुसार इसकी उत्पत्ति से वर्तमान तक इसका वैशिष्ट्य, मानव का चहुंमुखी विकास है। डॉ. रमाकान्त⁶² अंगिरस ने इसे जीवन के प्रति विशाल दृष्टि बतलाया जो न किसी सम्प्रदाय से जुड़ी है और न ही किसी व्यक्ति से, बल्कि मानवता के कल्याण से जुड़ी है। प्रसिद्ध चिंतक सीताराम गोयल ने सूक्ष्मता के साथ सनातन धर्म का दार्शनिक अध्ययन किया। उनके अनुसार यह यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे पर आधारित है।⁶³ यह बीज रूप है।

अतः सनातन धर्म के विश्वव्यापी स्वरूप को विभिन्न शब्दावली में अनेक विद्वानों ने बतलाया है। इसे ‘शाश्वत् जीवन मूल्य’, ‘शाश्वत् विश्वास’⁶⁴, ‘शास्वत्

परम्परा’⁶⁵, ‘विश्व चेतना’, ‘सर्व धर्म’⁶⁶ आदि कहा गया है।

श्री अरविन्द ने अपने उत्तर पाड़ा के भाषण में⁶⁷ हिन्दू धर्म का उदय तथा विकास सनातन धर्म से बतलाया है। उनके अनुसार हिन्दू धर्म ही इसका सच्चा राष्ट्रवाद⁶⁸ या राष्ट्रीयता है। सनातन धर्म की एक प्रमुख विशेषता कि इसमें जीवन के विभिन्न पहलु विद्यमान हैं। इसमें व्यक्ति के जन्म, बचपन, शिक्षा, विवाह, जीविका तथा विवेकपूर्ण जीवन है। संक्षेप में इसमें जीवन के चारों पुरुषार्थ, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष हैं।⁶⁹

अतः सनातन धर्म हिन्दू समाज का आध्यात्मिक केन्द्र है। यह दर्शाता है कि मानव आत्मा में सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् एक शक्ति आध्यात्मिक प्रेरणा है जो प्रत्येक मानव में प्रत्येक क्षण रहती है।

श्री अरविन्द ने सनातन धर्म को शाश्वत् अथवा विश्व धर्म बतलाते हुए दो सन्देश दिये, प्रथम राष्ट्र के माध्यम से गरीबों की सहायता तथा दूसरे सनातन धर्म का प्रचार करना। उन्होंने कहा “यह सनातन धर्म है जो शाश्वत् धर्म है जो इससे पूर्व आप न जानते थे परन्तु अब मैं आपके सम्मुख इसे रख रहा हूँ।यह कहा जाता है कि भारत का उदय होगा, यह सनातन धर्म ही है, जिसका उदय होगा, जब यह कहा जाता है कि भारत महान होगा, यह सनातन धर्म ही है जो महान होगा, जब यह कहा जाता है कि भारत का विस्तार और फैलाव होगा, यह सनातन धर्म ही है, जिसका विश्व में विस्तार तथा फैलाव होगा। यह धर्म के लिए और धर्म के द्वारा है तथा इसी के लिए भारत अस्तित्व में है।”⁷⁰

श्री अरविन्द के अनुसार यही धर्म भौतिकवाद पर विजय पा सकता है। यही मानवता को ईश्वर की ओर ले जा सकता है।

उन्होंने अपनी बात को निष्कर्ष रूप में कहा था कि, “हिन्दू राष्ट्र का जन्म सनातन धर्म के साथ हुआ। इसके साथ ही यह गतिवान तथा विकसित होता है। जब सनातन धर्म का पतन होता है, राष्ट्र का भी पतन होता है। अगर सनातन धर्म यदि नष्ट

होता है तो राष्ट्र भी नष्ट होगा। सनातन धर्म ही राष्ट्रवाद है।”⁷¹

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि भारत के सर्वोच्च न्यायालय के भी कई महत्वपूर्ण निर्णय हैं⁷² जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि राष्ट्र हिन्दुत्व, ‘हिन्दुइज्म’, हिन्दु संस्कृति या भारतीय संस्कृति अथवा सनातन धर्म किसी भी ढंग से संकुचित अर्थ में नहीं प्रयुक्त हुआ है, बल्कि ये एक जीवन मार्ग को बतलाता है, जो ‘रीलीजन’ के दायरे में नहीं आता जो मुख्यतः एक प्रकार की पूजा पद्धति से जुड़ा है। प्रसिद्ध लेखिका केरी ब्राउन ने⁷³ अपनी पुस्तक “द इसेन्सल टीचिंग्स आफ हिन्दुइज्म” में लिखा, “संस्कृति हम जिसे हिन्दुइज्म के नाम से जानते हैं जिसे हिन्दू सनातन धर्म – शाश्वत् नियम – कहते हैं, हजारों साल से है। यह एक सैद्धान्तिक भाव से इससे अधिक है जिसे पाश्चात्य जगत रीलीजन के रूप में समझते हैं। किसी ईश्वर में आस्था रखे या न रखे पर किसी भी वह हिन्दू है। यह एक जीवन का मार्ग है, एक मन की अवस्था है।

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिन्दू धर्म ‘रीलीजन’ नहीं है, यह सनातन धर्म या मानव धर्म है, जो विश्वव्यापी सन्देश देता है तथा जो विश्व बन्धुत्व में भी विश्वास रखता है। सार रूप में धर्म व्यक्ति, समाज व राष्ट्रीय जीवन को जोड़ने वाला तत्व है।

आध्यात्मिकता

आध्यात्मिकता भारत में सदैव परिवर्तन की मार्गदर्शिका भावना रही है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की प्रक्रिया को समाज में परिवर्तन के परिपेक्ष्य में इसका अध्ययन किया जा सकता है। आध्यात्मिकता, धर्म तथा सामाजिक चेतना को बढ़ाती है और चेतना से सामूहिक जागृति आती है, जो आध्यात्मिक राष्ट्रवाद होती है। स्वामी विवेकानन्द ने आध्यात्मिकता को भारत की आत्मा माना है। ये ‘युगों’ से भारतीय मस्तिष्क का निर्णायक तत्व रहा है। यह जीवन मूल्यों से जुड़ा हुआ है। यह इस देश तथा यहां के लोगों के जीवन को मोड़ने तथा दिशा देने का प्रमुख तत्व रहा है। भारत जीवन का दार्शनिक

विवेचन तथा विश्लेषण – जैसे कर्म का दर्शन, पुनर्जन्म का सिद्धान्त, आत्मा की अमरता तथा धर्म के बारे में पूर्ण स्वतन्त्रता, आध्यात्मिकता की ही उपज है। ये वैश्विक मूल्यों, अन्तर आस्थाओं के प्रति सहयोग तथा सभी सम्प्रदायों को सम्मान देती है।⁷⁴ वस्तुतः यह मानवीय सम्बन्धों, मानवता के अस्तित्व तथा राष्ट्रीय एकत्व का साधन है।

स्वामी विवेकानन्द ने आध्यात्मिकता को भारतीय जीवन का ‘जीवन रक्त’ माना है। वे लिखते हैं, “हमारा जीवन-रक्त आध्यात्मिकता है। अगर ये सीधे बहता है, अगर यह मजबूती से बहता है और शुद्ध तथा बलवान बनाने वाला है। प्रत्येक वस्तु ठीक है। राजनीतिक, सामाजिक, भौतिक कमियों के होते हुए भी, यहां तक कि भूमि की कमी पर भी, सभी ठीक हो जायेगा यदि रक्त शुद्ध है.... यह वह भूमि है जहां आध्यात्मिकता तथा दर्शन की सम्पूर्ण लहरें बार-बार उठती हैं तथा विश्व की बड़ी बाढ़ लाती हैं, और यह भूमि है जिससे एक बार वही लहरें मानवता की पत्नोमुख जातियों में जीवन को व्यवस्था तथा शक्ति देने वाली ऐसी लहरें पुनः उठेंगी।”⁷⁵

सम्भवतः राष्ट्रवाद के उपरोक्त विचार ने 20वीं शताब्दी के जर्मन दार्शनिकों तथा समाज वेत्ताओं को भी प्रभावित किया। स्पेन्ग्यूल्नर ने लिखा कि, “राष्ट्र, न ही भाषा अथवा जीव विद्या (बायोलोजिकल) है बल्कि आध्यात्मिक इकाईयां हैं और किसी राष्ट्र की दृढ़ता अधिक उसकी आत्मिक एकत्व से है न कि किसी अन्य तत्व से।”

जे. रैमजे मैकनोल्ड जो इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री भी रहे, उन्होंने स्वीकार किया तथा इसकी प्रशंसा की कि भारतीय ‘भारत’ की पूजा अपने आध्यात्मिक संस्कृति के कारण करते हैं।⁷⁶ परन्तु कुछ आधुनिक आलोचक भ्रमित हैं जो यह महसूस करते हैं कि भावात्मक तथा आध्यात्मिक का परस्पर संयोग अतीत के चिंतन की पुनरुक्ति है। वे विद्यार्थियों के लिए आगे बढ़ने वाला पाठ्यक्रम चाहते हैं। उन्हें लगता है कि भविष्य के लिए एक नया ‘ब्लू प्रिंट’ चाहिए। परन्तु यह एक सही पग नहीं है बल्कि एक दुःखद

प्रक्रिया है जो भविष्य की ओर, बिना अतीत की ओर झाँके होगी।⁷⁷

भाषा तथा साहित्य

अथर्ववेद के अनुसार भारतीय राष्ट्र, भारतीय सन्तों, ऋषियों तथा विद्वानों की देन है। वैदिक या साहित्य जीवन के सांस्कृतिक मूल्यों पर प्रकाश डालते हैं। विभिन्न भाषाओं, परम्पराओं, जातियों के होते हुए भी भारतीय ऋषियों ने सुन्दर भविष्य के लिए समान भावनाएं तथा आकांक्षाएँ की हैं। संस्कृत संसार की प्रचीनतम भाषा है⁷⁸ जो अतुल आध्यात्मिक तथा वैज्ञानिक ज्ञान का भण्डार है।⁷⁹

संस्कृत भारत की महानतम सांस्कृतिक विरासत है। संस्कृत 19वीं शताब्दी तक सम्पूर्ण भारत को जोड़ने वाली एकता की कड़ियों में एक रही। यह भारत के विभिन्न क्षेत्रों के लोगों को परस्पर मिलाने तथा सम्बन्धों को बढ़ाने की शक्ति रही। यह समान विरासत तथा समान राष्ट्रीयता का प्रतीक रही।⁸⁰ यह एक उच्च कोटि की अति श्रेष्ठ भाषा है, न केवल भारत में, बल्कि एशिया के एक बड़े भाग की भी।⁸¹ भारतीय जन तथा सभ्यता संस्कृत की गोद में ही पली तथा ऐतिहासिक विकास में इसके साथ विकास हुआ तथा उनके उत्तम चिन्तन तथा संस्कृति के विश्लेषण को स्थान दिया, जो आज भी अमूल्य पैतृक सम्पत्ति के रूप में न केवल भारत को बल्कि विश्व को प्राप्त है।⁸²

इतना ही नहीं संस्कृत के द्वारा मानसिक तथा आध्यात्मिक सम्बन्ध, ग्रीक व लैटिन की बड़ी बहिन के रूप में तथा इंग्लैण्ड, फ्रांस तथा रूसी से चचेरी बहिन के रूप में स्थापित हुए।⁸³

परन्तु संस्कृत की प्रगति में अवरोध का पहला प्रयत्न ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कानूनी सदस्य लार्ड मैकाले ने 1835 ई. में अपनी 'शरारतपूर्ण शिक्षा टिप्पणी' के द्वारा किया, जिसमें उसने अस्वीकृत किया। उसने इस भाषा को न केवल लाभहीन तथा निष्फलदायी बतलाया बल्कि संस्कृत की व्याकरण को 'बेहुदा'⁸⁴ कहा। उसने संस्कृत

संस्थाओं तथा संस्कृत के विद्वानों को अनुदान या छात्रवृत्तियाँ देने को 'रिश्वत' बतलाया। वस्तुतः यह भारत के मौलिक चिन्तन तथा भारतीय संस्कृति, परम्पराओं तथा सांस्कृतिक भाषा पर सीधा प्रहार था।⁸⁵

परन्तु उपरोक्त घातक टिप्पणी के द्वारा संस्कृत को हटाने, विस्मृत अथवा अस्वीकार करने तथा स्कूलों तथा कालेजों में इसके अध्ययन को रोकने के पश्चात् भी, भारतीय विद्वानों तथा नेताओं ने इसके अध्ययन तथा पाठन को सतत् बनाये रखा। इसे भारत के अतीत के गौरव तथा सांस्कृतिक ज्ञान भण्डार के रूप में देखा गया। इतना ही नहीं, विश्व के अनेक विद्वानों ने इसकी बौद्धिक समृद्धि तथा विश्वव्यापी दृष्टिकोण को सराहा।⁸⁶ कुछ विश्व के विद्वानों में प्रोफेसर बोप्प, मि. ड्यूब्यूस, विलियम वान हम्बोल्ट, प्रो. मैकडोनल, विल डयूरेन्ट ने संस्कृत के प्रति तथा इसमें निहित ज्ञान के प्रति कृतज्ञता प्रकट की है। मैक्समूलर⁸⁷ ने 'संस्कृत को विश्व की महानतम भाषा' कहा।⁸⁸ विल डयूरेन्ट⁸⁸ ने संस्कृत को सभी यूरोपीय भाषाओं की माता कहा।⁸⁸ सर विलियम जोन्स, प्रसिद्ध प्राच्यवादी ने 1786 ई. में संस्कृत को ग्रीक से ज्यादा पूर्ण, लैटिन से ज्यादा प्रचुर तथा दोनों से उत्कृष्ट कहा और उसने इसकी महत्ता न केवल भारत अपितु समस्त विश्व के लिए स्वीकार की है।⁸⁹

भारतीय चिंतकों तथा विचारकों जैसे स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, श्री अरविन्द, बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय, बालगंगाधर तिलक ने भारतीय राष्ट्र को, यहां की जनता को अपने अतीत के साहित्य तथा सांस्कृतिक जीवन मूल्यों से प्रेरित किया। उदाहरणतः श्री अरविन्द ने संस्कृत भाषा को बहुत उत्कृष्ट, बहुत पूर्ण, बहुत स्थायी तथा आश्चर्यजनक उपयुक्त साहित्यिक अस्त्र बतलाया जिसने मानव मस्तिष्क को विकसित किया। स्वामी विवेकानन्द जिन्हें 'आधुनिक भारत राष्ट्रवाद का पिता' कहा जाता है, उपनिषदों तथा गीता को उत्तम तथा महानतम दर्शन बतलाया। स्वामी दयानन्द ने 'सत्यार्थ

प्रकाश' के माध्यम से विश्व में वेदों की महत्ता को बतलाया।

आधुनिक नेताओं, महात्मा गांधी, पं. जवाहरलाल नेहरू व डा. बी.आर. अम्बेडकर ने संस्कृत भाषा की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। महात्मा गांधी का मत था कि संस्कृत के अध्ययन के बिना कोई सच्चा भारतीय या सच्चा विद्वान नहीं बन सकता है।⁹⁰ पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी माना तथा लिखा⁹¹, “अगर कोई मुझे पूछे कि भारत के पास कौन सा सबसे बड़ा खज़ाना है तथा कौन सी सुन्दरतम् विरासत है, मैं बिना हिचकिचाहट के कहूंगा कि यह संस्कृत भाषा तथा उसका साहित्य है और इसमें जो निहित है, यह एक शानदार पैतृक धन है और जब तक यह हमारे लोगों के जीवन को दृढ़ रखता है तथा प्रभावित करता है तथा जब तक भारत की अपूर्व बुद्धि को बनाये रखता है। अगर हमारी कौम बुद्धि को, उपनिषदों को व महाकाव्यों (रामायण तथा महाभारत) को भूल गई तो भारत, भारत नहीं रहेगा।”

यह एक ज्ञात तथ्य है कि डा. भीमराव अम्बेडकर उन व्यक्तियों में से थे जो भारतीय संविधान की अधिकारिक भाषा संस्कृत बनाना चाहते थे।⁹² सम्भवतः उन्होंने एक वक्तव्य भी दिया था कि संस्कृत स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रीय भाषा होनी चाहिए।⁹³ उनके विचारों में संस्कृत आध्यात्मिक वैज्ञानिक भाषा है और एक प्राचीन भाषा है, जिसका बहुत शुद्ध व्याकरण है।⁹⁴ यहां यह लिखना महत्त्वपूर्ण होगा कि भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने एक निर्णय जो यहां एक रिट पेटिशन सन्तोष कुमार विरोध, सचिव, मानव संसाधन विभाग (1994(6) सुप्रीम कोर्ट 579) के सम्बन्ध में था, संस्कृत भाषा के बारे में स्पष्ट रूप से कहा :⁹⁵

“यह अच्छी तरह ज्ञात है कि संस्कृत सभी इण्डो-आर्यन भाषाओं की जननी है और यह भाषा है जिसमें हमारे वेदों, पुराणों तथा उपनिषदों को लिखा गया है और जिसमें कालिदास, भवभूति, बाणभट्ट और दांडी ने अपने उच्च कोटि के ग्रन्थों को लिखा।

शंकराचार्य, रामानुज, माध्वाचार्य, निम्बार्क और वल्लभाचार्य की शिक्षायें भारतीय संस्कृति के ताने-बाने में न बुनी जातीं, यदि संस्कृत उनके पास अपने विचारों को व्यक्त करने को न प्राप्त होती।”

अतः संक्षेप में संस्कृत भाषा तथा भारत का प्राचीन साहित्य युगों से सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के अमूल्य अस्त्र रहे हैं। यह संस्कृत भाषा ही है कि जिसके द्वारा भारत सभ्यता का विकास, भारतीय जीवन मूल्यों की महानता, मानवी भावों का सार, वैदिक काल से वर्तमान काल तक इसकी अभिव्यक्ति द्वारा समझा जा सकता है। इसका ज्ञान न केवल भारत को, बल्कि मुख्य विश्व की जानकारी के लिए आवश्यक है।

आर्थिक समृद्धि तथा विचार

वैदिक साहित्य में ‘अर्थ’ को चार पुरुषार्थों में से एक माना गया है। यद्यपि यह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष अर्थात् धर्म तथा मोक्ष के अन्तर्गत, दोनों ओर से नियन्त्रित किया गया है। अर्थ को मानव के व्यक्तित्व के विकास में एक मुख्य स्तम्भ माना गया है। परन्तु इसको सर्वोच्च नहीं माना है बल्कि इसको व्यक्ति, समाज और विश्व के दृष्टिकोण से, परस्पर सम्बन्धों के द्वारा आंकलन किया है।

यजुर्वेद तथा ईशोपनिषद् में भारत के सांस्कृतिक जीवन मूल्यों में आर्थिक चिन्तन का सामाजिक आधार दिया है। उपरोक्त प्रसिद्ध उपनिषद् के पहले ही मन्त्र में कहा गया है -

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।⁹⁶

यदि इस मन्त्र के अन्तिम शब्दों से प्रारम्भ करें तो इसके आर्थिक चिन्तन में पांच मूल बातें कही गई हैं -⁹⁷

1. कस्य स्वित् धनं
2. मा गृधः
3. तेन तयक्तेन भुज्जीथां
4. जगत्या जगत्
5. ईशा वास्यं इदं सर्वं यत किंच

उपरोक्त मंत्र में पांच महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को स्पष्ट किया है। प्रथम, है कस्य स्वित् धनं अर्थात् धन का स्वामी कौन है? सूक्ष्म निरीक्षण तथा विश्लेषण के पश्चात् यह स्वीकार किया गया कि प्रजापति या प्रजा का रक्षक धन का स्वामी है यानि प्रजापते स्वित् धनं। यदि धन का स्वामी प्रजा का रक्षक नहीं है तो वह धन का स्वामी नहीं हो सकता।

दूसरे यह कहा है कि मा गृधः यानि मनुष्य धन का लोभी नहीं होना चाहिए। विचार है कि मनुष्य उतना ही धन व्यय करना चाहिए जो आवश्यक हो। इसमें 'अपरिग्रह' के सिद्धांत को आग्रहपूर्वक कहा गया है। अतः धनसंग्रह या जमाखोरी का एक अपराध या अवगुण माना है। इसी कारण हिन्दु संस्कृति में दान की महिमा बतलाई गई है।

तीसरा है, येन त्यक्तेन भुज्जीथां अर्थात् त्याग मूलक उपभोग करो। अर्थात् व्यक्ति को जितना उसके विकास के लिये आवश्यक है उससे अधिक कुछ न लें। महात्मा गांधी जी^{१८} ने इस उपभोग या उपयोग को विस्तृत रूप से स्पष्ट करते हुए इस पर दो मर्यादाएं बनाई हैं। "एक तो त्याग या 'भागवत' के शब्दों में कृष्णपिणमस्तु सर्वम। भागवत धर्म के प्रत्येक अनुयायी को प्रतिदिन प्रातःकाल अपने समस्त विचार, शब्द तथा कर्म (मनसा, वाचा, कर्मणा) ईश्वर का अर्पित करने का आदेश है..... जब उसने त्याग और अर्पण का यह कार्य सम्पन्न कर दिया हो तो उसके पुरस्कार स्वरूप उस हृद तक भोजन, जल, वस्त्र और आवास के उपभोग का अधिकार प्राप्त हो जाता है जिस हृद तक ये चीजें उसके दैनिक जीवन के लिए आवश्यक हैं। उपभोग या उपयोग त्याग का

पुरस्कार है।" बौद्ध मत में 'अल्प व्यय, अल्प सञ्चय' का सिद्धांत भी व्यवहार में यही बात बतलाता है।

चौथे, जगत्यां जगत में समाज को व्यक्ति से अधिक महत्त्व दिया गया है। इसमें व्यक्ति के साथ उसके सामाजिक पक्ष को प्रमुखता से माना गया है।

पांचवे, ईशा वास्यं इदं सर्वं गत किंच में कहा गया है कि जो भी प्राप्य है वे ईश्वर प्रदत्त हैं। अतः सर्वत्र ईश्वर की सत्ता व्याप्त है। कोई भी वस्तु उसके शासन की परिधि से बाहर नहीं है। अतः इस अवधारणा से स्वभावतः इस मन्त्र के शेष भाग फलित होते हैं।

संक्षेप में सांस्कृतिक जीवन मूल्यों में अर्थ को यथेष्ट महत्ता दी गयी है। यह व्यक्ति और समाज से सम्बन्धित, धन पर ईश्वर की सत्ता या स्वामित्व तथा अपरिग्रह व दान को महत्त्व देता है।

गांधी जी का विचार है^{१९} कि "इस छोटे से मन्त्र में जो सत्य समाया है, वह प्रत्येक मनुष्य की इहलौकिक और पारलौकिक दोनों तरह की ऊंची से ऊंची आकांक्षाओं को तृप्त कर सकता है। संसार के धर्मग्रन्थों में सत्य की खोज करते हुए मुझे ऐसी कोई बात नहीं मिली जिसे इस मन्त्र में जोड़ने की जरूरत हो।" मनुस्मृति में धर्म, अर्थ, काम को व्यवस्थित रखने के लिए सन्तुलित मार्ग अपनाने का सुझाव दिया गया और कहा गया है -

धर्मार्थ कामाः समं एव सेव्यकाः।

यः एक सेवी स नरो जघन्यः।।

योगदर्शन में दस यम-नियम बतलाये हैं जिसमें पांच व्यक्ति के लिए तथा पांच समाज के लिए हैं।

व्यक्ति के लिये पांच नियम हैं - शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्राणिधानानि नियमाः अर्थात् यह पांच यम (नियम) हैं स्वच्छता, सन्तोष, शारीरिक क्षमता, स्वाध्याय तथा ईश्वर भक्ति। समाज तथा जन जीवन के पांच नियम बताये हैं “अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य-अपरिग्रहा यमाः”, अर्थात् अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य तथा संग्रह न करना। अतः प्रजा के लिये संग्रह न करना। अतः प्रजा के लिए संग्रह को पूरी तरह से निषेध किया है जो आर्थिक चिंतन की दृष्टि से अत्याधिक महत्व है। ऋग्वेद के निम्नलिखित मन्त्र में विराट पुरुष का वर्णन किया है -

सहस्रशीर्षा पुरुषाः सहस्राक्षः सहस्रपात्।

स भूमि विश्वतो वृत्वाऽत्यनिष्ट दृशांगुलम।।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहूराजन्य कृत।

उरु तदस्य यद्वैश्यः पद्मयां शुद्रोऽजायत।।

विराट पुरुष के हजारों सिर, आंखें, पैर भूमि के अन्दर तथा बाहर बतलाये हैं। उसके मुख, हाथों, उदर तथा पैरों से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र की उत्पत्ति दी गई है। वस्तुतः विराट पुरुष जीवन को विश्वव्यापी देता है। यह विश्व व्यापी अथवा सनातन धर्म का दृष्टिकोण प्रकट करता है। समाज को व्यवसाय की दृष्टि से चार भागों बुद्धिमान (ब्राह्मणों), राजनीतिज्ञों, प्रशासकों तथा सैनिकों (क्षत्रियों), किसानों, व्यापारियों, उद्योग करने वालों (वैश्यों) तथा शिल्पकारों, कर्मचारियों, अनिपुण श्रमिकों (शूद्रों) में बांटा गया है। इसमें कोई ऊंच है या निम्न, बड़ा या छोटा है। प्रत्येक मानव की पहचान उसके व्यवसाय से है, जो गुण तथा कर्म पर (गुणकर्मानुसार) आधारित है। यह जन्म पर आधारित नहीं है। एक परिवार में विभिन्न व्यवसायों के व्यक्ति हो सकते हैं। उदाहरणतः जबाल ऋषि अपने जन्म से नहीं जाने जाते। विश्वामित्र जन्म से क्षत्रिय थे परन्तु वे ब्राह्मण के रूप में जाने जाते हैं। समाज में विविध कार्य होते जिससे समाज में विभिन्न धन्ये करते थे।

विराट पुरुष के विचार के आधार पर कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय आर्थिक चिंतन समष्टि का ही एक रूप था, उसमें किसी प्रकार का अलगावपन न था। यह पूर्णतः धर्म पर आधारित था तथा इसका लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति था।

कालान्तर में भी भारत के अनेक संतों, ऋषियों ने भारत के आर्थिक चिंतन के विकास का विस्तृत रूप से विचार किया है। इसके विविध पहलुओं पर चर्चा हुई। इसमें प्रमुख विद्वानों में भीष्म, शंकराचार्य, मनु, याज्ञवल्क्य, नारद, पराशर, कात्यायन तथा कौटिल्य को ले सकते हैं।

कौटिल्य¹⁰⁰ ने चार प्रसिद्ध विद्याओं में अर्थशास्त्र को भी एक माना है। उसने लिखा है,

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्या।

अतः उसके लिए दर्शन, वेद, अर्थशास्त्र तथा जन प्रशासन महत्वपूर्ण विधा हैं।

इसी भांति शंकराचार्य के विचार हैं कि प्राचीन काल में इसे अर्थमीमांसा या वार्तशास्त्र कहते थे। वार्तशास्त्र के बारे में शंकराचार्य ने लिखा¹⁰¹-

कुसीद कृषि वाणिज्यं गोरक्षा वार्तायोच्यते

उनके अनुसार कर, कृषि, व्यापार तथा गऊ (जानवरों) की रक्षा वार्ता के भाग थे। संक्षेप में भारत के सांस्कृतिक जीवन मूल्यों में ‘अर्थ’, धर्म या नैतिकता पर आधारित रहा है। इसका उद्देश्य व्यक्तियों की आवश्यकताओं तथा समाज अथवा राष्ट्र का कल्याण रहा। इसका अंतिम लक्ष्य मुक्ति या मोक्ष प्राप्ति रहा।

राजनीतिक चिंतन : शक्ति का विकेन्द्रकरण

भारतीय चिन्तन में यह विचार महत्व का है कि भारत में प्रगत का पथ, राष्ट्रीय एकात्मकता का बोध या राष्ट्रवाद की भावना का आधार कभी भी राजनीतिक तत्त्व नहीं

बल्कि सामाजिक सांस्कृतिक चेतना रही। गांधी जी¹⁰² का कथन है कि यह हिन्दू धर्म का सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य है कि वह कोई सत्तारोपित मत नहीं है। उन्होंने¹⁰³ यह भी कहा कि मेरे समीप धर्म-शून्य राजनीति कोई वस्तु नहीं है। राजनीति धर्म की अनुचरी है। धर्मविहीन राजनीति तो फांसी ही समझी जाए क्योंकि उसने आत्मा मर जाती है।

ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि भारत ने सदैव धर्म को महत्त्व दिया है। भारत में राजनीति अथवा राष्ट्रनीति का आधार कभी भी राजसत्ता नहीं रहा। हां, धर्म और राजनीति का परस्पर सहयोग अवश्य रहा। डा. वासुदेव शरण के इस कथन में पर्याप्त बल है कि जीवन का अधिक से अधिक क्षेत्र राजसत्ता से जिस प्रकार बचाया जा सकता है, इसके उपाय पारिवारिक जीवन की पद्धति में पाये जाते हैं। राजनीति को जीवन के सभी क्षेत्रों पर अधिकार कर लेने का अधिकार भारत में कभी भी किसी को नहीं दिया। व्यवस्था की धुरी केन्द्रीयकरण नहीं, विकेन्द्रीयकरण रहा। जीवन के अनेक दायरों में राज्य को एक ऊपरी तथा कम महत्त्व का दायरा माना गया। यदि जीवन के विभिन्न दायरे बनाया जाये तो महत्त्व की दृष्टि से क्रमशः आत्मा, बुद्धि, हृदय, सामाजिक जीवन, आर्थिक जीवन तथा राजनैतिक जीवन आते हैं।¹⁰⁴

प्राचीन काल में भारत में राजनीति में धर्म को प्रमुखता थी। धर्म द्वारा राष्ट्र की रक्षा होती थी। यह कहा जाता था -

“न राज्यं नैव राजासीत्

न दण्डो न च दाण्डिकः

धर्मेणैव प्रजाः सर्वाः

रक्षन्ति स्म परस्परम्

प्राचीन काल से भारत में राज्यों के राष्ट्र की धारणा रही है। प्राचीन भारत में कुछ अवसरों को छोड़कर (मौर्य तथा गुप्त काल) भारत में अनेक राज्य विभिन्न स्वरूपों

में रहे। कभी इन्हें जनपद, कहीं महाजनपद कहा। कहीं इनके स्वरूप एक राज्य, कहीं गणराज्य के रहे। परन्तु धर्म का स्वरूप एक सा रहा जिससे सामाजिक व्यवस्था सुचारू बनी रही। भारत में कुछ पाश्चात्य देशों की भांति एकतन्त्र या सामन्तवाद कभी नहीं रहा। राज्यों की यह व्यवस्था वेदों के काल से देखी जा सकती है। एक आधुनिक लेखक के अनुसार¹⁰⁵ -

“भारतीयों ने भी, शताब्दियों से विभिन्न राज्य व्यवस्थाओं के प्रयोग किये। मौर्य तथा मुगल राज्य दोनों में कोई समानता न थी कि सिवाय वे राज्य थे, या पूर्व आधुनिक यूरोपीय राज्य व्यवस्था में भी। केवल कोई मूर्ख या अर्द्धशिक्षित व्याख्याकार उन्हें (राज्यों को) यूरोप के प्राचीन राजव्यवस्था में विभक्त कर सकता है तथा उन्हें निरंकुश कह सकता है। मुगल शासन व्यवस्था ऐसी शालीन थी कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने 75 वर्षों तक मोटे रूप से इसके स्वरूप को अपनाया। अनेक यह नहीं जानते कि 1757 ई. में अंग्रेजों ने प्लासी की लड़ाई जीती परन्तु लगभग 1830 ई. तक, ब्रिटिश कानून भारत में नहीं प्रारम्भ किये गये.... आधुनिक राष्ट्रीय राज्य व्यवस्था, औपनिवेशिक राज्य को प्रभावित करने तथा इसे स्वरूप देने के लिये 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रारम्भ की गई।”

उपरोक्त व्यवस्था की समर्थन सर्वोच्च न्यायालय में 1984 ई. के एक मुकद्दमे में किया गया।¹⁰⁶

“भारत के इतिहास की अतीत की शताब्दियों से यह तथ्य ज्ञात होता है कि भारत कभी भी एक राजनैतिक इकाई न रहा। यहां तक कि मौर्य काल में, यद्यपि देश का अधिकतर भाग मौर्य राजाओं की प्रभुसत्ता में था, भूमि का पर्याप्त भाग स्वतन्त्र राज्यों के अधीन था। इसी भांति मुगल शासन में भारत के विशाल भागों में फैला, उस समय भी स्वतन्त्र शासक थे जिनकी अपने राज्यों की भूमि पर राजनैतिक प्रभुता थी। यह भारतीय

अध्याय-एक

सन्दर्भ सूची

1. इन्साइक्लोपीडिया, ब्रिटैनिका, भाग 16, पृ. 60; भाग 12, पृ. 851
2. होन्स कोहन, द आइडिया आफ नेशनलिज्म (न्यूयार्क, 1938 संस्करण)
3. इन्साइक्लोपीडिया आफ सोशल साइंसेज, भाग 12, पृ. 231
4. विष्णु पुराण
5. महाभारत : शांति पर्व
6. स्वामी विवेकानन्द, द कम्पलीट वर्क्स आफ स्वामी विवेकानन्द, भाग 5 (कोलकाता, 1989) पृ. 461; सतीश चन्द्र मिश्र, भारतीय राष्ट्र चिंतकों का वैचारिक दर्शन तथा इतिहास दृष्टि, पृ. 59-70
7. विस्तार के लिए देखें, धनंजय कीर, लोकमान्य तिलक : फादर आफ अवर फ्रीडम स्ट्रगल (मुम्बई, 1959)
8. श्री अरविंद, सनातन धर्म, उत्तर पाड़ा स्पीच (पांडेचेरी, 1972), पृ. 14
9. श्री अरविन्द, स्पीचेज (पांडेचेरी, 1952); धर्म और जातीयता (बनारस, 1934): शिव कुमार गोयल, श्री अरविन्दोज इन्टीग्रल अप्रोच टू पालिटिकल थॉट (नई दिल्ली, 1981), पृ. 182-185
10. श्री अरविन्द स्पीचेज
11. एम.एल. पंडित, श्री अरविन्द (नई दिल्ली, 1985) देखें, मृणालिनी को पत्र
12. श्याम खोसला एवं वी.के. कुथियाल (स.) हिन्दू नेशनलिज्म : ए कन्टम्परेरी परस्पेक्टिव (देखें, लेख, डॉ. मुरली मनोहर जोशी, 'नेशनल आडेनटीज एण्ड श्री गुरुजी' (चण्डीगढ़, 2009), पृ. 19-35
13. पाञ्चजन्य, 31 जनवरी, 1993
14. डॉ. सत्यनारायण दूबे, आधुनिक राजनीतिक विचारधारायें (संशोधित संस्करण, 1989), पृ. 335
15. वही, पृ. 335
16. वही, पृ. 329
17. वही, पृ. 339
18. वही, पृ. 335

इतिहास का एक रोचक सत्य है कि भारत एक राष्ट्र था जो न समान भाषा और न ही एक राजकीय व्यवस्था पर अस्तित्व में था बल्कि शताब्दियों से विकसित समान संस्कृति के कारण था।”

यह सही है कि भारत कभी राजनीतिक इकाई नहीं रहा। परन्तु यह कहना गलत होगा कि भारतीयों ने राजनीति की दृष्टि से एक करने की कोशिश नहीं की। वस्तुतः यह एक महान महत्वाकांक्षा बनी रही कि भारत सुदृढ़ राजनीतिक दृष्टि से भी बने। अश्वमेध यज्ञों का आयोजन इन प्रयत्नों के उदाहरण हैं। चक्रवर्ती सम्राट बनने के प्रयत्न निरंतर होते रहे। इतिहास में पुष्यमित्र, समुद्रगुप्त, कुमार गुप्त, पुलकेशिय द्वितीय के प्रयत्न इसी प्रकार के थे। सांस्कृतिक जीवन मूल्यों में राज्य कभी भी कोई सर्वोच्च संगठन या अन्य संगठनों में प्रमुख संगठन न था। कोई भी राजनैतिक सत्ता आधुनिक अर्थों में न निरंकुश थी और न ही फासिस्ट। वे धर्म या कर्तव्य के नियमों से बंधे हुए थे।

अतः संक्षेप में भारतीय जीवन दर्शन में राष्ट्र के प्रति सर्वोच्च भावात्मक निष्ठा, पूर्ण समर्पण की भावना, भूमि के प्रति अटूट प्रेम तथा इसके सांस्कृतिक जीवन मूल्यों को व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन के विविध क्षेत्रों में सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। पूर्ण आस्था, श्रद्धा की भावना रखते हुए इसे निरंतर सुदृढ़, प्रखर तथा गौरवशाली बनाये रखने की कामना की गई है।

19. विस्तार के लिए देखें, सतीश चन्द्र मित्तल, इंडिया डिस्टोरटेड : ए स्टेडी आफ ब्रिटिश हिस्टोरियन्स ऑन इंडिया, भाग-2 (नई दिल्ली, 1996), पृ. 160
20. इ.एच. कार, नेशनलिज्म (रायल इन्स्टीट्यूट आफ इन्टरनेशनल अफेयर्स, न्यूयार्क, 1945), पृ. 7
21. वही, पृ. 9, फुटनोट
22. वही, पृ. 14-20
23. सी.जे.एच. हैज, नेशनलिज्म, ऐ रीलीजन (न्यूयार्क, 1940), पृ. 39
24. श्याम खोसला व कुठियाल, पूर्व उद्धरित, पृ. 21
25. वही, पृ. 21
26. दुर्गादास, भारत कर्जन से पहले तथा उसके पश्चात् (1971 का संस्करण), पृ. 205; देखें, समाजवाद का शब्दकोष, उद्धरित (भारतीय संस्कृति प्रचार समिति) शासकीय राष्ट्र और सांस्कृतिक राष्ट्र (भोपाल, 1999), पृ. 14
27. एस.सी. मित्तल, भारतीय राष्ट्र चिंतकों का वैचारिक दर्शन तथा इतिहास दृष्टि (हैदराबाद, 2001), पृ. 78
- 27(अ). विस्तार के लिये देखें, हृदयनारायण दीक्षित, राष्ट्रवाद : भारत और योरूप, राष्ट्रधर्म (जून, 2003), पृ. 15
28. होन्स कोहन, द आइडिया आफ नेशनलिज्म, पृ. 329-331
29. लुई एल सिण्डर, वैरायटीज़ आफ नेशनलिज्म, ए कम्पेयरेटिव स्टेडी (इलोनियस, 1976), पृ. 30-31
30. ऐ. आर. देसाई, सोशल बैकग्राउण्ड आफ इण्डियन नेशनलिज्म
31. एस.एल. सिकरी, राइज़ एण्ड फूलफिलमेन्ट आफ इंडियन नेशनलिज्म
- 31(अ). दुर्गादास, पूर्व उद्धरित, पृ. 205
32. विलियम जोन्स, देखें, सर विलियम जोन्स का तीसरे वार्षिक अधिवेशन, ऐशियाटिक सोसाइटी में अध्यक्षीय भाषण, 9 फरवरी, 1786, ऐशियाटिक रिसर्च, भाग-1 (सं. 1884) पृ. 345
33. पं. जवाहरलाल नेहरू, द डिस्कवरी ऑफ इण्डिया (न्यूयार्क, 1946)
34. यजुर्वेद, 21-22
35. सीतीश वेदालंकार (स.) सातवेलकर अभिनन्दन ग्रन्थ, दिल्ली, पृ. 53-71
36. अथर्ववेद पुरुष सूक्त 12/1/12; राधाकुमुद मुकर्जी, नेशनलिज्म एण्ड हिन्दू कल्चर (संशोधित सं. 1957, दिल्ली) पृ. 12
37. वही, 12/1/10
38. वही, 12/1/63; प्रियव्रत वेदवाचस्पति, वेदों का राष्ट्रीय गीत
39. वही, 12/1/15
40. वही, 12/1/1
41. मनुस्मृति : राधाकुमुद मुकर्जी, पूर्व उद्धरित, पृ. 14
42. राधाकुमुद मुकर्जी, वही, पृ. 14
43. देखें, विष्णु पुराण
44. देखें, वाल्मीकि रामायण
45. महाभारत
46. कालिदास, मेघदूत
47. एकनाथ रानाडे (संकलित) उत्तिष्ठत जाग्रत (कानपुर, 1963), पृ. 3
48. विस्तार के लिए देखें, श्री गुरु जी समग्र दर्शन खण्ड-4 (नागपुर, 1974), पृ. 166-170; एम. एस. गोलवलकर, बंच आफ थोट्स (बंगलूर, 1966), पृ. 88
49. श्री गुरु जी समग्र दर्शन, भाग-2 (नागपुर), पृ. 146
50. राधाकुमुद मुकर्जी, पूर्व उद्धरित, पृ. 33
51. ऋग्वेद 1/64/46
52. बद्रीनाथ चतुर्वेदी, रीजन, नेशन एण्ड प्रिंसिपल आफ डाववरसीटीज़, टाईम्स आफ इण्डिया, 9 जून 1990
53. श्री अरविन्द, ए आइडिया आफ ह्यूमन यूनीटी
54. ओल्ड टेस्टामेन्ट 1/26 व 1/28 देखें, माइकेल डेनो, द इंडियन माइंड, दैन एण्ड नाऊ (कैनाडा, 2000), पृ. 81
55. वही, पृ. 84
56. रामस्वरूप, आन हिन्दुइज्म, रीव्यूज़ एण्ड रिफ्लेक्शन्स (नई दिल्ली, 2000), पृ. 83
57. वही, पृ. 3, विस्तार के लिए सनातन धर्म और उसके उन्नायक (चण्डीगढ़, 1999), पृ. 1-36
58. वही, पृ. 10-11

59. श्री अरविन्द, अवर सनातन धर्म, 'धर्म पत्रिका'
60. उद्धरित, वासुदेव शरण अग्रवाल, लेख, पुस्तक सनातन धर्म एवं उसके उन्नायक में, पृ. 11
61. वही, पृ. 11-12
62. वही, देखें, लेख, डा. रमाकान्त आंगिरस, आधुनिक संदर्भ में सनातन धर्म
63. सीताराम गोयल, परवर्सन आफ इंडियाज पालिटिक्स पारलेंस (दिल्ली, 1984), पृ. 55, 58-80; देखें लेख 'हम अपने धर्म से भटक गये हैं', जनसत्ता, फरवरी 1988; फार ए हिन्दू हिस्टोरोग्रेफी, 'आर्गनाइजर' दिवाली अंक 1981
64. डा. टी.एम.एस. माधवन, मेटाफिजिक्स इन हिन्दुइज्म (पटियाला, 1969), पृ. 18
65. डेविड फ्रोवली, हिन्दुइज्म द इंटरनल ट्रेडीसन
66. स्वामी विवेकानन्द के विचार (उद्धरित), एकनाथ राणाडे, राउजिंग काल टू हिन्दू नेशन (कोलकाता, 1963), पृ. 5
67. श्री अरविन्द, उत्तरपाडा का भाषण (पांडीचेरी, 1983 संस्करण)
68. एच.वी. शोषाद्रि, राजनीति और राष्ट्र जीवन के आधारभूत मूल्य, पाञ्चजन्य, 15 सितम्बर, 1985
69. डा. राधू चन्दर शास्त्री, हिन्दुत्व की मूल वैदिक परम्परा, पाञ्चजन्य, 22 सितम्बर, 1985
70. श्री अरविन्द, सनातन धर्म उत्तरपाडा भाषण (पांडीचेरी, 1983), पृ. 11-12
71. वही, पृ. 14
72. (उद्धरित) जस्टिस डा. एम. रामा ज्योस, प्रदीप जैन बनाम भारत सरकार (एआईआर 1984, सुप्रीम कोर्ट, 1420) देखें श्याम खोसला व वी.के. कुथियाल, पूर्व उद्धरित, पृ. 37; उद्धरित सुप्रीम कोर्ट निर्णय 1996, देखें जस्टिस डा. एम. रामा ज्योस, हिन्दुत्व, अवर कल्चरल नेशनलिज्म एण्ड वेल्यूज आफ लाईफ (दिल्ली, 1996) पृ. 12-13
73. (उद्धरित) जस्टिस डा. एम. रामा ज्योस, श्याम खोसला एवं कुथियाल, पूर्व उद्धरित, पृ. 37
74. वसुमिट डी. कुन्हा, स्पीरचुअल वेल्यूज इन ऐवरी डे लाइफ, द टाइम्स आफ इंडिया, 9 फरवरी 2004
75. (उद्धरित) कृष्णन पैल्लई, अवर लाइफ ब्लड इज स्पीचुलीटी, द टाइम्स आफ इंडिया, 20 जुलाई, 1997
76. एच.वी. शोषाद्रि, राजनीति और राष्ट्रीय जीवन के आधारभूत मूल, पाञ्चजन्य, 15 सितम्बर 1985
77. देखें, सम्पादकीय, द टाइम्स आफ इंडिया, 14 अगस्त 2001
78. देखें, संस्कृत कमीशन (भारत सरकार द्वारा स्थापित) (नई दिल्ली, 1957) अध्याय चार
79. वही
80. वही
81. रिपोर्ट आफ द संस्कृत कमीशन आन संस्कृत 1957, पृ. 71
82. वही, पृ. 73
83. वही, पृ. 74
84. एस.सी. मित्तल, मैकाले की शिक्षा नीति : एक विश्लेषण (भारतीय शिक्षा परम्परा एवं वर्तमान सन्दर्भ), पृ. 19
85. वही, पृ. 19
86. एन.सी.ई.आर.टी., संस्कृत द वोयेस आफ इंडियाज एण्ड विज्डम (नई दिल्ली, 2001) पृ. 1
87. वही
88. वही
89. वही, पृ. 1, 9
90. वही, पृ. 2
91. वही, पृ. 2, 9, 34
92. वही, पृ. 3
93. वही, पृ. 4
94. वही, पृ. 4
95. उच्चतम न्यायालय का निर्णय रिपोर्ट 1994 (6) सेक्शन 579, पैरा 11) देखें, जस्टिस एम. रामा ज्योस, हिन्दुत्व अवर कल्चरल नेशनलिज्म एण्ड वेल्यूज आफ लाईफ (दिल्ली, 1996), पृ. 6; विस्तार के लिए द वोयेस आफ इंडियन सोल एण्ड विज्डम, पृ. 30-36
96. यजुर्वेद 40/1; ईशोपदेश, 1
97. विस्तार के लिए क्षीतीश वेदालंकार (सम्पादित) सालवेलकर अभिनन्दन ग्रन्थ (दिल्ली, तिथि नहीं), देखें, सालवेलकर के विचार, पृ. 119-131
98. मोहनदास कर्मचन्द गांधी, सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड 64, पृ. 294-297, देखें हरिपाद में 30 जनवरी 1937 को गांधी जी का भाषण; हरिजन (अंग्रेजी) 30 जनवरी 1937

99. वही, देखें, सार्वजनिक सभा, कोट्टयम में भाषण, 30 जनवरी 1937, पृ. 322-324
100. बजरंग लाल गुप्ता : हिन्दू अर्थचिंतन (नागपुर, 5100 युगाब्ध) पृ. 7; प्राचीन भारतीय अर्थचिंतन की प्रासंगिकता, विश्व सम्वाद केन्द्र पत्रिका, 52वां शताब्दी अंक 1(2) (लखनऊ, 1999), पृ. 44
101. वही, पृ. 44
102. गांधी सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड 23, 24 अप्रैल 1924, पृ. 516-518
103. वही, 3 अप्रैल 1924, पृ. 373; यंग इंडिया, 3 अप्रैल 1924
104. विस्तार के लिये देखें, सतीश चन्द्र मित्तल, धर्ममय राजनीति इस देश की परम्परा, पाञ्चजन्य, 16 मार्च 1986
105. आशीष नन्दी, डिप्रेसिंग प्रोगनोसिस रीडिफाइनिंग इंडियन स्टेट, द टाइम्स आफ इंडिया, 15 मई 1995
106. जस्टिस ए. रामा ज्योस, वही, पृ. 3, प्रदीप जैन बनाम भारत सरकार (एआरआर 1984, एस. सी. 1420)

अध्याय-दो

प्राचीन काल में भारतीय राष्ट्रवाद का विकास

भारतीय राष्ट्रवाद का चिंतन तथा विकास, भारतीय इतिहास की एक अत्यन्त रोमाञ्चकारी, हृदयस्पर्शी तथा गौरवपूर्ण यश गाथा है। जब विश्व में सभ्यता का प्रारम्भ हुआ, तब भारत ने अपने को विश्व के प्राचीनतम राष्ट्रों में खड़ा पाया। विश्व का पहला ग्रन्थ ऋग्वेद यहां लिखा गया जो पहले हजारों वर्षों तक ऋषियों के परिवारों द्वारा कंठस्थ पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहा। हजारों वर्षों बाद महर्षि वेदव्यास ने इन चारों वेदों को व्यवस्थित किया। वैदिक साहित्य में भारतीय राष्ट्र के विकास का अद्वितीय वर्णन है। यह वह काल था जब न ईसा मसीह का जन्म हुआ था और न कहीं इस्लाम का अता-पता था। प्रायः ईसाई तथा इस्लाम जगत में अपने रीलीजन या मजहब के पूर्व के काल को 'अन्धकारमय' बताया गया। इतना ही नहीं, ईस्वी के हजारों वर्षों के बाद तक अनेक यूरोपीयन राष्ट्रों का जन्म भी न हुआ तथा इंग्लैण्ड सरीखा राष्ट्र, यूरोप के अन्य राष्ट्रों के प्रति अत्यन्त जंगली तथा पिछड़ा हुआ था। एक आधुनिकतम खोज के अनुसार वहां के शाही परिवार के लोग अठारहवीं सदी के अन्त तक मानव का मांस खाते रहे।^{1(अ)} अतः अधिकतर यूरोप राष्ट्रों का जीवन अत्यन्त कष्टमय तथा असुविधापूर्ण था।

भारतीय राष्ट्रवाद के विकास को जानने से पूर्व यह आवश्यक है कि हम 18वीं तथा 19वीं शताब्दी में ब्रिटिश प्रशासकों तथा ईसाई मिशनरियों की मनगढ़न्त कल्पनाओं को भुला दें। हमें उनके पूर्वाग्रहों से मुक्त होना होगा। विलियम जोन्स, चार्ल्स ग्रांट, विलियम विल्बरफोर्स, जेम्स मिल, लार्ड मैकाले तथा उनके मानस पुत्रों द्वारा प्रचारित भ्रामक तथा प्रमाणरहित 'कुप्रयासों' तथा 'कुप्रचारों' को विस्मृत करना होगा। भारत में शासन करने तथा बनाये रखने के लिए उन्होंने अनेक झूठी तथा गपोड़ गाथाओं को जोड़ दिया है ताकि भारतीयों में हीन भावना पैदा हो। उन्होंने कुछ सौ वर्षों के पाश्चात्य इतिहास क्रम में हजारों सालों पूर्व के भारत के विकसित इतिहासक्रम को अपने ढंग से देखा जो सर्वथा अवांछित, निन्दनीय तथा हास्यापद है। उदाहरण के लिए ब्रिटिश

विद्वानों ने भारत के प्राचीन राष्ट्र में निरंकुशतंत्र (मोनार्की) तथा सामन्तशाही (फ्युडलिज्म) को देखा जो सर्वथा अप्रमाणित तथा अमान्य है। इसी भांति उन्होंने 'रीलीजन' का अनुवाद 'धर्म' के रूप में किया जो गलत है। भारत का प्राचीन 'राष्ट्र' या यूरोपीय प्रचलित शब्द 'नेशन' भी समार्थक शब्द नहीं हैं। वस्तुतः पाश्चात्य देशों में राष्ट्रीयता के मनोवैज्ञानिक अवयव एक जैसे नहीं हैं। अलग-अलग देशों का विकास अलग अलग परिस्थितियों में अलग-अलग कारणों से हुआ। अतः उनमें भी गुणात्मक अंतर है।

भारत को विश्व का पुरातन तथा सनातन राष्ट्र माना जाता है। यह वह काल था जब विश्व की अनेक सभ्यताओं का जन्म भी नहीं हुआ था। पाश्चात्य जगत में, यूरोप का प्राचीनतम देश यूनान भी अपनी अहंकारपूर्ण वाणी में अपनी सभ्यता का प्रारम्भ 4004 वर्ष ई. पूर्व मानता है। ईसाई पादरी भी सृष्टि की उत्पत्ति भी 4004 वर्ष ई. पूर्व कहते हैं। यह वह काल था, जब भारत में अनेक राज्य विकसित हो गये थे।

भारत विश्व का एक प्राचीन राष्ट्र है जिसका जन्म तथा निर्माण एकाएक किसी राजनीतिज्ञ या धर्मयुद्ध से नहीं हुआ, बल्कि इसकी स्वनिर्मित हुई।

वेदों में राष्ट्रवाद

वेदों के एक महान भाष्यकार के शब्दों में "वेद मानव जाति के आदिग्रन्थ हैं। वेद प्राचीनतम आर्य संस्कृति की प्राचीनतम ज्ञानराशि हैं। वे विश्व के लिए सर्वकालिक मार्गदर्शक दीप स्तम्भ हैं।"¹

निःसन्देह वैदिक साहित्य, विश्व के इतिहास में मानव की अमूल्य धरोहर हैं जिसमें मानव जीवन के आदर्शों, जीवन मूल्यों तथा जीवन प्रणाली का आदर्श प्रस्तुत किया है। वैदिक साहित्य में सामान्यतः चार वेद - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद तथा ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, वेदांग, षष्ठ दर्शन तथा उपवेद आते हैं। महात्मा बुद्ध से पूर्व इस काल में साहित्य की दृष्टि से इसे छन्दकाल, मन्त्रकाल, ब्रह्मकाल तथा सूत्रकाल कहा गया है।²

वैदिक साहित्य के विभिन्न मन्त्रों से एक वैभव सम्पन्न, सुदृढ़ तथा उन्नत राष्ट्र का वर्णन है। विश्व में 'राष्ट्र' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में किया गया है। आदर्श राष्ट्र जीवन की

संकल्पना में व्यक्तिगत तथा सामूहिक जीवन का बोध तथा आदर्श गुणों का वर्णन किया गया। इसमें स्थान-स्थान पर राष्ट्र पुरुषों - राजाओं, सेनापतियों, विद्वानों, सभी को श्रेष्ठतम गुणों की वृद्धि तथा उनका कर्तव्य बोध कराया गया है। राजा हो अथवा प्रजा, सभी का राष्ट्र के प्रति कर्तव्यों की पूर्ति का आह्वान है, न कि अधिकारों के अहंकारों की अभिव्यक्ति का।

यदि वेदों के कुछ मन्त्रों का ही अवलोकन करें तो राष्ट्रवाद का सर्व कल्याणकारी बोध होता है। वेदों में आदर्श मानव समाज रचना का वर्णन है जिसका आधार समाजोन्मुख परिवार को बतलाया गया है। ऋग्वेद के दसवें माडल के अंतिम 191वें सूत्र में समूचे राष्ट्र संगठन के मन्त्र को बतलाया गया। इसमें कहा गया है -

सं गच्छध्वं सं वदध्वं वो मनांसि जानताम्।

देवा भागँ यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते।।³

हे मनुष्यों! सब मिलकर चलो, मिलकर बोलो और मिलकर मानसिक उन्नति करो। तुम्हारे मन मिले हुए एकता के भाव से हों। जिस प्रकार पूर्व विद्वान अपने-अपने उत्तरदायित्वों को पूर्ण करके विचारपूर्वक परमेश्वर की उपासना करते थे।

समानो मन्त्रः समितिः समानी, समान मनः सहेचित्तमेधनम्

समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषाः जुहोमि।।⁴

"विचार समान हों, सभा-समितियां, सामूहिक जीवन की गतिविधियां समान हों, मन समान हो और चित्त, सहयोगी और समान हो। परमेश्वर सबको समान विचारों वाले और समान वस्तुओं और पदार्थों से युक्त तथा समान यज्ञीय भावना से ओतप्रोत हो।"

समानी व आकूतिः समाना हृदय यानि चः

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।⁵

"सबकी संकल्प शक्ति और हृदय समान हों। सबके मन समान हों, जिससे सब परस्पर मिलकर सुखपूर्वक रहें।"

संक्षेप में एक ऐसे सशक्त राष्ट्र की कल्पना की गई जहां केवल कुछ गिने-चुने तत्वों

में ही एकरूपता तथा समानता न हो बल्कि राष्ट्र के सदस्यों के मन, चित्त, हृदय सभी समान विचारों से ओतप्रोत हों तथा समान-जीवन में सभी एक दूसरे के सहायक तथा सहयोगी हों।

इसी भांति यजुर्वेद में भी सभी प्रकार के मानवीय गुणों की वृद्धि करते हुए राष्ट्र को उन्नत करने को कहा गया -

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायातामा राष्ट्रं
राजन्यः शूरऽइष वयोऽतिवयाधी महारथो
जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोद्गानड्वानाशुः सप्तिः
पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवावस्य
यजमानस्य वीरो जायता निकामे नः पर्जन्यो
वर्षतु फलवत्यो नूऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम।⁶

अर्थात् हे परमेश्वर! इस राष्ट्र के ब्रह्मवर्चस से युक्त ब्राह्मण उत्पन्न हों। पराक्रमी, शस्त्रविद्या में पारंगत, शत्रुओं को पीड़ित करने वाले महारथी शूरवीर राजपुरुष उत्पन्न हों। दुधारू गायें, उत्तम भारवाहक बैल और वेगवान घोड़े प्राप्त हों। स्त्रियाँ कार्यकुशल और शीलवती हों। विजयशील, शत्रुहन्ता, सभ्य उत्तमरथी और याज्ञिक युवा वीर यहां उत्पन्न हों, मेघ इच्छनुकूल वर्षा करें और औषधियों (वृक्ष और लतायें) पके हुए फलों से युक्त हों और हमें सब अभिलाषित पदार्थ प्राप्त हो तथा सब प्राप्त वस्तुएँ सुरक्षित रहें। ऐसे आदर्श राष्ट्र के निर्माण के लिए ज्ञान, बल और शरीर बल की आवश्यकता है।

यजुर्वेद में राष्ट्र यज्ञ की भी चर्चा की है तथा राजा के अनेक गुणों की आवश्यकता पर बल दिया है। उदाहरणतः अध्याय पांच में उसे राक्षसवृत्तियों का, विघ्नों को, शत्रुओं का गला काटने को कहा गया है।⁷ राष्ट्र के शासक को 'प्रजा की पीठ का आधार' तथा 'विद्वानों का आश्रय' बतलाया गया है।⁸ उसे मंगल कार्यों से युक्त हो कर और सिंहासन पर बैठकर न्यायपूर्वक कार्य करने को कहा गया।⁹ अतः स्थान-स्थान पर शासक को कर्तव्य बोध कराया है, अधिकार का नहीं।

सामवेद में भी राष्ट्रनायक अथवा शासक व सेनापति के कर्तव्यों का बार-बार बोध

कराया गया है। 19वें अध्याय के 49वें मन्त्र¹⁰ में कहा गया -

यद्युज्जाथे वृषणमश्विना रथं नो मधुना क्षत्रमुक्षतम्।

अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वंत वयं धना शूरसाता भजेमहि।।

हे राजा और सेनापति! आप जब विजयश्री करने वाले युद्धरत को जोतते हो तो हमारे राष्ट्र को घृतादि मधुर पदार्थों से परिपूर्ण करते हो। हमारी सेनाओं को अन्नादि पदार्थों और तेज-बल से पुष्ट कर दो, जिससे हम युद्धों में विजयी होकर धन प्राप्त करें।

सामवेद में बार-बार युद्धों में जाने तथा संग्राम में विजय प्राप्त करने की आकांक्षा जताई गई है।¹¹

अथर्ववेद राष्ट्रोत्थान की सर्वोत्तम कृति मानी जाती है। मातृभूमि के प्रति इतनी प्रगाढ़ भक्ति की अभिव्यक्ति विश्व के किसी भी ग्रन्थ में दुर्लभ है। इसे राष्ट्रनिर्माण का ग्रन्थ माना गया है। राष्ट्र कैसा हो? राजा प्रजा के सम्बन्ध, विभिन्न अधिकारियों के कर्तव्यों का विमोचन इसमें किया गया।

अथर्ववेद के एक पूरे अध्याय (12वां काण्ड) के प्रथम 63 मन्त्र तो राष्ट्रभावना को पूर्णतः समर्पित हैं। इसे 'पृथ्वी सूक्त' अथवा 'भूमि सूक्त' भी कहा गया है। प्रत्येक मन्त्र राष्ट्र की जागृत भावना का द्योतक है। यह राष्ट्र वन्दना का मधुरतम संगीत है जो हृदयगम करने वाला है।

वेदों में राजा को पृथ्वी या राष्ट्र का शासक या पालक नहीं बतलाया है। उल्लेखनीय है कि जब पाश्चात्य देशों में या मुस्लिम देशों में शासक को निरंकुश अथवा स्वेच्छाचारी वर्णित किया गया है। वर्तमान काल में कुछ देशों में उसे राष्ट्राध्यक्ष, राष्ट्रपिता, राष्ट्र संस्थापक कहा है न कि 'राष्ट्र का पुत्र' या सेवक कहा गया है। वस्तुतः यह ही उसकी सम्मानजनक, सर्वश्रेष्ठ उपाधि है। अथर्ववेद में राजा के अनेक कर्तव्य बतलाये हैं।

अथर्ववेद में पृथ्वीमाता या मातृभूमि अथवा राष्ट्रमाता के प्रति कर्तव्यों का विश्लेषण अत्यन्त संक्षेप में किया है। पृथ्वीसूक्त के प्रथम मन्त्र में ही कहा गया¹² -

“सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।

सा नो भूतस्य भव्यस्य पल्युरं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ।।”

अर्थात् सत्यनिष्ठा, परम सत्य व्यवस्था, तेजयुक्त दक्षता, तप और साधना, ब्रह्म ज्ञान तथा याज्ञिक व्यवहार पृथ्वी को धारण करने वाले तत्त्व हैं। भूतकाल और भविष्य में भी सबका पालन करने वाली मातृभूमि हम विस्तृत स्थान प्रदान करें।

यह पृथ्वी न केवल भूतकाल या भविष्य जनों को व्यक्त करती है। बल्कि वर्तमान में समस्त राष्ट्रजनों की चिन्ता करती है।

दूसरे मन्त्र में कहा है¹³ –

“असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्य उद्वतः प्रवत समं बहु।

नानावीर्या ओषधीर्या बिम्भर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ।।”

अर्थात् जिस भूमि के ऊंचे नीचे और समतल, अनेक स्थानों पर रहने वाले मनुष्यों की विधिता में भी एकता है और जो अनेक शक्तिवर्धक औषधियों से भरी है, वह पृथ्वी हमें विस्तृत स्थान दे और हमारे अन्न-धन और यश में वृद्धि करें।

इसी भांति अन्नादि खाद्य पदार्थ तथा कृषि उत्पाद विपुल मात्र में करने वाली मातृभूमि की वन्दना की है।¹⁴

“अगले मन्त्र में जिस भूमि पर अतीत काल में पूर्वजों ने अनेक पराक्रमयुक्त कार्य सम्पन्न किये हैं, जिसमें दैवी शक्तियों ने आसुरी शक्तियों को पराजित किया है, जो गायों, घोड़ों तथा विभिन्न उपयोगी पशु-पक्षियों का आश्रयस्थल रही है, वह पृथ्वी माता हमें ऐश्वर्य, तेज और बल प्रदान करें।”¹⁵

पृथ्वी माता का सबको निवास देने वाली, स्वर्ण की छाती वाली (सुवर्ण की खानों से युक्त) विशाल भूमि जिसकी रक्षा दिव्य पुरुषों ने जागृत, सतर्क तथा प्रमादरहित होकर की, जिसका हृदय परम व्योम में अमृत से आवृत रहता है, जहां दिन-रात जलधारायें बहती तथा परिव्राजक सन्यासी निरंतर रात-दिन प्रजाओं को सदुपदेश देते हैं तथा सूर्य व चन्द्रमा दिन-रात चक्कर लगाते हैं तथा जहां हिमाच्छादित पर्वत शिखर तथा सुखदायी वन हैं, उस माता के

आशीर्वाद की याचना की है।¹⁶

12वें मन्त्र में राष्ट्रजनों ने अपना पृथ्वी से नाता बतलाते हुए कहा –

यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः। तासुनो धेह्याभि नः

पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ।।¹⁷

अर्थात् हे पृथ्वी! तेरे मध्य भाग, केन्द्रीय स्थल या नाभि तथा तेरे शरीर से जिन ऊर्जादायक पदार्थों की उत्पत्ति होती है, उनमें हमें स्थापित रख और हमें पवित्र कर। भूमि मेरी माता है और मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ। मेघ हमारे पिता के नाते हमारी तृप्ति करें। पृथ्वी के नित्य यज्ञों की भूमि तथा उसके मन्त्रों को यज्ञघोष, दुष्टों का दमन व सज्जनों की रक्षक, पंच तत्वों व पंच प्रकार के (विद्वान, वीर, व्यापारी, शिल्पी तथा सेवारत) मनुष्य की रक्षक, मधुवाणी तथा सब प्रकार की अन्न औषधियों को देने वाली माता के प्रति हम सब प्रकार की सेवा करें।¹⁸ मन्त्र में मांगा है कि अग्नि हमें प्रकाशवान करे।¹⁹ इसी भांति पृथ्वी माता से निवेदन किया कि माता अनेक औषधियों तथा जलों से उत्पन्न विभिन्न सुगन्ध से सुरभित करें।²⁰

एक मन्त्र में कहा है –

उदीराणा उतासीन नास्तिष्ठन्तः प्रकामन्तः।

पद्म्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ।।²¹

अर्थात् हम अपने दाहिने और बायें पैरों से भूमि पर बैठते, खड़े होते और चलते-फिरते कभी न डगमगायें, दुखी न हों, विचलित न हों। प्रजाजन पृथ्वी माता से शरीर की स्वच्छता और स्वास्थ्य के शुद्ध जल, विचरण के लिए सुखदायी दिशायें, तथा कल्याणकारी मार्गों की कामना की।²² एक मन्त्र में मातृभूमि सभी छः ऋतुओं में पूर्ण आयु तक सुख की कामना की।²³

मन्त्र 41 में भारत की विभिन्नता में एकता का दर्शन कराते हुए कहा है –

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या वयैलबाः। युध्यन्ते यस्मामाक्रन्दो दुन्दुभिः। सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्नानसपत्नं यस्यां वदति मा पृथिवी कृणोतु।²⁴

जिस भूमि पर विविध भाषाओं और बोलियों में मनुष्य गाते और नाचते हैं। जिस पर

शूरवीर, हुंकारों के साथ युद्ध करते हैं। जिस पर युद्ध की दुन्दुभी बजती है, वह भूमि हमारे शत्रुओं को दूर भगा दे और शत्रुरहित कर दे।

जहां कई मन्त्रों, जंगली पशु, मृग, सिंह, बाघ और मानवी भक्षी पशु तथा ऊद बिलाव, भेड़िये, भालू आदि हिंसक पशु से रक्षा की कामना की।²⁵ वहां विलासी पुरुष और स्त्रियों जो अनर्गल बोलने वाले, जो कंजूस या ओछे मनुष्य हैं उन सब राक्षसों और पिशाचों से भी रक्षा की कामना की।²⁶

पृथ्वी माता के प्रति उदात्त भाव प्रकट करते ही यह भी कहा गया -

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम्।

ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते।।²⁷

हे मातृभूमि! जो ग्राम, नगर, वन, सभा-समितियां, युद्ध अथवा वार्ता या चर्चा के स्थान हैं, उन सब स्थानों पर हम तेरा यशोगान करें।

मातृभूमि से सब कामनाएं पूरी करने की बात करते²⁸ हुए इस पृथ्वी सूक्त के अंतिम मन्त्र में कहा है कि -

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठिम्।

संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम्।।²⁹

हे मातृभूमि! मुझे कल्याण के साथ उत्तम प्रतिष्ठा प्रदान कर। हे सृजनशील। मुझे प्रकाश से संयुक्त, प्रशंसायुक्त सम्पत्ति और विभूति प्रदान कर।

उपरोक्त वेदों में उद्धृत पवित्र मन्त्रों के आधार पर राष्ट्रमाता का स्वरूप तथा वैशिष्ट्य अति संक्षेप में समझा जा सकता है। पृथ्वी माता रूपी भारत राष्ट्र को अनन्त अमूल्य देनों को कौन इस माता का पुत्र भूल सकता है? इसके पुत्रों में अतीत, वर्तमान तथा भविष्य की सन्तति जुड़ी है। भारतीयों के लिए यह केवल कोई भूमि का निर्जीव टुकड़ा नहीं है बल्कि श्रेष्ठतम् जननी है। मां का यही यशोगान आदि से वर्तमान तक भारतीय जन करते आये हैं। जो विश्व के किसी भी अन्य भाग में दुर्लभ तथा अप्राप्य है।

भारतीय राष्ट्र का विकास

भारत के प्रसिद्ध विचारक दत्तोपंत ठेंगडी ने अनेक वर्षों के अनुसंधान तथा कठोर परिश्रम के पश्चात् प्राचीन भारत से भारतीय राष्ट्र की कहानी को देने का प्रयत्न किया है।³⁰ यदि इसकी विवेचना अथर्ववेद से ले³¹ तो ज्ञात होता है कि बिल्कुल प्रारम्भ में व्यक्ति थे पर कोई संस्था न थी। वे व्यक्ति भी भिन्न-भिन्न वृत्ति, प्रवृत्ति, विशिष्टियों तथा कर्मों युक्त थे।

जनं बिभ्रती बहुधा विकाचंस

नाना धर्माणं पृथ्वी यथौकसम्।

सहस्र धारा द्रविणस्य मे दुहां

धुवेव धेनु रन पस्फुरन्ती।।

अर्थात् विभिन्न भाषाएं बोलने वाले, विभिन्न धर्मों अर्थात् स्वभाव धर्म के लोगों को, विभिन्न प्रकारों से एक ही मकान में रहने वाले एक परिवार के लोगों के समान जो धारणा करती है, वह हमारी मातृभूमि बिना हिचकिचाहट दूध देने वाली गाय के समान धन की सहस्रों धाराएं हमें प्रदान करे। अलग अलग व्यक्ति थे।

अथर्ववेद के अनुसार सर्वप्रथम विवाह संस्था तथा परिवार संस्था का निर्माण हुआ। इसके मुखिया गृहपति का निर्माण हुआ। अगली अवस्था में पुनः विकास क्रम में आवासीय व्यवस्था हुई, जहां एक क्षेत्र में रहने वाले सब परिवारों के व्यक्ति इकट्ठे होकर सामूहिक कार्य, यज्ञ तथा विचार विमर्श करने लगे। अगली विकास की अवस्था में ग्राम बने, ग्राम सभायें बनीं। इसी क्रमिक विकास में राष्ट्र समिति बनी, जिसके सदस्यों को आमंत्रित परिषद कहा गया। इससे मंत्रिमंडल बने। इसके पश्चात् विभिन्न प्रकार की शासन प्रणालियों का भारत में निर्माण हुआ। पाश्चात्य जगत की सोच के विपरीत सभी जगह एक ही प्रकार की शासन प्रणाली का निर्माण न हुआ।

विभिन्न कालों में, भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग शासन प्रणालियां बनीं। भारत के प्राचीन काल में लगभग एक दर्जन शासन प्रणालियां प्रचलित थीं। ऐसा कहा गया है।³²

“स्वस्ति साम्राज्यं भोज्यं स्वराज्यं वैराज्यं परमेष्ठ्यं राज्यं
माहासज्यमाधिपत्यम्, समन्तपयोगी स्यात्
सार्वभूमिः सार्वयेषु आन्ताधारार्थात् पृथित्यै
समुद्रपर्यान्ताय एकराट्रिति।”

अतः भारत के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न प्रकार की शासन व्यवस्था रही। परन्तु इनका निर्माण किसी राजकुमार या महत्वाकांक्षी राजनीतिज्ञ द्वारा नहीं हुआ। इसके निर्माता आत्मज्ञानी ऋषि थे। “राजनीति का व्याख्याता राजा अर्थात् सत्ता को न मानकर उस ऋषि को माना गया जो नगर से दूर गुरुकुल में रहकर केवल मनन, चिंतन और निधिध्यासन में निमग्न रहकर लोकहित की ही चिंता किया करता था। ऐसे ऋषि के लिए राष्ट्र अर्थात् राष्ट्रभाव की रक्षा का प्रथम स्थान था।” अतः इसीलिए भारत को ऋषि-मनीषियों की भूमि कहा जाता है। भारत के विभिन्न भागों में अलग-अलग शासन व्यवस्था होते हुए भी मातृभूमि के प्रति प्रेम तथा सांस्कृतिक जीवन मूल्यों की समरसता, इन ऋषियों-मुनियों के द्वारा बनाये नियमों के द्वारा रखी गई थी। अतः भारत में विभिन्नता में एकता का एक चमत्कारिक गुण का विकास सदा बना रहा।

गणतन्त्र बने, एकतन्त्र भी स्थापित हुए। लेकिन सभी पर धर्म का अंकुश रहा। भारत में राजतन्त्र, पाश्चात्य मोनार्की (Monarchy) जैसे न थे। सम्भवतः पाश्चात्य विद्वानों की यह मानसिकता ओटोमन साम्राज्य के टर्की के शासन को देखकर बनी हो। बाद में पारकीयों के आगमन पर भारत की शासन व्यवस्था में भी दोष आये।

अथर्ववेद के अनुसार किसी भी राजा के बनने पर उसको कर्त्तव्यों को ज्ञान तथा बोध कराया जाता था। राज्याभिषेक के समय राजा को जनता कहती थी, “हम तुझे यहां लाए हैं। भीतर आ जाओ, स्थिर रहो। अस्थिर, चंचल नहीं बनना। तुझे अध्यक्ष के स्थान पर रखने की इच्छा सभी प्रजाजनों में रहे। राष्ट्र तेरे द्वारा अधः पतित न हो।”³³

राजा को यह भी कहा गया कि “तेरे कारण राष्ट्र भ्रष्ट न हो। सब दिशाओं में रहने वाले प्रजाजन एकमत से तुझे राजा पद की इच्छा रखें। तेरे राज्यपद के स्थित रखने में यह राष्ट्र समिति समर्थ हो।”

समाज में सर्वोच्च सत्ता, धर्मदण्ड और नैतिक नेताओं से नियंत्रित थी। अतः राजा अपने कर्त्तव्यों से बंधा था। अनियंत्रित राजा, अत्याचारी अथवा भ्रष्ट शासक के लिए जनता का यह ‘कर्त्तव्य’ होता था कि वह उसे हटा दे या पागल कुत्ते की तरह मार दे।

राजा की प्रजा के सुख की घोषणा सम्बन्धी उद्देश्य करने पर ही उसे राज्यपद दिया जाता था। पहले राजा का निर्वाचन होता था, परन्तु बाद में यह पैतृक बन गया था।

श्रीमद्भागवत् गीता के राजयोग में विस्तार से इसका वर्णन किया गया है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं कि जनमत का महत्त्व न देने से राजा को हटाया गया। राजा प्रजापति को राष्ट्र समिति के अपमान करने के प्रयास के कारण हटाया गया। प्रसिद्ध वैन राजा को जन विरोधी व्यवहार के कारण राजपद से हटाया गया।

अतः भारत में विभिन्न प्रदेशों में कई प्रकार की शासन प्रणालियां प्रचलित थीं। राजतन्त्र भी उनमें से एक था। परन्तु इसका स्वरूप कभी भी पाश्चात्य देशों की भांति स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश न रहा।

भारत में राष्ट्रवाद के विकासक्रम को जानने के लिए यह भी ज्ञात होना जरूरी है कि भारत ने कभी भी पाश्चात्य राष्ट्र-राज्य के विचार को भी स्वीकार नहीं किया, अपितु इसके विपरीत उसने राज्यों के राष्ट्र का सिद्धांत को व्यवहार में अपनाया। कभी भी राजनीति राष्ट्र का सर्वोच्च तत्व न होकर वह सदैव सांस्कृतिक जीवन मूल्यों की दासी रही।

वैदिक काल से वर्तमान तक भारत में सैंकड़ों राज्यों की उत्पत्ति, विकास तथा पतन हुआ। कभी गणराज्य बने, तो कभी एकराज्य। कभी छोटे-छोटे जनपद तो कभी बड़े-बड़े महाजनपद। राम, कृष्ण, महावीर तथा बुद्ध सभी कालों में, अनेक राज्यों में उत्थान पतन हुए, परन्तु समूचा भारत एक राष्ट्र रहा। इस पर न कभी प्रश्न चिन्ह लगा और न ही किसी ने अलग राष्ट्रीय पहचान का विचार किया।

भारत में राष्ट्र की परिकल्पना सांस्कृतिक है, जबकि पाश्चात्य जगत में यह राजनैतिक है। परन्तु यदि हम भारत में राजनीतिक इतिहास तथा इसके संगठन की ओर देखें तो भारत के विभिन्न क्षेत्रों में इसकी विविधता स्पष्ट रूप से दिखलाई देती है। ऋग्वेद के अनुसार, आर्यों को

सप्तसिन्धु प्रदेश का बताया गया है और वहां से वे पूरब और दक्षिण ओर गये थे। जहां कई राज्य थे। इनके संस्थापक इक्ष्वाकु, प्रांशु, सुद्यम और शर्याति थे जिनके मनु के पुत्र कहा जाता है। इन्हीं के वंशजों में प्रसिद्ध शासक पुरुरवा, नहुष, ययाति आदि हुए थे।³⁴

इसी भांति उत्तर वैदिक काल के प्रमुख राज्य गन्धार केकय, मद्र, कुरु, पाञ्चाल, काशी, कलिंग, अश्मक, मूलक, विदर्भ, कोशल, विदेह, मगध, विन्ध्य-मेखला और उसके दक्षिण में पुंड्र, शविर, पुलिन्द, मुषिक आदि जातियां थीं।

शासन का स्वरूप एक सा न था। एक विद्वान के अनुसार³⁶, “प्राची दिशा में मगध, विदेह, कलिंग आदि में साम्राज्य के अभिषेक होते थे और वहां के राजा सम्राट कहलाते थे। इस प्रकार दक्षिण दिशा में सत्त्वत् (यादव) थे। इन लोगों में भोज्य राज्य-संस्था थी और वहां के प्रमुख शासक भोज कहलाते थे। प्रतीची (पश्चिम) में नीच्य और अपाच्य लोगों में (सुराष्ट्र, कच्छ, सौवीर) स्वराज्य राज्य संस्था थी और वहां के राजा स्वराट कहलाते थे। उदीची दिशा में हिमालय के परे उत्तर कुरु और उत्तर मद्रों के जो जनपद थे, वहां वैराज्य-प्रणाली थी। वे विराट-राजहीन-जनपद थे। ध्रुवा-मध्यमा-प्रतिष्ठा दिशा में (अन्तर्वेद) कुरु-पांचाल-वंश और उशीनगर (पूर्वोत्तर पंजाब) लोगों में राज्य की प्रथा थी, वहां के राजा ठीक राजा थे और यही कहलाते थे। मध्यप्रदेश और प्राची के सिवा सभी जगह एक राज्य की प्रणाली नहीं थी। पंजाब से बराबर-महाराष्ट्र तक संघ राज्यों की एक मेखला थी।”

प्राचीन साहित्य में सूत्र साहित्य, रामायण, महाभारत आदि अनेक श्रेष्ठ ग्रंथ, तत्कालीन राजनैतिक तथा सांस्कृतिक जीवन का दिग्दर्शन कराते हैं। सूत्र साहित्य में पाणिनी की अष्टाध्यायी व्याकरण तत्कालीन राज्यों का वर्णन प्रस्तुत करती है।³⁷ इस ग्रन्थ में मध्य एशिया से कलिंग तक तथा सौवीर से असम तक के क्षेत्रों का वर्णन मिलता है। उस समय भी राजतन्त्र तथा गणराज्य दोनों ही राज्य प्रणालियां थी। इसी भांति महाभारत के शांतिपर्व में इसका विशद विवेचन है।

वैदिक काल से ही राजनीतिक संगठनों का विकास हो गया था। उत्तर वैदिक काल में जनपदों का विकास हुआ।³⁸ जनपद मूलतः एक सांस्कृतिक इकाई है।³⁹ जनपद अथवा समुदाय एक-दूसरे के पर्यायवाची हैं। पाणिनी ने ग्रामीण समुदायों जनपद अर्थात् एक विशिष्ट भूभाग तथा

विभिन्न दल के लोगों के समूह का जनपद कहा है।⁴⁰ महाभारत के पश्चात् अनेक छोटे-छोटे जनपद बन गए थे। जिनको कालान्तर में मिलाकर महाजनपदों का निर्माण हुआ।

प्राचीन ग्रन्थों में अनेक जनपदों, समुदायों का वर्णन है, महाभारत के भीष्म पर्व⁴¹ में भारत में 250 जनपदों की सूची दी है, पुराण साहित्य के भुवनकोष में इन जनपदों की संख्या 175 बतलाई है।⁴² डा. एस.एल. अली⁴³ ने पुराणों के अनुसार इनको भौगोलिक आधार पर क्रमबद्ध किया है, तब सम्पूर्ण देश को सात क्षेत्रों में बांटा है तथा उत्तर पश्चिम क्षेत्र को उदित्य क्षेत्र कहा है।⁴⁴ उसने पंजाब के मैदानी क्षेत्र में गांधार, सामिका, जगदूर, केकैय, जंगल, मद्रक आदि जनपद बतलाये हैं। पाणिनी ने अपनी अष्टाध्यायी में 55 जनपदों की चर्चा की है। बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में 16 महाजनपदों का वर्णन है।

छठी शताब्दी ई. पूर्व ऐसे सोलह महाजनपदों के नाम हैं – अंग, मगध, काशी, कोशल, वृज्जि, मल्ल, चेदि, सत्त्व, कुरु, पंचाल, मत्स्य, सूरसेन, अस्सम, अवन्ती, गन्धार तथा कम्बोज। इसके अलावा अनेक छोटे-छोटे जनपद भी थे।

वस्तुतः इन जनपदों के क्रमिक विकास का वर्णन अभी भी अनुसन्धान का विषय है। उपरोक्त वर्णन के आधार पर भारत के उत्तर पश्चिम क्षेत्र में गन्धार तथा कम्बोज महाजनपद थे। पाणिनी ने पंजाब के क्षेत्र में मालव, क्षुद्रक, अर्जुनायन, कुनींद व योद्धेय गणराज्य का वर्णन किया है। इनमें से कुछ गणराज्य तो दूसरी शताब्दी ई. पूर्व से चौथी शताब्दी ई. तक रहे। विद्वानों ने प्राप्त सिक्कों के आधार पर उनके स्वतन्त्र अस्तित्व को बतलाया है।⁴⁵ मालवा तथा योद्धेय गणराज्य के अलावा शेष की जानकारी अभी बाकी है।

ईरानियों तथा यूनानियों के आक्रमण

भारत राष्ट्र के विकासक्रम में ईरान तथा यूनान के आक्रमणों ने बाधा डाली। बोगजकोई का शिलालेख (1400 वर्ष ई. पूर्व) ईरान तथा भारत के उत्तर पश्चिम क्षेत्र के प्राचीन काल में सम्बन्धों का उल्लेख करता है। भारत सांस्कृतिक तथा व्यापारिक सम्बन्धों से पहले से ही जुड़ा था। उत्तर-पश्चिम क्षेत्र से आक्रमण के रूप में सर्वप्रथम ईरानी थे। यह आक्रमण अखमीनियन वंश का संस्थापक तथा प्रथम शासक साइरस (558-530 ई.पू.) था। इस काल में पुक्सुसती

गांधार क्षेत्र का स्वामी था तथा उसका प्रभाव क्षेत्र काश्मीर से मुल्तान तथा सिन्धु से रावी तक था।⁴⁶ ईरान के राजा ने पुक्कुसती से कुछ मदद मांगी परन्तु उसने धोखे से उसका कुछ भाग हड़प लिया था। जब पुक्कुसती ने अपना क्षेत्र से कब्जा हटाने के लिए सेनायें भेजी तब ईरानियों ने भी दो ओर से सेनायें भेजकर आक्रमण किया। पहली सेना गेडरीशिया के मार्ग से गई जो बुरी तरह परास्त हुई तथा कुल ईरान के सात सिपाही बचे थे।⁴⁷ दूसरी सेना परापरामिस्टे के मार्ग से गई थी जिसे आंशिक सफलता मिली थी। इसने अफगानिस्तान के कपीसा (वर्तमान बेग़्राम) पर अधिकार कर लिया था। इसका बदला मस्सग तथा द्वारवा के व्यक्तियों ने कुछ हाथियों की सेना भेजकर किया। संघर्ष में एक भारतीय हाथी सैनिक ने साईरस की जंघा पर प्रहार कर उसे मार दिया था।⁴⁸ इतना ही नहीं मस्सग की रानी टोमीरीस ने साईरस के 12000 घुडसवारों व 6000 पैदल सैनिकों को भी पराजित किया था।⁴⁹ भारत के सैनिकों द्वारा विदेशियों के विरुद्ध यह पहली विजय थी।

ईरान का तीसरा शासक डेरियस प्रथम (522-486 ई.पू.) के काल में गन्धार तथा सिन्धु का कुछ भाग, ईरान के साम्राज्य का भाग थे। ये जानकारी बहिल्लुल तथा परसीपोल्स के अभिलेखों द्वारा प्राप्त होती है। हेरोडोटस ने इस भूभाग को विशाल जनसंख्या तथा ईरान को सर्वाधिक कर देने वाला बताया है। यह लगभग समस्त ईरान के ऐशियाई प्रांतों का 1/3 था। इससे प्राप्त आय 360 स्वर्ण टैलन्ट थी जो लगभग एक मिलियन स्टर्लिंग के बराबर थी।⁵⁰ ईरान के 20 प्रांतों में गान्धार को सातवां सिन्धु के कुछ भाग को 20वां प्रांत बतलाया गया है।

इसी दौरान ईरानियों के यूनानियों के साथ भी संघर्ष चलते रहे। फिलिप्स (359-336 ई.पू.) मेसीडोनिया का शासक बना, जिसकी हत्या कर महत्वाकांक्षी सिकन्दर (336-323 ई.पू.) शासक बना था जिसने ईरान के अंतिम शासक डेरियस तृतीय (336-331 वर्ष पूर्व) को पराजित कर ईरान पर कब्जा कर भारत की ओर बढ़ा।

ईरानियों के उत्तर-पश्चिम क्षेत्र के भूभाग पर आक्रमण करने से भारत में राष्ट्रीयता की जड़ें कमजोर नहीं हुईं, बल्कि वे सुदृढ़ हुईं। भारत राजनीतिक उदासीनता से जागा। राजनीतिक एकता की कमजोरी के ज्ञान से शीघ्र एकता तथा संगठन की भावना तीव्र हुई।⁵¹ संस्कृति, विज्ञान, दर्शन, साहित्य, भाषा, लिपि तथा कला के क्षेत्र में ईरानियों ने भारत से बहुत सीखा। भारतीय

सामान मिस्त्र तथा यूनान तक पहुंचने लगा। धर्म तथा सांस्कृतिक जीवन मूल्यों के प्रति आस्था तथा श्रद्धा सुदृढ़ हुई। हां, इससे भारत के शासन प्रणाली का गणतंत्रीय स्वरूप अवश्य प्रभावित हुआ। शासनतन्त्र में एक विशिष्ट केन्द्रीय नौकरशाही तत्वों का समावेश हुआ।⁵² गन्धार की राजधानी तक्षशिला इन नवविचारों का केन्द्र बनी। नागरिक अधिकारियों का नकद वेतन, निपुण गुप्तचर विभाग, क्षेत्राधिकारियों के नियमित दौरे आदि व्यवस्थाओं का समावेश हुआ। संगठित ईरानी साम्राज्य को देखकर भारत में भी उस प्रकार की इच्छा जागी। साम्राज्य व प्रशासन में प्रांतीय शासन व्यवस्था प्रारम्भ हुई और प्रांतों को क्षेत्रपी कहा गया तथा यहां के शासनाधिकारी को क्षेत्रप। इसका आंशिक प्रभाव विश्व प्रसिद्ध विद्वान कौटिल्य के अर्थशास्त्र जैसे ग्रन्थ में दिखाई देता है।

भारत के उत्तर-पश्चिम का क्षेत्र पितृहन्ता सिकन्दर के आक्रमण से पूर्व ही भारत की संस्कृति, दर्शन, विज्ञान तथा चिकित्सा प्रणाली से भली-भांति परिचित था। ईरानियों के आक्रमण के दौरान भारत के इस क्षेत्र में यूनानियों की कई बस्तियां बस गई थीं। इसमें कपीसा (बेग़्राम) तथा निन्यास प्रसिद्ध थी जो काबुल के उत्तरी किनारे पर थी। सिकन्दर के आक्रमण से पहले ही यूनान के दार्शनिक सुकरात, अफलातून, अरस्तु भारतीय दर्शन विज्ञान तथा विशेषकर चिकित्सा प्रणाली से बड़े प्रभावित थे। मैक्समूलर ने सुकरात से एक भारतीय विद्वान का भावपूर्ण चित्रण किया है। अरस्तु ने भी सिकन्दर को आक्रमण से पूर्व भारत के बारे में कुछ जानकारी दी थी, यद्यपि उसका भारत के बारे में ज्ञान अधकचरा था।

क्रूर, अन्धविश्वासी, बहमी, ज्योतिषियों पर अत्यधिक विश्वास रखने वाले सिकन्दर 334 ई.पू. येक्स कबीले से संघर्ष करता, नृशंस हत्याकाण्ड करते हुए, हैलिसपेंट नामक स्थान से पार कर ईरान पहुंचा तथा डेरियस तृतीय को पराजित कर उसकी हत्या करवाकर, भारत की ओर बढ़ा था। अटक के उस पार ही कुवार की घाटी तथा चित्राल नदी पर वह पहली बार कन्धे पर चोट लगने से घायल हुआ था।⁵³ बाजौर में हत्याकाण्ड करते हुए मस्सग पहुंचा, जहां वह दूसरी बार घायल हुआ था।⁵⁴

326 ई.पू. अटक से 16 मील दूर ओहिन्द नामक स्थान को पार कर वह पंजाब के मैदानी इलाकों तक पहुंचा था। धोखे से झेहलम नदी पार उसका संघर्ष पंजाब के राजा पुरु से हुआ था। इस युद्ध में सिकन्दर को आंशिक सफलता मिली परन्तु उसके सैनिकों का हौसला खत्म

हो गया था। एरियन के अनुसार इस युद्ध के पश्चात् पुरु का राज्य पहले से अधिक विस्तृत हो गया था।⁵⁵ प्लूटार्क के अनुसार इस संघर्ष में मैसीडोनिया के सैनिकों की वीर भावनाएं त्रस्त हो गई थी तथा वे आगे बढ़ने को तैयार न थे।⁵⁶ भारत की विभिन्न जातियों का राष्ट्रीय चरित्र का उत्कृष्ट उदाहरण उस समय दिखलाई देता है जहां मातृभूमि की रक्षा के लिए वे एकजुट हो गई। परस्पर के भेद भुलाकर वे राष्ट्र के शत्रु से संघर्ष करने को तत्पर हो गये। एक उल्लेखनीय उदाहरण मालव व क्षुद्रक राज्य का है जब पहले से चली आई लड़ाई को भूलकर, हजारों की संख्या में उन्होंने परस्पर विवाह सम्बन्ध जोड़े। मालवों पर परकीय आक्रमणकारी सिकन्दर ने भयंकर आक्रमण किया। अनेक मालव मारे गये। अनेकों ने अपने को अग्नि के हवाले कर दिया। बचेखुचों ने पुनः शक्ति प्राप्त कर नदी के पार मोर्चाबन्दी की। यहां सिकन्दर तीसरी बार घायल हुआ⁵⁷ तथा खून से लथपथ हुआ। बड़ी मुश्किल से उसके कुछ सैनिक बेहोश अवस्था में उसे बचा सके। आखिर सिकन्दर को मालवों के साथ युद्ध विराम करना पड़ा। युद्ध विराम के लिये लगभग 100 मालव प्रतिनिधियों का सिकन्दर ने एक विशाल कक्ष में स्वागत किया। यूनान इतिहासकारों ने इस स्वागत का विस्तृत वर्णन किया है। डियोडोटस के अनुसार मालवों ने सिकन्दर की भगोड़ी सेना में रुकावट न डालने का आश्वासन दिया। अतः सिकन्दर की विश्वविजय की आकांक्षायें लिए हुए सेनाएं केवल व्यास नदी तक ही पहुंची। उन्होंने आगे बढ़ने से इंकार कर दिया।⁵⁸ वस्तुतः यह विश्व के इतिहास में अनूठे ढंग की हड़ताल थी। इतिहास में अनेक सैनिक बगावतें, विद्रोहों को तो सुना था परन्तु विश्व के इतिहास में सैनिकों की ऐसी दयनीय दशा पहले कभी न सुनी और न पढ़ी थी। तीन दिन तक सिकन्दर अपने सैनिकों को मनाता रहा। उसे कहना पड़ा कि इन बहरे कान वालों पर (सैनिकों पर) कोई असर नहीं हो रहा है। अतः उसने सेना की वापसी की घोषणा की, सिकन्दर को निराश तथा हताश लौटना पड़ा। उसने व्यास के किनारे 12 खम्भे यूनान के 12 देवताओं के नाम के खड़े किये। यूनानी ढंग से देवताओं को बलि दी गई। ये खम्भे सिकन्दर के वापिस होते ही व्यास नदी में फेंक दिये गये।⁵⁹

सिकन्दर की वापसी भी सरल व सहज न थी। पंजाब के दक्षिण-पश्चिम के क्षेत्र में कई छोटे-छोटे राज्य थे। इनकी संख्या 20-25 थी। ये प्रायः सभी गणराज्य थे। इनमें प्रमुख अश्वक, उरसा, अभिसर, गलुचुक्यन, आद्रिज, सौभूति, मगल, अगलोसाय, अम्बष्ठ, पटल,

शाम्ब, मूर्षिक आदि थे। उनसे किसी प्रकार जान बचाता, सिकन्दर सिन्ध के मुहाने पहुंचा। उसने अपनी सेनाओं को दो भागों में बांटा। एक समुद्री मार्ग से तथा दूसरी बलुचिस्तान के रास्ते थल मार्ग से सेनाओं को भेजा। तीसरी बार घायल हुए घाव के ठीक न होने पर 323 वर्ष ई.पू. बेबीलोन में उसकी मृत्यु हुई। संक्षेप में वह यूरोप (यूनान) में जन्मा, एशिया (भारत) में संघर्ष किया तथा बेबीलोन (अफ्रीका) में मर गया, अपने घर वापिस न पहुंच सका।

ईरानियों की भांति सिकन्दर के आक्रमण का भारत में कोई स्थायी प्रभाव न हुआ। ब्रिटिश इतिहासकार वी.ए. स्मिथ⁶⁰ ने भी माना है कि उसके भारत से जाने के तीन वर्ष के काल में उसके सभी अधिकारी हटा दिये गये, उसकी सेनायें नष्ट हो गई तथा उसके शासकीय प्रांतों का भी कोई भी चिन्ह नहीं रहा।

इसके विपरीत अनेक छोटे-छोटे राज्यों की समाप्ति से भारत में विशाल राज्य स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त हुआ।⁶¹ देश की राजनीति में एकता तथा दृढ़ता स्थापित हुई। साथ ही भारत के जल तथा थल व्यापार को प्रोत्साहन मिला। भारतीय धर्म तथा संस्कृति यूनानियों से प्रभावित न हुई बल्कि इसके विपरीत यूनानियों पर प्रभाव पड़ा। बाद में मीनांडर जैसे यूनानी ने हिन्दू धर्म अपना लिया था। पेंथागोरस के सिद्धांत पर भारतीय दर्शन का प्रभाव दिखता है। तक्षशिला की शिक्षा पद्धति ने यूनानियों को प्रभावित किया। ऐसा माना जाता है⁶² कि भारत से ढाई लाख बैल यूनान में खेती बाड़ी तथा बड़े-बड़े बेड़े तथा नौकायें बनाने के लिये अनेक बढ़ई तथा लुहार ले गया। सिकंदर के आक्रमण का प्रभाव केवल इस तथ्य से जाना जा सकता है कि भारत के किसी भी लेखक ने उसके बारे में एक भी पंक्ति नहीं लिखी।

भारतीय राष्ट्र एवं मौर्य शासक

मौर्य शासकों के इतिहास को भारतीय राष्ट्र का एक स्वर्णिम पृष्ठ कहा जा सकता है। जबकि सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने यूनानियों को खदेड़कर भारत की सीमायें अफगानिस्तान तक पुनः स्थापित की। इसी काल में कौटिल्य तथा सम्राट अशोक दो विश्व विख्यात विभूतियां हुई। एक ने विश्व को शासन व्यवस्था के अद्भुत पाठ पढ़ाये जो बाद में मैकियावली के 'प्रिंस' के रूप में तथा बिस्मार्क के लिए मार्गदर्शक तत्त्व बने। इसी भांति सम्राट अशोक ने विश्व व्यापी भारतीय

संस्कृति का सहिष्णुता, उदारता तथा स्वतन्त्र चिन्तन का विश्व को सन्देश दिया। भारतीय विद्वान, धर्मवेत्ताओं, भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन के प्रचारार्थ भारत के समीपवर्ती देशों में गये तथा बौद्धधर्म एक विश्वव्यापी धर्म बन गया।

मौर्यवंश के प्रथम शासक चन्द्रगुप्त मौर्य भारत का पहला राष्ट्रीय शासक कहा जाता है। यह इसलिए कहा गया क्योंकि उसने अपने राष्ट्र की, मातृभूमि की, भारत की अंतिम सीमा तक विजय प्राप्त कर राष्ट्र की रक्षा की। उसने शून्य से उठकर भारत में एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया। चन्द्रगुप्त भारत की स्वातन्त्र्य संग्राम का प्रथम मुक्तिदाता था जिसने यूनानी क्षत्रपों को मार दिया। बाद में सैल्यूकस को पराजित कर उसे सन्धि करने को मजबूर किया। टार्न के अनुसार उसने पैरोपनिसेडाई (काबुल, गांधार-प्रदेश और सिन्धु के मध्य का क्षेत्र) आरकोशिया (कंदहार), एरिया (हेरात) और जेड्रसिया (बलूचिस्तान) उससे प्राप्त हुए। इसी तरह गांधार और काबुल का क्षेत्र उसके अधिकार में आ गया। उसके राज्य की सीमाएं ईरान तक पहुंच गई थी।

उसने सीमान्त प्रदेशों से सम्बन्ध जोड़े। अत्याचारी नन्द वंश के आखिरी शासक घनानन्द को मार कर पाटलिपुत्र पर अधिकार किया। उसने दक्षिण भारत में राज्य का विस्तार किया, पश्चिम भारत उसके राज्य का भाग था। सौराष्ट्र प्रांत में उसने एक सुदर्शन नामक झील बनवाई थी। अवन्ती पर उसका अधिकार था। वी.ए. स्मिथ ने⁶³ हिन्दुकुश को भारत की सीमा माना है तथा लिखा, “दो हजार वर्ष से भी अधिक हुए, भारत के प्रथम सम्राट ने इस प्रकार उस वैज्ञानिक सीमा को प्राप्त किया, जिसके लिए अंग्रेज उत्तराधिकारी व्यर्थ में ही आहें भरते रहे और जिस मुगल सम्राटों ने भी कभी पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं किया।” रोमन इतिहासकार जस्टिन ने चन्द्रगुप्त मौर्य को सम्पूर्ण भारत का राजा माना है। महावंश में उसे सम्पूर्ण जम्बूद्वीप का शासक माना। वह एक समूचे एशिया का ऐतिहासिक सम्राट था।

साथ ही वह एक महान प्रशासक था। उसका केन्द्र से ग्राम शासन की व्यवस्था भारतीय प्रशासकों के लिए आदर्श बनी। विद्वानों का संरक्षक, कला का पारखी तथा भारतीय धार्मिक सहिष्णुता तथा उदारता का प्रतीक था। बाद के दिनों में वह जैनमत का उपासक बन गया था परन्तु उसने किसी भी धर्म को थोपा नहीं।

24 वर्ष शासन (322-298 ई.पू.) के पश्चात् वह जैन साधु भद्रबाहु का शिष्य बन गया था तथा दक्षिण भारत में रहते श्रवणबेलगोला नामक स्थान पर रहने लगा था तथा शासन अपने पुत्र बिन्दुसार को सौंप गया था। जिसने 25 वर्ष अर्थात् 298-173 वर्ष ई.पू. तक राज्य किया। उसने न केवल चन्द्रगुप्त मौर्य के साम्राज्य को बढ़ाया बल्कि दक्षिण भारत में उसका विस्तार किया। उसने एक लम्बे युद्ध के पश्चात् पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों के बीच की भूमि को अपनी अधीनता में कर लिया था। कृष्णस्वामी आर्यंगर के अनुसार⁶⁴ मौर्य सेनायें कौंकण से कर्नाटक तट के साथ-साथ उसके दक्षिणी भागों में दक्षिण-पूर्व कोयंबटूर की ओर बढ़ी थी और वहां से सेनायें दो भागों में बंट गई थीं जो कि एक ओर चोल देश तथा इसकी ओर पांडेय देश चली गई थी। चाणक्य के पश्चात् खल्लाटक व राधागुप्त उसके महामन्त्री रहे थे। उसे अमित्र घात अर्थात् ‘शत्रु का विनाशक’ भी कहा जाता था। उसने अपने पुत्र अशोक के लिए एक शानदार विरासत छोड़ी थी।

सम्राट अशोक विश्व के महानतम शासकों में से था जिसने लगभग चार वर्ष तक गृह युद्ध (269-268 या 236-233 ई.पू.) के पश्चात् राज्य सम्भाला। अपने शासन के प्रारम्भिक सात वर्षों तक उसने अपने राज्य विस्तार की नीति अपनाई। उसने चन्द्रगुप्त मौर्य तथा बिन्दुसार के विजित प्रदेशों पर अपना अधिपत्य रखा। उसने काश्मीर, खोतान के क्षेत्रों को अपने साम्राज्य में सम्मिलित किया। अपने राज्याभिषेक के आठवें वर्ष उसने कलिंग पर आक्रमण की तैयारी की जिसे चन्द्रगुप्त मौर्य तथा बिन्दुसार ने भी जीतने का प्रयत्न न किया था। इस भयंकर युद्ध में अशोक विजयी हुआ। परन्तु संघर्ष में अशोक के तेरहवें शिलालेख के अनुसार 1,50,000 लोग बंदी हुए और 1,00,000 लोग मारे गये थे। इतने बंदी आधुनिक काल में भी किसी महायुद्ध में भी एक साथ बंदी न हुए हैं। इस भयंकर नर संहार ने सम्राट अशोक का हृदय परिवर्तन किया तथा उसने अपने युद्ध घोष के स्थान पर धम्मघोष किया। अब उसने दिग्विजय के स्थान पर धम्मविजय को अपना लक्ष्य बनाया। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उसका साम्राज्य किसी प्रकार से सीमित हो गया या सिकुड़ गया था। भारत के विभिन्न स्थानों पर उसके अभिलेखों से उसके राज्य विस्तार की जानकारी मिलती है। ये अभिलेख उत्तर में अफगानिस्तान (लपांक, कन्दहार), सीमा प्रांत (शाहबाजगढ़ी, मानसेरा) और हिमालय प्रांत (टोपरा, कालसी, मेरठ, निगलीवा, रुम्मिनदेई) से

दक्षिण में उड़ीसा (धौली, जौगढ़) से पश्चिम में गुजरात (गिरनार) तक उसके अभिलेख मिलते हैं।⁶⁵ इन अभिलेखों से उसके साम्राज्य की सीमा पर काफी प्रकाश पड़ता है। संक्षेप में उसका साम्राज्य अफगानिस्तान से मैसूर तक तथा पूर्व में बंगाल तक फैला था। उसके राज्य में हिन्दुकुश अफगानिस्तान तक, बलुचिस्तान, मकरान, सिन्ध, कच्छ, स्वात घाटी, साथ के क्षेत्र, कश्मीर, नेपाल, सम्पूर्ण मुख्य भारत, सिवाय तमिल भूमि के थे।⁶⁶ खोतान में भी उसका प्रभाव था। स्मिथ के शब्दों में, “उसका साम्राज्य उससे भी अधिक फैला था, जहां आज ब्रिटिश राज्य है, सिवाय ब्रह्मा के।”⁶⁷ भारत की राजनैतिक एकता स्थापित करने का श्रेय चन्द्रगुप्त मौर्य को है और उसकी अखण्डता को अक्षुण्ण रखने का श्रेय अशोक को है।⁶⁸ उसने अविजित सीमान्त प्रदेशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये। उसने अपने कूटनीतिज्ञ सम्बन्ध बनाये रखे। उसने धर्म प्रचार के लिए सीरिया, मिश्र, एपिरस (कोरिया) और मैसीडोनिया राजदूत भेजे। सिंहल राज्यों में अपने परिवार के सदस्यों को भेजा।

वी.ए. स्मिथ ने सम्राट अशोक को काओ-सू-यूतो (Kao-tsu-wuti alias Hsiao Yen) की भांति जो चीन के ल्यांग वंश का पहला शासक था जिसने 502-549 ई. का शासक था, के समान माना है। अशोक एक भिक्षु तथा एक शासक दोनों था।⁶⁹ सम्राट अशोक ने न केवल शाही शिकार यात्रा बन्द की बल्कि धम्म का उपदेश दिया तथा पश्चिमी एशिया, पूर्वी यूरोप तथा उत्तरी अफ्रीका में अपने प्रचार के लिए दूत भेजे।⁷⁰ स्मिथ विदेशों में बड़े स्तर पर मिशन भेजने के अशोक के विचार को एक ‘पूर्णतः मौलिक’ मानता है।⁷¹ अशोक का ‘धम्म’ वस्तुतः उसकी सांस्कृतिक सहिष्णुता तथा धार्मिक उदारता के परिचायक हैं। फ्लीट जैसे विद्वान ने उसके धम्म को राजधर्म बतलाया है जो गलत है। राजधर्म तो प्रायः राजा के लिए होता है, प्रजा के लिये नहीं। प्रसिद्ध इतिहासकार राधाकुमुद मुकर्जी ने अशोक के धम्म को सार्वभौम धर्म बतलाया। क्योंकि इसमें वर्णित आचार मूलक सिद्धांत सभी के लिये स्वीकार योग्य हैं। कुछ विद्वानों ने इसे बौद्धधर्म से जोड़ दिया जो अमान्य है। वह किसी मत का प्रतिपादक न था बल्कि भारत की प्राचीन सांस्कृतिक, परम्परा, शाश्वत धर्म का ही उपासक था। परन्तु इतना अवश्य है कि तत्कालीन अवस्था में बौद्धधर्म को प्रमुखता मिली तथा वे विश्व धर्म के रूप में अग्रसर हुआ। सम्राट अशोक का भी धम्म ‘वसुधैव कुटुम्ब’ का ही भाग था।

उपरोक्त सद्गुणों के कारण ही उसे भारत के राष्ट्र निर्माताओं तथा विश्व के महानतम शासकों में माना जाता है। उसने अपने पूर्वजों के साम्राज्य को बनाये रखा तथा उसका विस्तार किया। उसने पूर्व शासन व्यवस्था में कुछ परिवर्तन अवश्य किये। उसने अनेक बौद्ध विहारों तथा सुन्दर कलाकृतियों का निर्माण किया। उसके शिलालेख, स्तूप, भारतीय इतिहास के महान स्मारक हैं जो नरभक्षी तथा अन्धकारमय पाश्चात्य जगत में भी विश्व कल्याण को सन्देश देते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

232 ई. पू. में लगभग 40 वर्ष शासन करने के पश्चात् उसकी मृत्यु हुई। उसके पश्चात् उसका राज्य छोटे-छोटे प्रदेशों में विभक्त हो गया। विभिन्न प्रांतों से उसके वंशज उत्तराधिकारी बन बैठे। परिणामस्वरूप इस वंश के अंतिम उत्तराधिकारी बृहद्रथ को उसके सेनापति पुष्यमित्र ने मारकर शुंग वंश की नींव डाली।

शुंग तथा आन्ध्र के सातवाहन

पुष्यमित्र ने शुंग वंश की स्थापना उस समय की (185 ई.पू.) जबकि भारत छोटे-छोटे राज्यों में बिखरा हुआ था। वामपंथी इतिहासकार रोमिला थापर ने ब्रिटिश प्रशासकों की भांति इस बिखराव को देखते हुए भ्रमवश भारत को ‘एक उपमहाद्वीप’ लिखा है।⁷² बृहद्रथ अंतिम मौर्य शासक का, सेना का निरीक्षण करते समय सेनापति पुष्यमित्र ने उसका वध कर दिया था। पुष्यमित्र शुंग का शासन स्थापित करने का उद्देश्य मौर्य शासन में फैली राजनीतिक अस्थिरता तथा यूनानियों के आक्रमण थे। शुंग ब्राह्मण थे तथा उनका राजपुरोहित प्रसिद्ध विद्वान महर्षि पतंजलि था। सिंहासन पर बैठते ही उसने राज्य को व्यवस्थित किया तथा कुल मिलाकर तीन संघर्ष किये। प्रथम विदर्भ पर युद्ध किया। जहां के मौर्य अमात्य यज्ञसेन ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। पुष्यमित्र का पुत्र जो विदिशा का शासक था, उसने चतुराई से यज्ञसेन के चचेरे भाई माधवसेन को अपनी ओर मिलाकर यज्ञसेन को पराजित किया तथा अपनी अधीनता स्वीकार करने को मजबूर किया।

पुष्यमित्र का दूसरा संघर्ष यूनानियों के साथ था जिन्होंने साकेत, पंचाल मथुरा तथा पाटलिपुत्र पर भी आक्रमण किया था। आक्रमणकारियों का नेता मिनांडर अथवा डेमिट्रियस था।

तीसरे पुष्यमित्र ने पश्चिम के कुछ प्रदेशों पर आक्रमण किया था तथा 'दिव्यादान' व तिब्बती इतिहासकार तारानाथ के अनुसार उसने पंजाब में जालन्धर तथा सांकल (स्यालकोट) पर भी अधिकार किया था। पुष्यमित्र ने अपने जीवन काल में दो बार अश्वमेघ यज्ञ किये थे। धर्म की दृष्टि से वह हिन्दू धर्म में आस्था रखता था। परन्तु यह कहना उपयुक्त नहीं कि वे बौद्ध धर्म का शत्रु था। पुष्यमित्र की दो राजधानियाँ थीं, पाटलिपुत्र तथा विदिशा। दूसरी राजधानी का भरहुत के एक शिलालेख से ज्ञात हो जाता है कि उसने अनेक बौद्ध स्तूपों का निर्माण होने दिया।

148 ई. पूर्व पुष्यमित्र की मृत्यु हुई। कमजोर उत्तराधिकारी आने के बाद इस वंश के अंतिम शासन देवभूति को मारकर वसुदेव कण्व ने अपना वंश चलाया परन्तु यह वंश केवल 45 वर्ष चला। यह वंश 28 वर्ष ई.पूर्व तक चला। इसका अन्त आंध्र के शिमुख ने किया तथा आन्ध्र सातवाहन वंश की स्थापना की।

आन्ध्र-साप्तवाहन शासकों का भारतीय राष्ट्रीय इतिहास में बड़ा महत्त्व है। इस वंश के राजा अपने को सातवाहन कहते थे। मुख्यतः इनका कार्यक्षेत्र गोदावरी और कृष्ण नदी के बीच रहने वाले लोगों का था। यह सम्भवतः महाराष्ट्र के रहने वाले थे तथा पहले महाराष्ट्र में शासन करते थे, परन्तु शकों द्वारा पराजित होने पर ये आंध्र में आकर बस गये थे। इनका शासन काल 450 वर्ष तक माना जाता है। इस वंश में कुछ अन्तर्काल के साथ लगभग 30 शासक हुए। इतिहासकार राधा कुमुद मुकर्जी ने इनका शासनकाल 250 ई.पू. से 300 ई.पू. तक माना है। सम्भवतः यह मौर्य काल में स्वतन्त्र हो गये थे। सिमुक या सिंधुक इस वंश का संस्थापक था जिसने गोदावरी नदी के उत्तरी तट पर प्रतिष्ठान या पैठन को अपनी राजधानी बनाया था। इस वंश में तीन शासक महान प्रतापी हुए। इसमें शातकर्णि प्रथम, गौतमी पुत्र शातकर्णि तथा वशिष्ठी पुत्र पुलुमावी हुए। इसमें शातकर्णि सबसे वीर प्रतापी शासक था जो इस वंश का तेइसवाँ शासक था। सर्वप्रथम सातवाहन राज्य कुछ समय के लिए नष्टप्रायः हो गया था, उसने उसकी पुनः स्थापना की। उसने क्षहारात वंश को पूर्णतः नष्ट कर दिया। उसके काल की सबसे बड़ी घटना शक, पहलव तथा यूनानियों का दमन था।

वस्तुतः शातकर्णि प्रथम के पश्चात, पतन के काल में शक-क्षहारात ने आक्रमण किये थे तथा महाराष्ट्र में उनका राज्य स्थापित हो गया था। तभी सातवाहनों को आंध्र में जाकर बसना

पड़ा था। नहपान को उसने हराया। अब उसने महाराष्ट्र के साथ गुजरात, सौराष्ट्र, मालवा, बरार, पूना, नासिक पर अपना अधिकार किया। उसने नहपान से वे क्षेत्र भी प्राप्त हुए थे जो शकों ने ले लिये थे। उसके नासिक गुफालेख से ज्ञात होता है कि उसके घोड़ों ने तीन समुद्रों का पानी पिया था।

गौतमी पुत्र शातकर्णि एक महान विजेता, विदेशियों से भारत का रक्षक, एक कुशल शासक ही नहीं बल्कि एक धर्म परायण राजा था। वह वैदिक धर्म को मानता था तथा सभी सम्प्रदायों के प्रति उदार था। वी.ए. स्मिथ ने उसे 'हिन्दुत्व का रक्षक' लिखा है।⁷³ उसका राज्य लगभग 24 वर्ष (106 से 130 ई. तक) रहा।

उसका पुत्र वाशिष्ठी पुत्र पुलुमावी भी उसी की भांति वीर, बलशाली तथा कुशल प्रशासक था। उसने भी लगभग 24 वर्ष (130 से 154 ई. तक) तक राज्य किया। उसे आन्ध्रप्रदेश का राजा, 'दक्षिण पथपति' या 'दक्षिण पथेश्वर' कहा गया है।

इण्डो-ग्रीक, शक तथा कुषाणों के आक्रमण

सम्राट अशोक के ही काल से कुछ यूनानी सरदार हिन्दुकुश को पार कर भारत की सीमा के पास बस गये थे। दो महत्त्वपूर्ण प्रांत सैल्यूकस के साम्राज्य से अलग हो गये थे। ये थे बैक्ट्रिया व पर्थिया तथा दोनों स्थानों पर स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गये थे। बैक्ट्रिया हिन्दुकुश व आक्सस के बीच बसा एक समृद्ध प्रदेश था। इसमें डायोडोटस, यूथीडेमस, ड्रेमीटियस आदि यहाँ के प्रमुख शासक बने। ड्रेमीटियस ने भारत के कुछ क्षेत्रों पर आक्रमण किया था। उसने पंजाब तथा पश्चिम भारत से कुछ भागों पर अधिकार कर लिया था। मीनांडर भी इन्हीं में से एक था। थोड़े ही समय में यूनानी सैनिक अयोध्या तक पहुँच गये थे। भुवनेश्वर के निकट प्रसिद्ध हाथी गुम्फा शिलालेख से ज्ञात होता है कि चैत्ररथ के पौत्र बलशाली खारवेल ने अयोध्या तक पहुँचे यूनानियों को पचनंद तक खदेड़ दिया था तथा इस निमित्त राजसूय यज्ञ किया गया।⁷⁴ शुंग काल में उसने भारत पर आक्रमण किया था। कुछ उसे मीनांडर का भी आक्रमण मानते हैं। परन्तु पुष्यमित्र की सेनाओं ने उसे सिंधु तट पर ही रोक दिया था।⁷⁵ परन्तु इसी समय बैक्ट्रिया में विद्रोह होने पर ड्रेमीटियस को वापस जाना पड़ा था तथा मीनांडर द्वारा जीते हुए प्रदेश उन्हें वापिस करने पड़े थे।

दूसरा प्रांत पर्थिया था। यहां के मिथराडेत्स प्रथम ने (176-130 ई.पू.) सिन्धु और रावी के बीच के भाग पर 130 ई.पू. अधिकार कर लिया था। अतः तक्षशिला भाग पर उसने आधिपत्य स्थापित कर लिया था परन्तु वह अधिक देर तक प्रभावी अधिकार न रख पाया था, पर टकराव से शीघ्र ही यूनान के ये दोनों राज्य समाप्त हो गए थे।

इण्डो-ग्रीक के पश्चात् भारत में शक पल्लवों का राजनीतिक प्रभाव स्थापित हुआ। भारत के उत्तर पश्चिम से विदेशियों के झुण्ड के झुण्ड भारत आने लगे थे। मध्य एशिया तथा चीन के इर्द-गिर्द हुई हलचलों ने कुछ कबीलों को अपना स्थान छोड़ने को मजबूर किया। शक दूसरी शताब्दी ई.पू. चीन के पश्चिम क्षेत्र को छोड़कर सीस्तान में रहने लगे थे, जहां उनका बैक्ट्रियन तथा पर्शियन से टकराव हुआ। इन्हें सीथियन भी कहा जाता है। शकों के भारत आगमन के बारे में दो मार्ग बताये जाते हैं। कुछ ने सिंधु नदी के मार्ग से तथा कुछ ने इन्हें ईरान से आने का मार्ग बतलाया है। भारत के विभिन्न प्रदेशों में इनके आगमन से स्वाभाविक रूप से हलचल हुई। कुछ विद्वानों के अनुसार ये यमुना से गोदावरी तक फैले हुए थे। ये तीसरी शताब्दी तक भारत के विभिन्न भागों में शासक बने रहे थे।

मोटे रूप से इन तीन भागों में बांटा जा सकता है। पहली श्रेणी में तक्षशिला के शक शासक आते हैं। इसमें मावेज सर्वप्रथम शक-शासक था। उसका अपना राज्य काश्मीर, गांधार तथा पश्चिमी पंजाब तक था। कुछ विद्वान कपिशा पर भी उसका अधिकार मानते हैं। उसके पश्चात् एजेज प्रथम, एजिलिसेज एजेज द्वितीय आदि शासक हुए। उन्होंने ईरान से प्राप्त क्षत्रप प्रणाली को भारत में चलाया था। अपने शासन के अन्तर्गत उन्होंने विभिन्न प्रदेशों की देखभाल के लिए क्षत्रपों की नियुक्ति की थी। दूसरे भाग में पश्चिम भारत के क्षहरात थे। इसमें प्रसिद्ध नहपान नामक शासक को शक कहा है जो क्षहरात वंश के नाम से प्रसिद्ध है। इन शकों का सबसे प्रसिद्ध शासक नहपान ही था। इसका राज्य पूना, उत्तरी कोंकण से लेकर काठियावाड़, मंदसौर, उज्जैन तथा अजमेर तक फैला था। यह गौतमी पुत्र शातकर्णि द्वारा हारा था। तीसरे भाग में दक्षिण भारत का चष्टन वंश था। इस वंश का राज्य उज्जैन और काठियावाड़ में था, इस वंश का प्रसिद्ध शासक यशोमतिक था। इनके अलावा कुछ शक पंजाब, मथुरा होते हुए पाटलिपुत्र तक पहुंच गये थे। इन्हीं शकों ने उज्जैन के गर्दहिल्य पर आक्रमण किया था। इनको पराजित कर मालव गण के

राजा ने 'विक्रमादित्य' की उपाधि प्राप्त की थी तथा 58 ई. पूर्व विक्रमी संवत् प्रारम्भ किया था। इस संवत् को मालवगण स्थिति या मालवगण काल भी कहा जाता है।⁷⁶ भारत के इतिहास में यह विजय अद्वितीय थी तथा तभी से विक्रमी संवत् भारत में प्रचलित संवत् में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बन गया है।

इसी भांति कुषाण आक्रमणकारियों का आरम्भ में राज्य काबुल के आसपास था। परन्तु उन्होंने अपनी शक्ति बढ़ाकर सिन्धु नदी तक सम्पूर्ण पश्चिमोत्तर प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया था। कुछ काल बाद वे पूर्व में अवध और पाटलिपुत्र तक और दक्षिण में मालवा तक बढ़ गए थे।

कुषाणों में कडफिसीज प्रथम व कडफिसीज द्वितीय एक परिवार से थे तथा एक दूसरे परिवार से कई शासक हुए जिसमें कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव शासक प्रसिद्ध हुए। इसके बाद इस वंश का पतन हो गया था। इन्होंने पुरुषपुर (पेशावर) को अपनी राजधानी बनाया था। शीघ्र ही इनका राज्य पश्चिम में रोम तक तथा उत्तर में तुर्किस्तान मिलाकर चीन तक हो गया था तथा साथ ही मालवा व मथुरा में भी इनके ही क्षत्रप शासक थे। कनिष्क ने चीन पर चढ़ाई करके सफलता पाई थी।

कनिष्क ने बौद्ध धर्म अपनाया था। उसने भी अपने काल में एक बौद्धमत की सभा (तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध परिषद) काश्मीर में बुलाई थी। उस समय बौद्ध मत लंका, बर्मा, जावा में फैल गया। पर उल्लेखनीय है कि उसने जहां अन्य धर्मों के प्रति उदारता अपनाई, वहां बौद्ध मत में भी क्रांतिकारी परिवर्तन किये। अब बौद्धमत की महान आत्माओं को अर्थात् बोधिसत्वों को साधारण मनुष्य से ऊंचा समझा जाने लगा। यह परिवर्तन बौद्ध धर्म में 'महायान' कहलाया। वस्तुतः इससे पूर्व धारणा पहले भी थी पर अब इसको प्रतिष्ठा मिली। बौद्धमत का प्रचार तिब्बत, एशिया तथा चीन साम्राज्य में भी हुआ। मुख्य बात यह हुई कि बौद्ध धर्म की भाषा अब संस्कृत हो गयी।⁷⁷ कनिष्क के दरबार में संस्कृत भाषा के अनेक विद्वान थे। अश्वघोष ने संस्कृत में गौतम बुद्ध का जीवन चरित्र लिखा। यूनानी तथा भारतीय प्रभाव से युक्त गन्धार शैली का निर्माण हुआ जिसके द्वारा एक नवीन मूर्ति कला का निर्माण हुआ। अतः शीघ्र ही कुषाण लोग भारतीय समाज में रच पच गए। उन्होंने भारतीय जीवन प्रणाली को अपना लिया। शकों की भांति कुषाणों की भी

भारत में कुछ काल बाद पराजय हुई। सम्राट समुद्रगुप्त ने इन्हें पश्चिमी पंजाब तथा अफगानिस्तान से हटाकर अपना वर्चस्व स्थापित किया। उसके पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय ने कुषाणों को हिन्दूकुश के पार खदेड़कर अपना साम्राज्य स्थापित किया।

महान गुप्त शासकों का राज्य

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि कुछ वामपंथी इतिहासकारों ने भारत में महान गुप्त शासकों के इतिहास की खिल्ली उड़ाई। उसे भारत का स्वर्णकाल इसलिए लिखा कि इसमें सोने चांदी के सिक्के सर्वाधिक गढ़े गये। रोमिला थापर ने इसे 'काल्पनिक' बतलाया तथा देश को अमीरी-गरीबी के तराजू में तोलते हुए इसे 'क्लासिकल काल' केवल उत्तरी भारत के उच्च वर्ग तक सीमित बतलाया।⁷⁸

वस्तुतः इसमें कोई शक नहीं है कि गुप्त शासकों का काल प्राचीन भारतीय इतिहास का उत्कृष्ट काल था। वस्तुतः इस स्वर्णयुग कहलाने का यह कारण रहा क्योंकि इसमें मातृभूमि के प्रति भक्ति तथा सांस्कृतिक जीवन मूल्यों को सर्वोच्च स्थान दिया गया। इस काल में इतिहास जानने के साधन - उत्कीर्ण लेख, मुद्रायें, शिल्पशास्त्र, साहित्य तथा यात्रा विवरण भी प्रचुर मात्रा में प्राप्त हैं। अधिकतर विद्वानों ने गुप्तकाल को निःसंकोच होकर भारत का स्वर्णयुग माना है। यह सभी साधनों से विदित होता है कि गुप्तों का उदय प्रयाग के आसपास हुआ। पुराणों में प्रयाग, साकेत और मगध का नाम दिया है। श्रीगुप्त इस वंश का संस्थापक था। इससे बाद घटोत्कच तथा चन्द्रगुप्त प्रथम शासक हुए थे। चन्द्रगुप्त प्रथम के काल में गुप्त काल का विकास प्रारम्भ हुआ। उसका लिच्छवी वंश की एक राजकुमारी कुमार देवी से विवाह हुआ था। यह घटना गुप्त साम्राज्य के इतिहास में अद्वितीय मानी जाती है क्योंकि यहीं से गुप्तों का उत्कर्ष हुआ।⁷⁹ 319-320 ई. में उसने गुप्त संवत भी चलाया था। यह शासनकाल मुख्य रूप से 350-467 ई. तक रहा। इसमें प्रसिद्ध शासक समुद्रगुप्त, रामगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य), गोविंदगुप्त, कुमारगुप्त और स्कंदगुप्त हुए। प्रयाग की प्रशस्ति समुद्रगुप्त की दिग्विजय पर प्रकाश डालती है। इससे ज्ञात होता है कि उसने आर्यवृत्त के नौ राजाओं को पराजित कर हिमालय से विंध्याचल के बीच के प्रदेशों पर कब्जा किया जिनके नाम रूद्रदेव, मतिल, नागदत्त, चन्द्रवर्मन, गणपति नाग, नागसेन, अच्युत, नंदि तथा बलवर्मा थे। दूसरे उसने दक्षिण विजय से पूर्व मध्य भारत के जंगलों के राजाओं

को विजित किया। तीसरे उसने दक्षिण भारत के बड़े भाग पर विजय प्राप्त की पर उनको अपने राज्य में नहीं मिलाया, बल्कि केवल अपने अधीन किया। इन राज्यों की संख्या 11 अथवा 12 थी। उसने सीमावर्ती राज्यों से सम्बन्ध जोड़े तथा इन्हें विजित कर, उन पर अपना प्रभाव स्थापित किया। यह राज्य थे समतट (पूर्वी बंगाल), कामरूप (असम का गोहाटी जिला), उवाक (नौगांव जिले का असम में कोविली घाटी का दवाक), नेपाल, कर्तृपुर तथा मालव, आर्जुनायन, यौधेय, मद्र तथा आभीर। इसके साथ उसने विदेशी राज्यों के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित किए। ये विदेशी राज्य देवपुत्रशाही शाहनुशाही (उत्तर पश्चिम में) कुषाण, शक (उत्तर पश्चिम व पश्चिम भारत में) मुरंड (एक कुषाण जाति) थे। इसमें सिंहल तथा समुद्र पार के द्वीप थे। प्रयाग प्रशस्ति में इन्हें सर्वद्वीपवासिन शब्द प्रयोग किया है। सम्भवतः इसका अर्थ दक्षिण-पूर्वी एशिया के द्वीपसमूहों से होगा। इस अर्थ में समुद्रगुप्त ने अपने काल में बृहत्तर भारत का श्रीगणेश कर दिया था।⁸⁰ संक्षेप में दक्षिण भारत के राज्यों से मित्रता के अतिरिक्त उसका साम्राज्य ब्रह्मपुत्र से यमुना तक, चम्बल तक फैला था। उसने इस विजय अभियान के पश्चात् अश्वमेध यज्ञ भी किया तथा सोने के सिक्के भी ढलवाये थे। उल्लेखनीय है कि तत्कालिक विश्व के इतिहास में इस प्रकार का एक भी उदाहरण नहीं मिलता। समुद्रगुप्त एक महान विजेता के साथ एक कुशल प्रशासक, कूटनीतिज्ञ तथा साथ ही कला प्रेमी था। वह शस्त्रों के साथ शास्त्रों का भी ज्ञाता था तथा वह एक महान संगीतज्ञ था। उसे 'कविराय' की उपाधि प्रदान की गई थी। धर्म के क्षेत्र में व्यक्तिगत रूप से वैष्णव होते हुए उसने अन्य धर्मों के विकास में योगदान दिया था। वसुबन्धु नामक बौद्ध विद्वान ने उसकी उदारता की बड़ी प्रशंसा की है। उसकी प्रजा उसे बहुत चाहती थी तथा उसकी तुलना महाराजा पृथु व रघु से की गई है।

गुप्त शासकों में चन्द्रगुप्त द्वितीय भी महान विजेता था। उसने अपने पिता समुद्रगुप्त की राज्य सीमाओं को विस्तृत किया तथा युद्ध किये। मातृभूमि की रक्षा तथा अद्वितीय प्रेम से वशीभूत हो उसने उन विदेशी राज्यों पर भी आक्रमण किया जो समुद्रगुप्त के काल में रह गये थे। उसने पश्चिम भारत में शकों को पराजित किया। उसका यह महान अभियान 388-401 ई. के बीच हुआ था। इस विजय से उसे मालवा, गुजरात, सौराष्ट्र और काठियावाड़ के साथ तटवर्ती बन्दरगाहों से सम्पर्क हुआ जिससे समुद्री व्यापार भी बढ़ा तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध भी। इससे

उज्जैन की महत्ता बढ़ी तथा वह धार्मिक तथा राजनीतिक केन्द्र बन गया।

इसके पश्चात् दूसरा विदेश शासक कुषाण थे जो उत्तर पश्चिम में देवपुत्र शाहि शाहनुशाहि के रूप में अभी जमे हुए थे। उसने कुषाणों के अवशेषों को समाप्त किया। इसके साथ ही अपने पिता समुद्रगुप्त से एक कदम आगे बढ़कर, दक्षिण भारत के राजाओं से अच्छे सम्बन्ध ही नहीं बनाये बल्कि वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर एक महान कूटनीतिज्ञ होने का प्रमाण भी दिया। उसने नाग, वाकाटक तथा कुन्तल नरेशों से सम्बन्ध जोड़े। नागकन्या कुबेरनागा से विवाह किया जिससे प्रभावती का जन्म हुआ था। उसने प्रभावती का विवाह वाकाटक वंश के प्रसिद्ध राजा रुद्रसेन द्वितीय से किया। इससे परस्पर सम्बन्ध मजबूत हो गये तथा शकों तथा कुषाणों का इस क्षेत्र में प्रभाव होने की सम्भावना सदा के लिए समाप्त हो गई। अतः चन्द्रगुप्त द्वितीय का साम्राज्य हिमालय से नर्मदा नदी तथा बंगाल से काठियावाड़ तक फैला था। दिल्ली में महारौली का लौह स्तम्भ उस यश कीर्ति की गाथा आज भी बतलाता है। उसने सिन्धु नदी के सातों स्रोतों को पार कर बाहलिख (बदख्शां) को जीता था और दूसरी ओर दक्षिण भारत के राजाओं से अरब सागर से बंगाल की खाड़ी तक अपने सम्बन्ध बनाये थे।

चन्द्रगुप्त द्वितीय जहां युद्ध में निपुण, राजनीति में कूटनीतिज्ञ, प्रशासन में सुव्यवस्थित था वहां धर्म का संरक्षक तथा विद्याप्रेमी था। वह वैष्णव धर्म का उपासक था तथा उसने विष्णु के वाहन विष्णुध्वजा पर गरुड़ की मूर्ति स्थापित की थी। परन्तु वह दूसरे धर्मों के प्रति अत्याधिक उदार तथा सहिष्णु था। उसका मन्त्री शैव था। उसका एक महत्वपूर्ण पदाधिकारी आम्रकार्दव बौद्ध था। उसने विद्वानों को प्रश्रय दिया था। उसके दरबार में नवरत्न थे जिनके नाम धन्वंतरी, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, वेताल भट्ट, घटकपर्प, कालिदास, वराहमिहिर, वररुचि थे। सभी अपने अपने क्षेत्र में विशेषज्ञ थे। चन्द्रगुप्त के काल में ही चीनी यात्री फाह्यान ने भारत की यात्रा (399-416 ई.) की थी। इस 16 वर्षों की यात्रा में उसने चन्द्रगुप्त के राज्य का भी वर्णन किया है। उसने मालवा तथा मगध के प्रांतों का वर्णन किया है। वह मालवा को घनी आबादी वाला तथा प्रजा को सुखी बतलाया है। प्रत्येक व्यक्ति को आवागमन की पूरी छूट थी जो उस समय चीन में भी नहीं थी। सजायें अत्याधिक सरल थीं। लोग खुले किवाड़ निडर हो सोते थे। उसने मगध के चिकित्सालय का वर्णन भी किया जो सम्भवतः सम्राट अशोक के काल से ही था। उसके अनुसार

लोग शाकाहारी थे, न मद्यपान होता और न ही बूचडखाने थे। यात्रियों के लिए धर्मशालाएं थीं। उसने पाटलिपुत्र में अशोक के राजभवन को भी देखा तथा इसे देवताओं द्वारा निर्मित बताया। उसने पाटलिपुत्र रहकर तीन वर्षों तक संस्कृत सीखी थी।

गुप्तकाल के महान शासकों की श्रेणी में अंतिम उल्लेखनीय शासक स्कन्दगुप्त (455-467 ई.) हुआ। उसके जीवन काल की सर्वोच्च घटना हूणों पर विजय है। हूण मध्य एशिया की एक खूखार जाति थी जिसने भारत के उत्तर पश्चिम में बैक्ट्रिया नामक स्थान पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। उन्होंने हिन्दूकुश पार कर भारत के लिये संकट खड़ा कर दिया था। किसी भांति स्कन्दगुप्त के पिता कुमारगुप्त ने इस क्षेत्र में शांति बनाये रखी थी परन्तु ये आक्रमण भारत पर सौ वर्षों तक बने रहे थे।

स्कन्दगुप्त के काल में हूणों ने भारत के उत्तर पश्चिम में परेशानी खड़ी कर दी थी। 460 ई. में उसने हूणों के विरुद्ध अभियान लिया। फिर 467 ई. में दुबारा उनसे संघर्ष हुआ। उसने हूणों को पराजित किया तथा विजय स्वरूप 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की। परन्तु वह गुप्त काल के शक्तिशाली शासकों में अंतिम शासक था। उसके बाद अनेक कमजोर शासक हुए। उनका राज्य सीमित हो गया।

हूणों के आक्रमण निरंतर होते रहे। उन्होंने भारत के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया। तोरमाण तथा उसके पुत्र मिहिरकुल ने अपने अत्याचारों से सर्वत्र आतंक कर दिया था। कहा जाता है कि वह हाथियों को गिराकर तथा उनकी चिंघाड़ से आनंदित होता था। पर मालवा के एक सरदार यशोधर्मा ने जो गुप्त शासक भानुगुप्त बालादित्य कालीन था, उसने 532 ई. के लगभग मिहिरकुल को पराजित किया। वह इतिहास में जनेन्द्र विष्णुवर्धन यशोधर्मा के नाम से विख्यात है। बाद में मिहिरकुल ने शैवमत को अपना लिया था। उसने काश्मीर में पहलगांव में मिहिरेश्वर मंदिर (वर्तमान मामलेश्वर) बनवाया था।

गुप्तकालीन भारतीय राष्ट्र

गुप्त सम्राटों के संक्षिप्त से विवरण के साथ यदि हम इस समूचे कार्यकाल की विवेचना करें तो यह स्पष्ट होता है कि यहां पर न तो पाश्चात्य ढंग का राजतन्त्र था और न ही पाश्चात्य

सामंतवाद। बल्कि यह भारतीय ऋषि मुनियों तथा धर्म पर आधारित व्यवस्था थी।

मौर्य साम्राज्य के पश्चात् गुप्त शासकों ने न केवल भारत में राजनैतिक एकता को स्थापित किया, अपितु मातृभूमि की रक्षा के लिए समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य तथा स्कन्दगुप्त ने जुझारू प्रयत्न किये थे। चन्द्रगुप्त ने जहां शकों और कुषाणों के परकीय आक्रमणों का नाश किया वहां स्कन्दगुप्त तथा बाद में मालवा के यशोधर्मा ने उनका विनाश किया था।

राजा की अनेक उपाधियां समय-समय पर दी जाती थी, परन्तु राजव्यवस्था एकतन्त्र पर आधारित न थी। बल्कि राजनीतिक व्यवस्था 'विकेन्द्रीयकरण' पर आधारित थी। केन्द्र से लेकर ग्राम शासन की व्यवस्था सुविभाजित तथा स्पष्ट थी। गुप्त शासकों के काल में अनेक जन कल्याणकारी योजनायें तथा कार्य किये गये थे। सिंचाई तथा जल की उत्तम व्यवस्थायें, स्थान-स्थान पर निःशुल्क चिकित्सालय, धर्मशालायें, पाठशालायें तथा यातायात की सुविधायें प्राप्त थी। शिक्षा का प्रबन्ध था। समय-समय पर राजा अतुल धनराशि तथा गायें दान के रूप में देता था। देश में पूर्णतः आन्तरिक सुरक्षा थी। जिसका वर्णन फाह्यान ने अपने यात्रा वर्णन में विस्तार से किया है। अतिथि सत्कार को बड़ा महत्त्व दिया जाता था। लोग मंदिरों के निर्माण में खुले हाथों दान देते थे।

सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से यह काल अत्यन्त समृद्ध तथा आत्मनिर्भर था। कृषि, उद्योग तथा व्यापार सभी का विकास हुआ। व्यापार जल तथा स्थल दोनों मार्गों से होता था। विदेशों से माल का निर्यात तथा आयात होता था। भारत में व्यापार के अनेक केन्द्र थे। अनेक प्रकार के सिक्कों का प्रचलन था। भारत में जलयानों का निर्माण होता तथा उनकी बिक्री होती थी। व्यापारिक क्षेत्र में तरह-तरह की रासायनिक कलाओं का विकास हुआ। लोहे, तांबे, पीतल, कांसे की अनेक प्रकार की वस्तुओं के निर्माण में उपयोग होते थे। सोने-चांदी के सिक्के भी बनते थे। भारत का मुख्य पेशा कृषि होती थी जिसकी निश्चित बुवाई, भूमिकर निर्धारण तथा प्राप्ति की उचित व्यवस्था थी।

सामाजिक दृष्टि से गुप्त साम्राज्य के लोग उन्नत तथा कर्मशील थे। समाज मुख्यतः चार वर्णों में बंटा था परन्तु कठोरता न थी। वर्णों तथा व्यवस्थाओं का परिवर्तन होता रहा था, ऐसे अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। अन्तर्जातीय विवाह होते थे। समाज में परिवार को प्रमुख स्थान दिया

जाता था। बहुविवाह भी होते थे। विधवा विवाह होते थे। समाज में महिलाओं का स्थान उच्च था। कई महिलायें शासिका भी हुई थी। सामान्यतः कोई भी धार्मिक कर्तव्य महिलाओं के बिना पूरा न होता था। महिलाओं में सजने तथा कीमती आभूषण पहनने की प्रवृत्ति थी। सामान्यतः लोगों का भोजन साधारण था। शाकाहारी भोजन को प्रमुखता थी। फाह्यान ने इसका विशद वर्णन किया है। जीवन में संस्कारों का बड़ा महत्त्व दिया जाता था। तरह-तरह के शकुन अपशकुन का विचार भी होता था। ज्योतिष तथा भविष्यवाणी पर भी विश्वास किया जाता था।

धार्मिक दृष्टि से भारत प्राचीन व्यवस्था पर आधारित था। धर्म को व्यापक अर्थ में ही लिया जाता था। वैदिक धर्म को महत्त्व दिया जाता था। गुप्त शासक प्रायः सभी वैष्णव थे परन्तु सभी धर्मों के प्रति उदारता थी। प्रत्येक को धर्म की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। वैष्णव के साथ शैव, बौद्ध, जैन, शक्ति मतों को महत्त्व था। समय-समय पर बड़े-बड़े यज्ञों का आयोजन होता था। अश्वमेध, राजसूय, वाजपेय आदि यज्ञ भी होते थे। लोगों में दान देने की प्रवृत्ति थी। इस काल में अनेक मंदिरों तथा धार्मिक मूर्तियों का निर्माण हुआ।

साहित्य, कला, ज्ञान विज्ञान, शिक्षा, संस्कृति की दृष्टि से गुप्त काल उन्नति के शिखर पर था। साहित्य के क्षेत्र में विश्व के श्रेष्ठतम साहित्यिक ग्रन्थों की रचना हुई। महाकवि कालिदास इसी काल में हुआ जिसके सातों ग्रन्थ बाद में विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवादित हुए। ये ग्रन्थ थे ऋतुसंहार, रघुवंशम्, कुमारसम्भव, मेघदूत, विक्रमोर्वशीयम् तथा मालविकाग्निमित्रं तथा अभिज्ञानशकुन्तलम्। इसके अलावा हरिषेण प्रयाग प्रशस्ति का लेखक हुआ। मातृगुप्ताचार्य उस काल का महाकवि था। महाकवि शूद्रक, विशाखदत्त, सुबन्धु आदि प्रसिद्ध लेखक हुए।

साहित्य ग्रन्थों के अलावा इस काल में विज्ञान की बड़ी उन्नति हुई। आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिर जैसे महान वैज्ञानिक इस काल में हुए। महान वैज्ञानिक बौद्ध विद्वान नागार्जुन हुए। बौद्ध तथा जैन धर्म सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों की रचना हुई।

शिक्षा के क्षेत्र में बड़ी उन्नति हुई। अनेक पाठशालाओं, विद्यालयों का निर्माण हुआ। शिक्षालयों को अनुदान तथा दान दिये जाते थे। सम्भवतः नालंदा विश्वविद्यालय का निर्माण इस काल में हुआ।

कला के क्षेत्र में आशातीत उन्नति हुई। अनेक कला के सर्वश्रेष्ठ नमूने इस युग में बने। कला के विभिन्न क्षेत्रों में उन्नति हुई। अनेक मंदिरों, स्तूपों, विहारों तथा मूर्तियों का निर्माण हुआ। देवगढ़ का दशावतार मंदिर, कानपुर के भीतरीगांव का शैव मंदिर, उदयगिरि में वराह मंदिर, उज्जैन का महाकाल मंदिर, बौद्धगया का महाबोधि मंदिर आदि गुप्तकालीन कला के अवशेष हैं। मूर्तियों के निर्माण में मथुरा, वाराणसी तथा पाटलिपुत्र शैलियों का जन्म हुआ। विशिष्ट प्रकार के स्थापत्य कला से युक्त मंदिर बनाये गए। अजन्ता, एलौरा और बाघ के कुछ गुफा विहार/मंदिर बनाये गए। इसी भांति दिल्ली का लौहस्तम्भ तथा एरण का पाषाण स्तम्भ उल्लेखनीय हैं। चित्रकला, संगीतकला का विकास हुआ। कहा जाता है कि समुद्रगुप्त वीणा वादन में निपुण था। विद्वानों ने विविध ढंग से गुप्तकाल के कला, साहित्य, संस्कृति तथा विज्ञान की उन्नति की प्रशंसा की है। विद्वान वारनेट का मत है कि गुप्तकाल भारत के साहित्यिक इतिहास में वही स्थान रखता है जो यूनान में इतिहास पेरिक्लिज के युग को प्राप्त है। एक विद्वान ने कहा “संस्कृति एवं साहित्य के दृष्टिकोण से तो यह युग निःसन्देह स्वर्णयुग कहा जा सकता है।”⁸¹

उसने पुनः लिखा, “कला, साहित्य, दर्शन और चिंतन में जो प्रगति हुई, इसका मूल कारण यह था कि गुप्तों ने देश में राजनैतिक स्थायित्व कायम किया था और देश लगभग 150 वर्षों तक विदेशी आक्रमणकारियों से मुक्त रहा।”⁸²

न केवल भारत में, विदेशों में भी यशकीर्ति हुई। “गुप्त जागरण का प्रभाव एक तरफ चीन पर हुआ और वहां से कोरिया तथा जापान तक पहुंचा और दूसरी ओर अरब के रास्ते यूरोप की ओर। तिब्बत और मध्य एशिया भी इससे अछूते न रहे।”⁸³

दुर्भाग्य से कुछ पाश्चात्य चिन्तन से ग्रस्त अथवा वामपंथी लीक से चिपके विद्वानों ने गुप्त शासकों की राजतंत्रीय शासन व्यवस्था को फ्युडलवाद, यूनान की भांति दास व्यवस्था आदि का आधारहीन वर्णन किया। रोमिला थापर, डी.डी. कौशम्बी जैसे विद्वान पाश्चात्य ढंग से इतिहास विकासक्रम में भारत में भी वही सब बातें ढूंढने लगे जो न कभी भारत में थी और यदि थी तो उनका स्वरूप पाश्चात्य जगत से बिल्कुल भिन्न था। कौशम्बी ने लिखा कि, “गुप्तों ने राष्ट्रीयता की पुनरुत्पत्ति नहीं की वरन् राष्ट्रीयता ने गुप्तों की पुनरुत्पत्ति की।” साथ ही लिखा, “स्वामीभक्ति ने कृषक, दासों एवं आश्रितों को सामंतीय प्रमुखों के साथ एक श्रृंखला रूप में

निबद्ध कर दिया।”⁸⁴

वस्तुतः उस काल में न ही आधुनिक ढंग का वर्गसंघर्ष था, न सामाजिक विषमता, न ही कभी भारत में यूरोपीय फ्युडिलिज्म रहा और न ही यूरोपीय ढंग की घृणित दास प्रथा।

हर्षवर्धन का शासनकाल (606-647 ई.)

गुप्तकाल के पतन के बाद स्थाणवीश्वर या थानेसार में एक और प्रभावी राज्य का अभ्युदय हुआ और यह था वर्द्धन वंश या पुष्यभूतिवंश का उदय। इस वंश में प्रभाकरवर्धन तथा उसका पुत्र हर्षवर्धन प्रतापी शासक हुए। इस वंश की स्थापना छठी शताब्दी में हुई। प्रभाकरवर्धन को अनेक विभूतियों का धारण करने वाला बताया गया है। उसने अपने जीवनकाल में अनेक युद्ध किये थे। बाणभट्ट ने उसे ‘द्वणरूपी मृग के लिए सिंह, सिंधु राजा के लिए ज्वर, गुर्जर की निद्रा भंग करने वाला, गन्धार राजा के लिये कूटहस्तिजवर, लाटों की पटुता को हरनेवाला तथा मालव की लता रूपी लक्ष्मी के लिए कुठार’ बतलाया है। विद्वानों का निष्कर्ष है कि उसने राजपूताना, गुजरात, सिन्धु, गंधार एवं मालवा के राजाओं को पराजित किया था। वह ‘परम भट्टारक’ तथा ‘महाराजाधिराज’ कहलाता था। उसने अपनी पुत्री राज्यश्री का विवाह गृहवर्मा मौखरी के साथ किया था।

605 ई. में अपने पिता की मृत्यु पर हर्षवर्धन का बड़ा भाई राज्यवर्धन शासक बना था, जो अपने पिता के समान बलशाली था। वह अपने पिता की मृत्यु के समय हूणों से संघर्ष कर रहा था। युद्ध से वापस लौटने पर उसे ज्ञात हुआ कि मालवा के राजा देवगुप्त ने उसके बहनोई गृहवर्मा का वध कर दिया तथा राज्यश्री को कारागार में बन्द कर दिया है। वह बदला लेने के लिए तथा अपनी बहिन राज्यश्री का पता लगाने के लिये चला, परन्तु गौड शासक शशांक ने धोखे से उसकी हत्या कर दी थी।

अतः हर्षवर्धन ने इस विकट परिस्थिति में शासन संभाला। उसने 606-647 ई. तक राज्य किया तथा वीरतापूर्वक सभी संकटों का मुकाबला किया। उसने राज्यश्री का पता लगाया तथा उसे कन्नौज की कारागार से मुक्त कराया। राज्यश्री के कोई सन्तान न होने पर कन्नौज का शासन भी अपनी बहिन के साथ सम्भाला। हर्षवर्धन ने अपने पितामह की भांति दिग्विजय

अभियान चलाया। बाणभट्ट के अनुसार उसकी सेना में 5000 हाथी, 20,000 घुड़सवार तथा 50,000 पैदल थे। उसने प्रागज्योतिषपुर (असम) के राजा भास्करवर्मन को मित्र बनाया तथा दोनों में बहुसंख्यक उपहारों का आदान प्रदान किया। उसने गौड़ के शासक शशांक से संघर्ष किया। उसने मालवा के शासन देवगुप्त पर अपने बहनोई के वध का बदला लेने के लिये आक्रमण किया जिसे हर्षवर्धन की अधीनता माननी पड़ी। उसने वल्लभी के शासक के विरुद्ध संघर्ष किया जिसके राज्य की सीमाएं पश्चिमी मालवा से मिलती थी। उसने वल्लभी शासक ध्रुवसेन द्वितीय पर अपना प्रभाव स्थापित किया। बाद में वल्लभी नरेश के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर हर्ष ने अपने एक शत्रु को मित्र बना लिया। हर्षवर्धन का एक महान संघर्ष चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय से 620 ई. में हुआ। यह युद्ध नर्मदा के निकट हुआ। यह युद्ध अनिर्णायक रहा। यह प्रश्न विवादास्पद ही रहा कि इस युद्ध में कौन जीता, परन्तु यह निश्चित है कि नर्मदा नदी दोनों की सीमा बन गई।⁸⁵

हर्षवर्धन ने अब सिंध तथा गुजरात की ओर ध्यान दिया। बाणभट्ट के अनुसार उसने सिंधराज को परास्त किया। सम्भवतः इसी भांति उसने नेपाल तथा काश्मीर प्रदेश को भी अपने अधिपत्य में लिया। नेपाल के राजा के साथ उसके मित्रता के सम्बन्ध स्थापित हुए। सम्भवतः उसने काश्मीर को भी जीता।

अतः हर्षवर्धन ने अपने जीवनकाल में ही एक विस्तृत राज्य का निर्माण किया। के. एम. पन्निकर के अनुसार हर्ष ने अपने अधिकार में सम्पूर्ण उत्तर भारत पर अधिकार कर लिया तथा नेपाल का राज्य भी उसके साम्राज्य में था। हर्षवर्धन की शासन व्यवस्था कम या अधिक गुप्तकालीन व्यवस्था पर आधारित थी। उसकी राजधानी कन्नौज थी। उसी के काल में कन्नौज ने पाटलिपुत्र का स्थान लिया जो अगले 500 वर्षों तक महत्त्वपूर्ण रही। उसने भी केन्द्र से स्थानीय शासन तक सुयोग्य व्यवस्था की। वह भी समय-समय पर चन्द्रगुप्त मौर्य की भांति व्यक्तिगत रूप से शासन का निरीक्षण करता था। पर अब सजायें कठोर थी तथा मार्ग भी इतने सुरक्षित न थे, ऐसा ह्वानसांग⁸⁶ ने अपने अनुभवों से लिखा। अनेक प्रांत अधीनस्थ राजाओं द्वारा संचालित होते थे।

हर्षवर्धन भी भारत के अन्य महान शासकों की भांति माना जाता है, परन्तु उसकी महानता उसकी विजयों से ज्यादा उसके सांस्कृतिक जीवन में किये गये प्रयासों के फलस्वरूप थी। सम्भवतः वह पहले शैव था, परन्तु बाद में बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट हुआ। उसकी धार्मिक नीति

सहिष्णुता तथा उदारता की थी। उसने अपने जीवन काल में दो अद्वितीय महासम्मेलनों का आयोजन किया था। पहला महासम्मेलन कन्नौज में एक विशाल बौद्ध सम्मेलन के रूप में था। जिसमें 20 देशों के राजा उपस्थित थे। इसमें ह्वानसांग ने भी भाग लिया था। इसमें विभिन्न सम्प्रदायों के विद्वानों का भी स्वागत किया गया था। महायान पर विशेष चर्चा हुई थी।

एक दूसरा महासम्मेलन प्रयाग में हुआ। इस सम्मेलन में भी ह्वानसांग को बुलाया गया था। वल्लभी तथा प्रागज्योषिपुर के शासकों ने भी भाग लिया था। विभिन्न सम्प्रदायों के लगभग पांच लाख लोगों ने इसमें भाग लिया। यह सम्मेलन 75 दिनों तक चला। विभिन्न सम्प्रदायों के देवी-देवताओं की पूजा की गई तथा सभी को दान दिया गया। “व्यक्तिगत उदारता का यह आदर्श इतिहास में अपूर्व माना जाता है।” अपनी प्रजा की भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए वह अथक परिश्रम करता था।⁸⁷ शिक्षा के क्षेत्र में भी हर्षवर्धन का महान योगदान था। विद्वानों का आदर तथा सम्मानित किया था। शिक्षा का चतुर्दिश विकास हुआ था। नालन्दा तथा बौद्ध विहार शिक्षा के विशाल केन्द्र थे, हर्षवर्धन स्वयं एक विद्वान था जिसने प्रियदर्शिका, रत्नावली तथा नागानन्द की संस्कृत भाषा में रचना की थी। महान लेखक बाणभट्ट उसका मित्र था जिसने कादम्बरी, हर्षचरित्र, पूर्वपीठिका तथा चंडीशतक की रचना की थी। मयूर नामक विद्वान ने सूर्यशतक लिखा था। उड़ीसा के बौद्ध विद्वान जयसेन को अनेक नगरों की आय दान में दी गई थी, यद्यपि उसने उन्हें स्वीकार न किया था। उसने ह्वानसांग चीनी यात्री का भव्य स्वागत तथा सम्मान किया था।

परन्तु दुर्भाग्य से उसकी कोई स्थापत्य कला कृति आज उपलब्ध नहीं है। कन्नौज राजधानी जो एक चार मील लम्बा तथा एक मील चौड़ा भव्य नगर, अनेक कलाकृतियों, स्थापत्य के उत्कृष्ट नमूनों से भरपूर था तथा अनेक बौद्ध तथा हिन्दू मंदिरों से युक्त था। 16वीं शताब्दी में शेरशाह द्वारा नष्ट कर दिये गये थे। अतः वहां कोई भी भवन उस काल का आज उपलब्ध नहीं है।⁸⁸

दक्षिण भारत का विकास

सामान्यतः विन्ध्याचल के दक्षिण क्षेत्र को दक्षिण भारत कहा जाता है।⁸⁹ जो एक ओर पर्वत और दो ओर समुद्र से घिरा है। आधुनिक दृष्टि से इसमें सामान्यतः पांच प्रांत आते हैं। कृष्णा

नदी के उत्तर के प्रदेश के पश्चिमी भाग को महाराष्ट्र और पूर्वी भाग को आंध्र कहते हैं। कृष्णा नदी के दक्षिण प्रदेशों का पश्चिम भाग कर्नाटक और पूर्वी भाग को तमिलनाडु कहते हैं। सुदूर दक्षिण में पश्चिमी समुद्रतट पर केरल है।

प्राचीन काल से दक्षिण भारत में अनेक छोटे-छोटे राज्य थे। सुविधा की दृष्टि से दक्षिण भारत को भी दो भागों में बांटा जाता है। कृष्णा नदी के उत्तर के क्षेत्र को दक्षिणपथ तथा उसके दक्षिण के क्षेत्र को सुदूर दक्षिण कह सकते हैं।

राजनीतिक दृष्टि से दक्षिण पथ में चालुक्य और राष्ट्रकूटों की प्रमुखता रही तथा सुदूर दक्षिण में पल्लव, चोल, पांडव व चेर (केरल) की।

दक्षिण भारत के इतिहास को जानने में तमिल साहित्य का बड़ा योगदान है। कुरल दक्षिण में भारतीय संस्कृति का महान ग्रन्थ माना जाता है। इसके अलावा संगम साहित्य के पत्यपातु, एत्तुथोक्कई एवं पडिनेन्किल्कनक्कु महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। महर्षि अगस्त्य ने भारतीय संस्कृति के विस्तार में प्रमुख योगदान किया। दक्षिण भारत में ब्राह्मी लिपि तथा संस्कृत का प्रचार हुआ। वस्तुतः वैदिक संस्कृति तथा संस्कृत भाषा की जड़ें आज भी दक्षिण भारत में इतनी गहरी हैं कि उत्तर भारत में दिखलाई नहीं देती। यद्यपि यह सत्य है कि दक्षिण भारत के इतिहास जानने के साधन बहुत कम हैं।

मोटे रूप से दक्षिण भारत में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण चालुक्य वंश के शासक हुए जो इतिहास में वातापि (बीजापुर जिला) के चालुक्य रहे जिनका शासनकाल (550-753 ई.) रहा। इनमें पुलकेशिन द्वितीय (608-642 ई.) एक शक्तिशाली शासक हुआ जिसका संघर्ष सम्राट हर्षवर्धन से हुआ था। इसी भांति कुछ अन्तराल के पश्चात् कल्याणी के चालुक्य हुए जिनका शासन काल (973-1190 ई.) तक रहा। इनमें तैलप द्वितीय, सत्याश्रय, सोमेश्वर प्रथम, सोमेश्वर द्वितीय, विक्रमादित्य षष्ठ आदि अनेक प्रसिद्ध शासक हुए। इनमें विक्रमादित्य षष्ठ सबसे अधिक प्रसिद्ध था जो काश्मीर के कल्हण तथा विद्वान विज्ञानेश्वर का संरक्षक था।

दक्षिण भारत का दूसरा प्रसिद्ध राजवंश राष्ट्रकूट वंश था जिसका राज्य विस्तार (753-973 ई.) के दौरान हुआ था। इन्होंने बादामी या वातापि के चालुक्यों को पराजित कर एक

स्वतन्त्र राज्य का निर्माण किया था। दंतिदुर्ग इसका संस्थापक था। इस वंश में ध्रुव, गोविंद तृतीय, अमोघवर्ण, कृष्णराज द्वितीय आदि प्रसिद्ध शासक हुए। डॉ. अल्तेकर ने⁹⁰ ध्रुव (780-793 ई.) को 'सुयोग्यतम शासक' माना है। अमोघवर्ण की गणना अरब के सुलेमान ने विश्व के प्रमुख शासकों में की है। उसका राज्य काल 66 वर्षों तक (814-880 ई.) तक रहा। राष्ट्रकूटों की भारत के इतिहास को महान देन है। उन्होंने दक्षिण पथ को चरमोत्कर्ष पर पहुंचाया। इसे दक्षिण भारत का सबसे ओजस्वी युग माना जाता है।

सुदूर दक्षिण में पल्लव, चोल, पांड्य तथा चेर का प्रभुत्व रहा। पल्लवों की राजधानी कांचीपुरम थी। सिंहविष्णु (575-600 ई.) को इस वंश का संस्थापक माना जाता है। वह वैष्णव धर्म का अनुयायी था। उसने चोल, पांड्य, कलभ्र, सिंहल तथा मलनाडु के राजाओं को परास्त किया था। इसमें अन्य प्रमुख महेन्द्रवर्मन प्रथम, नरसिंह वर्मन प्रथम हुए थे। इन्हीं से चालुक्यों का पुलकेशिन लड़ता हुआ मारा गया था। इसके अलावा परमेश्वर वर्मन प्रथम (670-680 ई.) नरसिंह वर्मन द्वितीय (680-720 ई.), परमेश्वर वर्मन द्वितीय तथा दंतिवर्मन हुए थे। इनके काल में कांची विद्या का प्रसिद्ध केन्द्र बन गया था। इसी समय आलवार तथा शैव नायनार का काल प्रारम्भ हुआ था। संस्कृत को राजभाषा बनाया गया था। कांची में एक विश्वविद्यालय का निर्माण हुआ था। वैष्णव के साथ जैन तथा बौद्ध धर्म का विकास हुआ। अनेक मंदिरों का निर्माण हुआ। मंदिर निर्माण की कई शैलियों का प्रारम्भ हुआ। कैलाश मंदिर व महाबलीपुरम के मंदिर इस की कला के श्रेष्ठ नमूने हैं।

सुदूर दक्षिण में चोल वंश का काल (850-1200 ई.) रहा था। यह राज्य पेन्नार और बेल्लारू नदियों के बीच पूर्वी समुद्र तट पर स्थित था। इनकी राजधानियां बदलती रही थी। पहली राजधानी त्रिचनापल्ली के निकट (वरियुर, उरैयर) थी। इस वंश का पहला राजा विजयादित्य था। वह दुर्गा का भक्त था। इसमें प्रसिद्ध शासक आदित्य प्रथम (680-907 ई.), परांतक प्रथम (907-946 ई.), राजराज प्रथम (985-1014 ई.), राजेन्द्र चोल (1014-1047 ई.), राजधिराज (1040-1052 ई.), कुलोतुंग प्रथम (1070-1112 ई.) प्रसिद्ध शासक हुए। चोल शासक अपनी शासकीय व्यवस्था के लिये सम्पूर्ण दक्षिण भारत में प्रसिद्ध था। चोल शासकों की एक मुख्य देन अपनी समुद्री शक्ति का विकास थी। इन्होंने इसके माध्यम से चीन, सुमात्रा, जावा,

ईसाबेला से सम्बन्ध स्थापित किये तथा दक्षिण पूर्वी एशिया में सांस्कृतिक विस्तार किया। चोलों ने पल्लवों की स्थापत्य कला का अनुसरण करते हुए अनेक मंदिरों का निर्माण किया था। इसमें तंजौर का मंदिर, श्रीरंगपट्टम का मंदिर अद्वितीय हैं। चील शासक शैव थे। साथ ही उन्होंने वैष्णव, बौद्ध, जैन सम्प्रदायों को पूरा सम्मान दिया।

चोलों के अलावा सुदूर दक्षिण में पांड्य तथा चेर राज्य थे। प्रारम्भ में पांड्य राज्य तिनेवल्ली, रामनाड तथा मदुरा तक सीमित था। छठी शताब्दी से इनका क्रमबद्ध इतिहास मिलता है। इसके प्रथम दो शासक कंडगोन (590-620 ई.) तथा मानवर्मन (620-645 ई.) थे। तीसरा शासक जयवर्मन ने चेर प्रदेश पर आक्रमण करके अपना अधिकार किया। रणधीर, राजसिंह प्रथम, वरगुण प्रथम, श्रीमार (815-862 ई.) आदि शासक हुए। कालान्तर में प्रभारवर्मा सुन्दर पांड्य के काल में (1216 ई.) पांड्य राज्य की बड़ी उन्नति हुई थी।

चेर वंश का दक्षिण पश्चिम समुद्रतट पर प्राचीन चेर राज्य था। जहां आजकल मालाबार, त्रावणकोर, पुदुक्कोट हैं। चेर और केरल पर्यावाची शब्द हैं। इनका संघर्ष प्रायः पड़ोसी राज्यों के साथ होता रहता था।

संक्षेप में जहां दक्षिण में अनेक छोटे-छोटे राज्यों में राजनीतिक सीमाओं के विस्तार के लिए टकराते रहते हुए भी, भारतीय धर्म, संस्कृति, साहित्य तथा दर्शन का अद्भुत विकास किया। अनेक धार्मिक समुदायों के होते हुए धार्मिक सहिष्णुता तथा स्वतन्त्र चिंतन का महत्त्व दिया। भक्ति आन्दोलन वस्तुतः दक्षिण भारत की प्रमुख देन है। यहां अनेक श्रेष्ठ दार्शनिकों का जन्म हुआ। संस्कृत भाषा तथा साहित्य के अमूल्य ग्रन्थ लिखे गये और इतना ही नहीं विभिन्न प्रकार की मंदिरों, मूर्ति कला, नृत्य कला का निर्माण किया। समुद्र शक्ति का विकास कर भारतीय व्यापार तथा संस्कृति को विदेशों में प्रसारित किया। अतः राज्य घटते-बढ़ते रहे, परन्तु भारत भूमि के प्रति सदैव भक्ति तथा सांस्कृतिक जीवन मूल्यों की अक्षुण्ण परम्परा बनी रही।

बृहत्तर भारत⁹¹

गत हजारों सालों के ऐतिहासिक प्रमाणों तथा तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत ने प्राचीन काल में बृहत्तर भारत की स्थापना की थी। लेकिन यह न तो ब्रिटिश

साम्राज्यवाद तथा औपनिवेशिक राजनैतिक प्रभुत्व एवं व्यापारिक एकाधिकार के धिनौने सिद्धांतों पर आधारित था, न सोवियत रूस जैसे पूर्वी यूरोप के अनेक राष्ट्रों का गला घोटकर स्थापित हुआ और न ही चीन की परम्परागत विस्तारवादी आकांक्षा की मनोवृत्ति से प्रेरित था, बल्कि यह सीधे, स्पष्ट रूप से भारतीय राष्ट्र की सांस्कृतिक अधिष्ठान पर आधारित था। इसका एकमात्र मूल मन्त्र वसुधैव कुटुम्बकम् अथवा सनातन धर्म (शाश्वत धर्म) की पुकार थी। एक वर्तमान चिंतक पं. दीनदयाल उपाध्याय की भाषा में कहें तो एकात्म-मानववाद की प्रेरणा से था। इसके पीछे भारतीयों द्वारा क्षात्रबल की किसी देश से कोई प्रतिस्पर्धा न करके भारतीय सांस्कृतिक जीवन मूल्यों का मूलमन्त्र कृण्वन्तो विश्वमार्यम् का उद्देश्य था सांस्कृतिक भारत की दिग्विजय।⁹² जिसमें रक्त की एक बूंद भी नहीं बही और जिसका प्रभाव लम्बे समय तक रहा। उन्होंने कभी राज्य स्थापना की लिप्सा न की थी। अतः भारत के ऋषि मुनि, दार्शनिक, विद्वान, हिन्दू सन्त तथा बौद्ध भिक्षुओं ने अत्यन्त कष्ट सहकर, कर्तव्य बोध से, ऊंचे ऊंचे पर्वत लांघकर, बीहड़ जंगलों को पार, समुद्रों को लांघकर विदेशों में गए।

बृहत्तर भारत का विस्तार साइबेरिया से सिंहल (श्रीलंका) तक तथा ईरान और अफगानिस्तान से प्रशांत महासागर के बोरिनियो और बाली टापुओं तक एशिया के विशाल भूखण्ड में हुआ। बृहत्तर भारत के इस सांस्कृतिक प्रसार को भारत तथा विश्व के अनेक विद्वानों ने विशद रूप से प्रेरित हो इसका विस्तृत वर्णन किया है।⁹³ एक विद्वान के अनुसार यह सांस्कृतिक भारत पूर्वी दिशा में बर्मा, श्याम, चम्पा (अन्नाम), कंबुज (कम्बोडिया), मलाया, जावा, सुमात्रा, बाली, बोरिनियो तक, जिसे यूनानी 'गंगा पार का हिन्दू' या जिसे आज भी परला हिन्दू कहते हैं। दक्षिण में श्रीलंका या सिंहल भारतीयों का ही आबाद किया गया क्षेत्र, उत्तर में सम्पूर्ण मध्य एशिया और अफगानिस्तान तथा इसे 'ऊपरी हिन्द' तथा पश्चिम में ईरान को भारत की भारतीय आर्यों की सजातीय पारसियों ने आबाद किया। पश्चिम देशों से व्यापारिक सम्बन्ध होने के कारण बेबेलोनियन, मिश्री, यूनानी और ईसाई संस्कृतियों पर भारत का विशद प्रभाव पड़ा।

इसके साथ पश्चिम जगत तथा दक्षिणी अमेरिका के साथ भी भारत के सम्बन्ध बहुत प्राचीन हैं। मैक्सिको की संस्कृति जिसे माया संस्कृति कहते हैं। यहां हिन्दू धर्म, संस्कृति के अनेक अवशेष मिले हैं, प्राचीन यूनान तथा रोम के साथ भारत के गहरे सम्बन्ध थे जहां यूनानी भारतीय

दर्शन तथा चिकित्सा पद्धति से अच्छे प्रभावित थे, वहां रोमन साम्राज्य में भारत के घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध थे।

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि भारत की विश्व को अतुलनीय सांस्कृतिक देन है। भारत ने ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, साहित्य, धर्म, संस्कृति, शिक्षा सभी क्षेत्रों में विश्व में भारत की अमिट छाप है। यह सही है कि कालान्तर में भारत तथा चीन को छोड़कर विश्व की सभी प्राचीन सभ्यताओं का प्रायः लोप हो गया। परन्तु उनके सांस्कृतिक चिन्ह उनके जीवन दर्शन पर प्रकट होते हैं। कम से कम इतना तो सत्य है कि विश्व का प्रत्येक देश किसी न किसी रूप से, प्राचीन काल में भारत का ऋणी है और सम्भवतः यह भारत की जीवन दृष्टि तथा सांस्कृतिक जीवन मूल्यों का ही परिणाम है और इसीलिए भारत को बार-बार जगत गुरु कहा गया है।

प्राचीन भारतीय राष्ट्र का वैशिष्ट्य : निष्कर्ष

उपरोक्त प्राचीन भारत के राष्ट्रीयता के मूल सिद्धान्तों के तथा इसके क्रियान्वयन को देखते हुए कुछ निष्कर्ष सहज में ही स्पष्ट देखे जा सकते हैं -

1. भारत विश्व का प्राचीनतम राष्ट्र है।
2. हिन्दू कोई धर्म नहीं बल्कि एक समूची जीवन पद्धति है जो किसी एक वर्ग, सम्प्रदाय, देश के लिए नहीं बल्कि मानव मात्र के लिए है तथा जो वसुधैव कुटुम्बकम् तथा विश्व बन्धुत्व के महान आदर्शों पर टिका है।
3. धर्म की दृष्टि से हिन्दू विभिन्न समुदायों का एक सुन्दर समावेश है।
4. भारतीय राष्ट्र की रचना के मूल सिद्धांत मातृभूमि के प्रति अनन्य प्रेम तथा सांस्कृतिक जीवन मूल्यों की व्यवस्था अथवा रक्षा करना रहे हैं।
5. भारत में विभिन्न समूहों पर अनेक राज्यों के निर्माण हुए। उनके स्वरूप भी भिन्न भिन्न रहे। परन्तु उन्होंने कभी केंद्रीयकरण, निरंकुशतन्त्र, सामन्तवाद को सम्मान नहीं दिया।
6. पाश्चात्य देशों के विपरीत भारत राष्ट्र राज्यों की कल्पना को न मानकर राज्यों के राष्ट्र को मानता है।

7. भारत में उपासना की पद्धति या 'रीलीजन' को लेकर कभी विवाद या खून खराबा नहीं हुआ, बल्कि हिन्दू धर्म प्रत्येक व्यक्ति को धर्म की पूर्ण स्वतन्त्रता देता है।
8. राजा का कोई धर्म हो, प्रत्येक की नीति सदैव दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णु, उदार, समभाव की रही।
9. भारत प्राचीन काल से भारत पर झुण्ड के झुण्ड रूप में विदेशियों के आक्रमण हुए। 6ठी शताब्दी ई. पूर्व से ईरानियों, यूनानियों, इण्डो-बैक्ट्रियन, इण्डो-पार्थियन, शकों, कुषाणों तथा हूणों ने अपार सेना के साथ, बर्बर ढंग से न केवल भारत भूमि पर अत्याचार किए, नरसंहार किया बल्कि यहां की संस्कृति तथा सभ्यताओं को नष्ट करने का प्रयत्न किया परन्तु ये सभी आक्रमण भारत के विशाल शरीर के कुछ अंगों पर ही हुए, वह उसकी आत्मा को न छेद सके।
10. इसके विपरीत प्रायः सभी विदेशी या तो वापिस लौट गये या भारतीय जीवन तथा संस्कृति से समरस हो गए। उन्होंने अपना स्वतन्त्र अस्तित्व खो दिया। इन्होंने भारतीय जीवन मूल्यों को अंगीकार किया। अनेकों ने हिन्दू या बौद्ध धर्म अपना लिया। उदाहरण के लिये यूनानी सेनापति मिनांडर जो मिलिन्द पन्थो या मिलेन्द्र बन गया वह स्यालकोट के बौद्ध विद्वान नागसेन का शिष्य बन गया। यूनानी राजदूत हेलियोडोरोस (Helio Doroes) तक्षशिला के एक राजा (Antidokodes) के काल में आधुनिक मध्यप्रदेश के विदिशा नगर गया तथा उसने विष्णुध्वज के समान गरुडध्वज की स्थापना की। राजा गोंडाफिरनीज ने शैवमत अपना लिया। कुषाण शासक बौद्धमत के उपासक बन गये। उन्होंने धार्मिक उदारता तथा परस्पर सहयोग में वृद्धि की। अतः यह क्रम हर्षवर्धन के काल तक अर्थात् 647 ई. तक अबाध गति से चलता रहा।
11. भारत की अद्भुत तथा साहस, शौर्य की परम्परा निरन्तर बनी रही। उदाहरणतः पंजाब में यद्यपि छोटे-छोटे अनेक राज्य थे, परन्तु प्रत्येक का सैनिक बल जनसंख्या के अनुपात में पर्याप्त था। उनके संघर्षों में निरन्तरता तथा जुझारूपन था। ईरान की पराजय, सिकन्दर की महत्वाकांक्षाओं पर तुषारपात, हूण जैसी क्रूर तथा बर्बर शक्ति, जिसने रोम के

अध्याय-दो

सन्दर्भ सूची

1(अ) रिचर्ड सग, ममीज, केनीवाल्स एण्ड एम्पायर्स (लन्दन, 2011)

1. ऋग्वेद (हिन्दी अनुवाद आचार्य डा. ओम प्रकाश वर्मा, सहारनपुर, 2008), प्रस्तावना, पृ. 1
2. वही, पृ. 5
3. ऋग्वेद, 10/191/2
4. वही, 10/191/3
5. वही, 10/191/4
6. यजुर्वेद, 22/22
7. वही, 5/22
8. वही, 11/29
9. वही, 12/17
10. सामवेद, 19/49
11. वही, 21/14
12. अथर्ववेद, 12/1/1
13. वही, 12/1/2
14. वही, 12/1/3 व 12/1/4
15. वही, 12/1/5
16. वही, 12/1/6 से 12/1/11
17. वही, 12/1/12
18. वही, 12/1/13 से 12/1/17 के विभिन्न मन्त्र
19. वही, 12/1/19 से 12/1/21 तक
20. वही, 12/1/23 से 12/1/26 तक
21. वही, 12/1/28
22. वही, 12/1/30 - 12/1/32
23. वही, 12/1/36

साम्राज्य को नष्ट कर दिया, उनकी नाक में नकेल डालना आदि भारतीयों की वीरता तथा शौर्य का परिचायक है।

12. इसके अलावा भारत की कमजोरी का भी ध्यान आया। परस्पर कटुता तथा संघर्ष तथा सामूहिक संघर्षों की उपेक्षा ने भारत की राजनीति कमजोरी का भी अहसास कराया।
13. चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा स्थापित उत्तर पश्चिम सीमा सुरक्षा, भारतीयों का लक्ष्य बन गया तथा गुप्त तथा वर्धन शासकों के लिए वह लक्ष्य बना रहा।
14. भारत अपने राष्ट्रीय वैशिष्ट्य अर्थात् भारत मां अथवा भूमि के प्रति अटूट भक्ति, श्रद्धा तथा समर्पण तथा उच्च सांस्कृतिक जीवन मूल्यों के कारण विश्व का सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र बन सका। मुख्यतः गुप्त काल से लेकर तेरहवीं शताब्दी तक भारत ने भारत के चहुँओर अपना सांस्कृतिक विस्तार किया, इसमें दक्षिण भारत का प्रमुख योगदान रहा। वस्तुतः यह सांस्कृतिक विरासत आज भी भारत को विश्व से जोड़ने वाली सबसे मजबूत कड़ी है।

24. वही, 12/1/41
25. वही, 12/1/50
26. वही, 12/1/51
27. वही, 12/1/56
28. वही, 12/1/62
29. वही, 12/1/63
30. दत्तोपंत ठेंगडी, एक सम्पूर्ण राष्ट्र की संकल्पना, पाञ्चजन्य, 13 अप्रैल 1986, पृ. 50-51; दत्तोपंत ठेंगडी, संकेत रेखा (नई दिल्ली, 1981), पृ. 139-150
31. अथर्ववेद 12/1/45
32. ऐतरेय उपनिषद्
33. अथर्ववेद 6/88/3; देखें लेख, नरेन्द्र मोहन, राष्ट्रीयता की पहचान के आधार, दैनिक जागरण, 16 फरवरी 2003
34. विस्तृत वर्णन के लिए देखें राधाकृष्ण चौधरी, प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास (प्र.सं. 1967, परिवर्तित सातवां सं. 1998, पटना), पृ. 48-50
35. वही, पृ. 48
36. वही, पृ. 54
37. विस्तार के लिए देखें, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, पाणिनीकालीन भारत
38. जनपदों के विकास के लिए देखें, डॉ. दिनकर मुकुट वागह, हिस्टोरिकल ज्योग्रेफी आफ इंडिया (पूना, 2000), पृ. 88-100
39. चितराव शास्त्री, प्राचीन भारतीय स्थलकोष, भाग एक (पूना, 1969), पृ. 63
40. वही, पृ. 63
41. महाभारत, भीष्म पर्व
42. चितराव शास्त्री, पूर्व उद्धरित, पृ. 66
43. डॉ. एस.एल. अली, द ज्योग्रेफी आफ द पुराणाज (नई दिल्ली, 1966), पृ. 163-169
44. वही
45. मनमोहन कुमार, अध्यक्षीय भाषण (प्राचीन पंजाब), पंजाब हिस्ट्री कांफ्रेंस, 29वां सम्मेलन (पटियाला, 1997)

46. डॉ. बुद्ध प्रकाश, गिल्मपसैजेज आफ ऐन्सेंट पंजाब (पटियाला, 1966), पृ. 5
47. स्ट्रबॉस ज्योग्रेफी (अंग्रेजी अनुवाद हेमिल्टन एवं फालकानर), 15वां भाग, पृ. 5
48. सीटीसायस, प्रशा (अनुवाद गिलमौर), पृ. 133-135; डॉ. बुद्ध प्रकाश, पूर्व उद्धरित, पृ. 6
49. हिदायती कुकश कबीर (फारसी में) अध्याय 12वां, उद्धरित, डॉ. बुद्ध प्रकाश, पूर्व उद्धरित, पृ. 6
50. डॉ. बुद्ध प्रकाश, पूर्व उद्धरित, पृ. 10
51. वही, पृ. 17
52. वही, पृ. 17
53. डॉ. डी.सी. सरकार, ईरानियन्स एण्ड ग्रीक्स इन एनसेन्ट पंजाब (पटियाला, 1973), पृ. 20
54. वही, पृ. 21
55. डॉ. बुद्धप्रकाश, पूर्व उद्धरित, पृ. 28
56. प्लूटार्क, लाइफ आफ एलेक्जेंडर, उसके अनुवादित शब्द हैं, "The battle with Porus depressed the spirits of the Macedonians, and made them very unwilling to advance further India."
57. डॉ. डी.सी. सरकार, पूर्व उद्धरित, पृ. 30
58. डॉ. बुद्ध प्रकाश, पूर्व उद्धरित, पृ. 28
59. डॉ. डी.सी. सरकार, पूर्व उद्धरित, पृ. 26
60. वी.ऐ. स्मिथ, द अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया (1924 का संस्करण), पृ. 117
61. आर.सी. मजूमदार, द क्लासिकल अकाउन्ट्स आफ इंडिया, पृ. 193
62. राधाकृष्ण चौधरी, पूर्व उद्धरित, पृ. 95
63. वी.ऐ. स्मिथ, पूर्व उद्धरित
64. एस. कृष्णास्वामी आयंगर, दक्षिण भारतीय इतिहास का आरम्भ
65. राधाकृष्ण चौधरी, पूर्व उद्धरित, पृ. 137
66. वी.ऐ. स्मिथ, पूर्व उद्धरित, पृ. 70-71
67. वही, पृ. 71
68. राधाकृष्ण चौधरी, पूर्व उद्धरित, पृ. 138

69. वी.ए. स्मिथ, अशोक, द बुद्धिष्ट एम्परा आफ इंडिया (भारतीय संस्करण 1981, बुलन्दशहर), पृ. 25-27
70. वही, पृ. 32-34
71. वी.ए. स्मिथ, द अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ. 193
72. रोमिला थापर, ऐ हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग एक (प्र.सं. 1966, रीप्रिंट, 1984, ग्रेट ब्रिटेन), पृ. 92
73. वी.ए. स्मिथ, द आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इंडिया (द्वि.सं. 1923, आक्सफोर्ड), पृ. 119
74. श्री राम साठे, भारतीय इतिहास माला राजनीतिक खण्ड, भाग एक (नागपुर, 1982), पृ. 43
75. वही, पृ. 44
76. वही, पृ. 46
77. एस. कृष्णास्वामी आयांगर, ए क्लासबुक आफ इंडियन हिस्ट्री (कोलकाता, मुम्बई, चेन्नई, 1945), पृ. 76
78. रोमिला थापर, पूर्व उद्धरित, पृ. 136
79. पी.एल. गुप्ता, हिस्ट्री आफ इम्पीरियल गुप्ताज
80. राधाकृष्ण चौधरी, पूर्व उद्धरित, पृ. 240
81. वही, पृ. 285
82. वही, पृ. 288
83. वही, पृ. 289
84. वही, पृ. 289
85. वी.ए. स्मिथ, द आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ. 167
86. ह्वानसांग, ह्वानसांग का भारत भ्रमण (अनु.), ठाकुर प्रसाद शर्मा (सुरेश) (प्रयाग, 1929)
87. राधाकृष्ण चौधरी, पूर्व उद्धरित, पृ. 315
88. वी.ए. स्मिथ, द आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ. 167
89. विस्तार के लिए देखें, राधाकृष्ण चौधरी, पूर्व उद्धरित, पृ. 394-452
90. डा. ए.एस. अल्लेकर, द राष्ट्रकूट एण्ड देयर टाइम्स; जी याजदानी (सम्पादित) दक्षिण का प्राचीन इतिहास
91. विषय की व्यापकता पर अनेक प्रसिद्ध ग्रन्थ उपलब्ध हैं। यहां पर इस विषय को सूत्र रूप में

स्पर्श मात्र किया गया है।

92. श्री राम साठे, पूर्व उद्धरित, पृ. 53
93. राधाकृष्ण चौधरी, पूर्व उद्धरित, पृ. 453-461; भारत के प्राचीन सम्बन्धों के लिए देखें अमृत्यसेन, द आरगूमेनटेटिव इंडियन, राइटिंग्स इन इंडियन कल्चर, हिस्ट्री एण्ड आईडेंटिटी (पेंगुइन, 2005), पृ. 161-203; श्रीराम शर्मा आचार्य, समस्त विश्व को भारत के अजस अनुदान, 2 भाग (मथुरा, 1990); डा. शरद हेवालकर, कृवन्तोविश्वमार्यम (नई दिल्ली, 2010)
94. भिक्षु चमनलाल, हिन्दू अमेरिका

अध्याय-तीन

भारत में मुस्लिम शासन तथा राष्ट्रवाद

सातवीं शताब्दी में अरब की धरती पर इस्लाम का आविर्भाव, विश्व के इतिहास में एक महान परिवर्तनकारी घटना थी। सैमेटिक धर्मों में यह यहूदी तथा ईसाई धर्म के पश्चात् तीसरा व विश्व में नवीनतम था। परन्तु प्रचार तथा प्रसार की दृष्टि से यह तीव्रतम तथा प्रभावी था। इस्लाम की आंधी ने न केवल अरब प्रायःद्वीप को बल्कि समूचे विश्व को झकझोर दिया।

इस्लाम एक मज़हबी राजनैतिक आन्दोलन

इस्लाम प्रारम्भ से ही एक मज़हबी उन्माद से भरपूर आन्दोलन रहा है। इसका उद्देश्य दारुल हरब को दारुल इस्लाम बनाना रहा अर्थात् विश्व का इस्लामीकरण करना रहा है। इसका सर्वोच्च आदर्श हज़रत मुहम्मद साहब का जीवन तथा पवित्र कुरान की आयतें रहा। इस्लाम में व्यक्तियों के सभी क्रियाकलापों का केन्द्र बिन्दु, मार्गदर्शक तत्त्व मज़हब रहा है।

एक प्रसिद्ध विद्वान डा. के.वी. पालीवाल¹ ने सार रूप में इस्लाम मज़हब का विश्लेषण करते हुए लिखा, “इस्लाम एक धर्म-प्रेरित मुहम्मदीय राजनैतिक आन्दोलन है। कुरान जिसका दर्शन, पैगम्बर मुहम्मद जिसका आदर्श, हदीसों जिसका व्यवहार शास्त्र, शरियत जिसका विधि विधान, जिहाद जिसकी कार्यप्रणाली, मुसलमान जिसके सैनिक, मदरसे प्रशिक्षण केन्द्र, गैर-मुस्लिम राज्य जिसकी युद्धभूमि और विश्व इस्लामी साम्राज्य जिसका अंतिम उद्देश्य है।”

इस्लाम² एक अरबी शब्द ‘सलाम’ से बना है जिसका अर्थ है झुकना, स्वीकार

करना, समर्पण³ अथवा खुदा की मर्जी पर छोड़ देना। प्रसिद्ध विद्वान सैयद अमीर अली⁴ इसे केवल खुदा की मर्जी पर नहीं, बल्कि वह इसके सच्चाई के बल पर जोर देते हैं। इसके साथ ‘मुस्लिम’ शब्द से तात्पर्य इस्लाम में आस्था रखने वालों से है⁵ जो इसकी राजनैतिक मानसिकता को भी बतलाते हैं। ‘मुस्लिम’ अरबी शब्द के उच्चारण के साथ ‘मोसलिम’ शब्द क्रमशः फारसी तथा ‘मुसलमान’ शब्द टर्की के प्रभाव को दर्शाता है। कुछ विद्वानों ने इसे ‘मोहम्मडन’ भी कहा है तथा पाश्चात्य प्रभाव के कारण इन्हें ‘मोहम्तेन’ भी कहा गया है।⁶

अतः यह विभिन्न शब्दावली तथा अर्थ में उपयोग में हुआ जैसे विश्वास, सभ्यता, स्थान, समुदाय, मज़हब, इस्लामी विश्व आदि।⁷ वस्तुतः इन अर्थों से भ्रम ही अधिक फैला। यह आश्चर्यजनक है कि विश्व में ‘इस्लाम’ का अरबी शब्द ही सर्वाधिक प्रचलित है। जबकि विश्व के 5/6 से भी अधिक मुस्लिम अरबी भाषा से अपरिचित हैं।⁸ नोबेल पुरस्कार विजेता सर वी.एस. नायपाल का मानना है कि इस्लाम मूल रूप से एक अरबी धर्म है। जो भी मुस्लिम अरबी नहीं है, वह धर्मान्तरित हुआ है। इस्लाम केवल निजि विश्वास या अन्तरात्मा का विषय नहीं है, उसकी साम्राज्यवादी मांगें जुड़ी हैं। एक धर्मान्तरित व्यक्ति का विश्व-दृष्टिकोण बदल चुका होता है। वह अपने देश के अतीत से कट जाता है।

एक अन्य प्रसिद्ध विद्वान के अनुसार¹⁰, “इस्लाम की प्रारम्भ से ही प्रकृति विस्तारवादी रही है और विश्वासों के इस साम्राज्यवाद का मौलिक चरित्र अपने धर्मानुयायियों को असहिष्णुता व हिंसा के निर्देश देने के अलावा, गैर इमानवालों या विधर्मियों के विरुद्ध की जाने वाली कार्यवाही में देश और समाज की सीमाएं नहीं मानता है।

इस्लाम में मज़हबी राजनैतिक अथवा साम्राज्यवाद का सबसे प्रमुख अंग शस्त्र ‘जिहाद’ है। यह शब्द अरबी भाषा के ‘जुहद’ से बना है, जिसका अर्थ है प्रयत्न करना।

मगर इस्लाम के धार्मिक अर्थ में जो शब्द प्रयोग होता है वह है 'जिहाद फ़ी सबी अल्लाह' या नि अल्लाह के लिए या 'अल्लाह के मार्ग में जिहाद करना'।¹¹ उल्लेखनीय है कि इस्लाम धर्म ग्रन्थ जिहाद के आदेशों, निर्देशों व आज्ञाओं से भरे पड़े हैं और इसमें विचार विनिमय एवं पारस्परिक सहमति के लिए कोई कैसा भी स्थान नहीं है।¹² पाकिस्तान सेना के ब्रिगेडियर एस.के. मलिक का विचार¹³ है कि युद्ध अल्लाह के उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही लड़ा जाता है। एक प्रसिद्ध विद्वान श्री सुहास मजूमदार ने अपनी खोजपूर्ण पुस्तक का नाम ही रखा, 'जिहाद, द इस्लामिक डोक्ट्रिन आफ परमानेंट वार'। अतः जिहाद गैर मुसलमानों के एक अन्तहीन संघर्ष है जिसे मजहब के कर्तव्य के रूप में बतलाया गया है। इस पुस्तक के पांच विभिन्न अध्यायों में पांच महत्वपूर्ण बातें कही गई हैं।¹⁴ अर्थात् इस्लाम के विस्तार के लिए शक्ति और जबरदस्ती का समर्थन, काफ़िरों के विनाश की आवश्यकता, पराजित क्षेत्रों की काफ़िर जनता से जज़िया वसूल करना एक धार्मिक कर्तव्य, काफ़िरों की सम्पत्ति को लूटना वैध बतलाना तथा पराजय के बाद काफ़िरों की महिलाओं और बच्चों को दास बनाना। संक्षेप में जिहाद युद्ध एक बहुआयामी है जिसका उद्देश्य इस्लाम का प्रचार तथा गैर मुसलमानी धर्मों का दमन तथा विनाश करना है।¹⁵ जिहाद में भाग लेने से सभी पापों को माफ़ किया जा सकता है। यूरोप में फ्रांस (ईसाई) तथा तारे (इस्लाम) के बीच अनेक भयंकर तथा लम्बे संघर्ष हुए। गैर मुसलमानों को मजहब परिवर्तन के लिए बाध्य किया गया। गैर मुसलमानों को अनेक कष्ट दिये गये। उन्हें तीन मार्गों में से एक चुनने के लिए बाध्य किया गया – इस्लाम धर्म कबूल करना, भूमि छोड़कर भाग जाना या जज़िया देना। इन व्यक्तियों को 'जिम्मी' भी कहा गया। प्रारम्भ में यह शब्द केवल यहूदियों तथा ईसाईयों के लिए प्रयुक्त हुआ। गैर-मुसलमानों को 'काफ़िर' कहा गया है। 1453 ई. में कुस्तुनतुनिया के पतन से विश्व इतिहास में परिवर्तन हुआ तथा जिहादी आक्रमणों का दौर कम हुआ।¹⁶

इस्लाम तथा राष्ट्रीयता

इस्लाम, राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद को स्वीकार नहीं करता। इस्लाम राष्ट्रवाद को बाधक नहीं बल्कि मजहब के विरुद्ध मानता है। जमात-ए-इस्लामी के विश्व विख्यात मौलवी अबुल आला मौदूदी¹⁷ का कथन इस सन्दर्भ में सारगर्भित है। उसका कथन है, "इस्लाम और राष्ट्रीयता दोनों भावना तथा अपने मकसद के लिहाज से एक-दूसरे के विरोधी हैं। जहां इस्लाम इस्लाम है, वहां राष्ट्रीयता के लिए कोई जगह नहीं है। राष्ट्रीयता की तरीकी का मायना यह है कि इस्लाम के फैलाने का रास्ता बन्द हो जाये और इस्लाम के मायने यह है कि राष्ट्रीयता की जड़ बुनियाद से उखाड़ दी जाये। अतः यह जाहिर है कि एक शख्स एक वक्त में इन दोनों में से किसी एक का ही तरक्की का हामी हो सकता है।"

मौदूदी ने राष्ट्रवाद को शैतान तथा देशभक्ति को शैतानी वसूल (बड़ी बुराई) बतलाया। उसने राष्ट्रवाद को मुसलमानों की एक जहालत बतलाया तथा इन दोनों को यूरोप की देन माना है जो स्वार्थ की नींव पर खड़ा है।¹⁸

संक्षेप में इस्लाम न राष्ट्रवाद को मानता है और न ही विश्व बंधुत्व को। वह केवल मजहब को मानता है तथा केवल मुस्लिम भ्रातृत्व में विश्वास करता है। यद्यपि समय-समय पर स्वार्थ तथा महत्वाकांक्षा वश मुस्लिम आपस में भी टकराते रहते हैं। परन्तु यह सत्य है कि मजहब के आगे वे अपनी जन्मभूमि, अपने परिवार तथा देश से नाता तोड़ देते हैं।

भारत में इस्लामी राष्ट्रीयता का स्वरूप

इस्लाम का प्रचार तथा प्रसार हजरत मुहम्मद साहब के काल से ही होने लगा था। यह माना जाता है कि हजरत मुहम्मद साहब ने अपने आसपास के क्षेत्रों में अनेक लड़ाईयां लड़ी थीं। मदीना जैसे नगर राज्य को विश्व राज्य बनाने के प्रयत्न उनके जीवन

काल में ही प्रारम्भ हो गये थे।

मुहम्मद साहब के 632 ई. में मरते ही, इस्लाम के मजहबी उन्माद से ग्रसित, विश्व में राजनैतिक सत्ता हथियाने के प्रबल प्रयत्न हुए। अबूबकर के नेतृत्व में जुलाई 634 ई. में बयान्जेन्टाइन को हराकर सम्पूर्ण फिलिस्तीन पर कब्जा कर लिया गया। सीरिया तथा मेसोपोटामिया पर आक्रमण किये गये। शीघ्र ही सीरिया, मिश्र, इराक, ईरान, त्रिपोली, मंगोलिया, बुखारा, जार्जिया तथा अजरबेजान पर अधिकार कर लिया। अफगानिस्तान, बलूचिस्तान तथा सिंध पर भी आक्रमण किये गये। उम्मैय्यद वंश के खलीफा वाहिद प्रथम के काल में मोहम्मद बिन कासिम का सिन्ध पर आक्रमण हुआ। इसी काल में इस्लाम का प्रभाव यूरोप में स्पेन तक बढ़ा। 711 ई. में मूसा तथा तारीक ने स्पेन पर कब्जा कर लिया। 720 ई. में पिरनेज पर्वत श्रृंखलाओं को पार कर, इस्लाम के अनुयायियों ने दक्षिण फ्रांस पर भी आक्रमण किया, परन्तु शीघ्र ही उन्हें वहां से भगा दिया गया।

749 ई. में अब्दुल्ला अब्बास ने एक सफल विद्रोह कर उम्मैय्यद वंश (सीरिया का) को नष्ट कर दिया। विश्व प्रसिद्ध इतिहासकार एच.जी. वेल्स ने इस परिवर्तन का वीभत्स वर्णन किया है। अब्बासीद वंश का काल 749 ई. से 1258 ई. तक रहा। इस वंश के खलीफाओं ने अपनी राजधानी दमिश्क की जगह बगदाद बनाई। इन्होंने अरबों के साथ कोई लगाव न दिखलाया। सुन्नी के स्थान पर मुसलमानों के शिया मत को महत्व दिया गया।¹⁹

मुहम्मद बिन कासिम के असफल प्रयास

यह उल्लेखनीय है कि जहां विश्व में इस्लाम के प्रचार तथा प्रसार में लगभग एक शताब्दी से भी कम लगा, वहां भारत में इसकी जड़ें जमाने के प्रयास में लगभग पांच शताब्दियां लगी। मोहम्मद गोरी के आक्रमण के पश्चात भी भारत का सीमित क्षेत्र ही

इस्लाम के प्रभाव में आ सका। इन पांच सौ वर्षों में मुख्यतः तीन अन्तर्काल में भारत पर मुस्लिम आक्रमण हुए। मोहम्मद बिन कासिम के आक्रमण से पूर्व भारत में मुसलमानों के चौदह अथवा पन्द्रह बार आक्रमण हुए। विद्वानों ने विभिन्न आक्रमणों के नेतृत्व करने वाले सेनापतियों के नामों का ब्यौरा तथा सेना की संख्या भी दी है।²⁰ मोहम्मद बिन कासिम के आक्रमण से पूर्व देश आर्थिक दृष्टि से समृद्धशाली तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में अत्याधिक उन्नत था परन्तु देश में राजनैतिक अस्थिरता थी। सम्राट हर्षवर्धन के पश्चात देश में राजनैतिक एकता कम थी। भारत के विभिन्न प्रदेशों के राजाओं ने इस विदेशी आक्रमण की राष्ट्रव्यापी चुनौती को रोकने का सामूहिक प्रयास न किया।²¹ अरबों का पहला आक्रमण 636-637 ई. में हुआ था। इसी काल में 639-640 ई. में उन्होंने ईरान को नष्ट कर दिया था। 660-711 ई. के दौरान भी इन विदेशी आक्रमणकारियों की गतिविधियां चलती रही थीं। मोहम्मद बिन कासिम के आक्रमण का मुकाबला सिन्ध प्रदेश के तत्कालीन वीर शासक राजा दाहिर ने किया। मोहम्मद बिन कासिम ने 712 ई. में देवल (कराची) पर आक्रमण किया तथा देवल के प्रसिद्ध मंदिर पर लहराते भगवा ध्वज को योजनापूर्वक गिरा दिया। भारतीय राष्ट्रीयता के प्रतीक इस अजेय ध्वज के गिरने से भारतीयों का मनोबल कम हुआ। कहा जाता है कि इसके पश्चात मोहम्मद बिन कासिम को सिन्ध विजय करने में सरलता हुई।

मोहम्मद बिन कासिम का आक्रमण पूर्णतः मजहबी उन्माद से किया गया था, क्योंकि सिंध प्रदेश न कोई उपजाऊ प्रांत था और न ही उसकी अधिक आय थी। आक्रमण का उद्देश्य इस्लाम का प्रचार तथा जिहाद की तीव्र भावना थी। सिन्ध की क्षणिक विजय के पश्चात मोहम्मद बिन कासिम ने वहां नृशंस हत्याकाण्ड किया, जो इस्लाम द्वारा भारत के इतिहास में पहला हत्याकाण्ड था। भारतीयों के इस्लाम धर्म न अपनाने पर सत्रह वर्ष तक के युवकों को कत्ले-आम किया गया तथा महिलाओं तथा बच्चों को गुलाम बनाया

गया।²² मंदिर को गिराकर मस्जिद बनवा दीं। खलीफा के नाम का खुतबा पढ़ा गया। एक विद्वान के अनुसार, 'यह संघर्ष इतना भयंकर था कि इससे पहले कभी न सुना था।'²³ प्रसिद्ध 'चचनामा' में इसे एक 'साहसी युद्ध'²⁴ कहा गया है। राजा दाहिर ने अपनी भूमि की रक्षा के लिए बलिदान दिया। इतना ही नहीं उसकी दो पुत्रियों - सूरजदेवी तथा परमाल देवी ने अपने कौमार्य की रक्षा के लिए किले की दीवार से कूदकर जान दे दी। राजा दाहिर की पत्नी ने जौहर किया।

विचारणीय विषय है कि लगभग 76 वर्षों के सतत प्रयत्नों (636-712 ई.) अथवा भारत पर पन्द्रह आक्रमणों के पश्चात क्या विदेशी आक्रमणकारियों को भारत में सफलता मिली? तथ्य तो यह बतलाते हैं कि अरब आक्रमणकारियों को अपने सिद्धान्तों की बलि देकर, जेहाद के विचार को छोड़कर, यहां के लोगों (काफिरों) के साथ अपनी सुरक्षा के लिए मित्रता करनी पड़ी।²⁵ विश्व इतिहास में अभी तक कहीं भी अरबों को राजनीतिक तथा सांस्कृतिक धरातल पर इतना संघर्ष न करना पड़ा था, जितना भारत में।²⁶ बगदाद के हज्जाज ने मोहम्मद बिन कासिम को हिन्दुओं के साथ कठोरतापूर्वक निबटने के आदेश भेजे थे, परन्तु उसने हिन्दुओं को सुविधायें देनी प्रारम्भ कर दीं।²⁷ वास्तव में यह मोहम्मद बिन कासिम की उदारता नहीं, बल्कि मजबूरी थी। विदेशी विद्वानों ने भी सिन्ध के मुस्लिम आक्रमण को 'एक साधारण तथा महत्त्वहीन घटना' कहा है।²⁸

इसके विपरीत भारत की उन्नत भारतीय संस्कृति का अरब जगत पर बड़ा प्रभाव हुआ। एच जी वेल्स के अनुसार²⁹, "मध्य युग में जहां चोरी व अविद्या का प्रचार था, वहां ज्ञान का दीपक अरबों को भारत से प्राप्त हुआ।" भारत के अनेक ग्रन्थ बगदाद ले जाये गए। इनमें ब्रह्म सिद्धान्त प्रसिद्ध ग्रन्थ है। आयुर्वेद, दर्शन, ज्योतिष, भूगोल आदि के अनेक ग्रन्थों का अरबी में अनुवाद किया गया। खलीफा हारू रशीद ने एक बीमारी के उपचार

के लिए भारतीय वैद्य बुलाये। वस्तुतः अरब, भारतीय देश की सभ्यता की उच्चता, हिन्दू धार्मिक विचारों की उदारता तथा हिन्दू बौद्धिकता की विशालता तथा सम्पन्नता देखकर, आश्चर्यचकित हो गया तथा उसमें एक अद्भुत क्रांति हुई।" मुसलमानों को लगा कि ईश्वर की एकता के सिद्धान्त की जानकारी तो पहले से ही भारतीयों को है।³⁰

सिन्ध और मुल्तान (प्राचीन नाम मूलस्थान) के हिन्दू, अरबों द्वारा आक्रमण होने पर भी अपने धर्म की रक्षा करने में समर्थ रहे। "मुसलमानों की रूक्ष सभ्यता और कठोर धर्म, हिन्दुओं की प्राचीन समृद्ध संस्कृति, गहन दर्शन और कर्मकाण्ड के सामने लड़खड़ा गये।"³¹ हिन्दू धर्म की सांस्कृतिक विरासत बराबर बनी रही। सम्राट हर्षवर्धन से राजा भोज तक सभी ने इसके वर्चस्व को स्वीकार किया।

परन्तु इसके दो दूरगामी परिणाम भी अवश्य हुए। हिन्दू धर्म की सांस्कृतिक विरासत निरंतर बनी रही, परन्तु इसकी आत्मसात करने की शक्ति कम हुई। पूर्व के सभी विदेशी आक्रमणों में, प्रायः सभी आक्रमणकारी हिन्दू संस्कृति में एकरस या विलीन हो गए थे पर अब ऐसा तीव्र गति से न हुआ। दूसरे, राजनीतिक क्षेत्र में विदेशी आक्रमणों के प्रति सतत जागरूकता तथा सामूहिक प्रतिरोध की भावना कम हुई जिससे भारतीय राष्ट्र की सुदृढ़ता कमजोर हुई।

महमूद गजनी के सांस्कृतिक आक्रमण

भारत पर मुसलमानों के छोटे-मोटे आक्रमण होते रहे तथा भारतीयों द्वारा उनका सतत प्रतिरोध होता रहा। इस दिशा में दूसरे मुख्य आक्रमण महमूद गजनी के काल (1000-1030 ई.) में हुए। उसने भारत भूमि पर सत्रह बार आक्रमण किये। उसके भारत पर आक्रमण का सिलसिला जिहाद की भावना से था। तत्कालीन इतिहासकार उत्बी ने अपने ग्रन्थ तारीखे-यामिनी में आक्रमणों का यही मुख्य कारण बतलाया है। हिन्द में धार्मिक युद्ध में लगाना उसे पसंद था³² तथा इस्लाम में उसकी अपार श्रद्धा थी और

उसे लगता था कि अकारण ही भारतीय काफिरों के राज्य पर आक्रमण कर वह इस्लाम की सेवा कर रहा है।³³ मंदिरों को लूटना और इस्लाम को महिमामंडित कर इस्लाम के प्रचार को अपना मुख्य कर्तव्य मानता था। उसने खलीफा से अमीनुद्दौला अर्थात् साम्राज्य का दाहिना हाथ तथा अमीर-उल-मिल्लत यानि मुसलमानों का संरक्षक की उपाधि प्राप्त की थी।

महमूद गजनी ने मुख्यतः अपने आक्रमण हिन्दुओं के आस्था, विश्वास तथा श्रद्धा केन्द्रों पर किये। इसमें नगरकोट, थानेसर (थानेश्वर) मथुरा तथा सोमनाथ प्रमुख हैं। सभी स्थानों पर भयंकर संघर्ष हुए। नगरकोट में महमूद गजनी ने अपार धनराशि प्राप्त की।³⁴ मथुरा के बारे में गजनी ने स्वयं एक पत्र में लिखा कि यहां “मंदिर तो इतनी अधिक संख्या में हैं कि मैं उन्हें तोड़ते-तोड़ते थक गया हूं।”³⁵ इस भांति उसने सोमनाथ मंदिर के बारे में सुना था कि हिन्दुओं का विश्वास है कि मृत्यु के पश्चात मनुष्य की आत्मा शरीर से अलग होकर सोमनाथ मंदिर में प्रविष्ट होती है और सोमनाथ भगवान हर आत्मा के कर्मों के अनुसार पुनर्जन्म प्रदान करते हैं।³⁶

भारतीय इतिहासकारों तथा साहित्यकारों ने भारतीय संस्कृति एवं इसके लिए संघर्ष के बारे में इसका विशद वर्णन किया है।³⁷ परन्तु कुछ मार्क्सवादी एवं मुस्लिम इतिहासकारों ने - प्रो. मोहम्मद हबीब, के.ए. निजामी, जाफर तथा प्रो. सतीश चन्द्रा ने - उसके आक्रमणों का उद्देश्य मजहबी उन्माद न मानकर केवल धन प्राप्ति की इच्छा बतलाया है जो पूर्णतः असत्य तथा तथ्यों पर आधारित नहीं है। रोमिला थापर ने एक तेरहवीं शताब्दी के अरब साधन का हवाला देते हुए लिखा कि महमूद किसी मंदिर को तोड़ने नहीं आया था बल्कि वह अरब की किसी पुरानी देवी की मूर्ति ढूंढने आया था जिसे स्वयं पैगम्बर साहब ने तोड़ने का हुक्म दिया था।³⁸ महमूद को यह आशा थी कि उसके ध्वंस से हिन्दू जगत मुसलमान बन जायेगा।³⁹ परन्तु उसका यह काल्पनिक तर्क प्राप्त साध

नों तथा महमूद गजनी के विचारों से जरा भी तालमेल पर खरा नहीं उतरता। अतः पूर्णतः अमान्य है।

यहां यह लिखना किंचित भी अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि सोमनाथ का मंदिर न केवल धन सम्पत्ति का अक्षय भण्डार था बल्कि भारतीय राष्ट्रीय जीवन की सांस्कृतिक एकता तथा श्रद्धा का प्रतीक था। इसके सन्दर्भ में तत्कालीन तथा वर्तमान कुछ मुसलमान इतिहासकारों ने जानबूझकर पक्षपात पूर्ण रवैया अपनाया। यह कोई गुजरात की भूमि पर केवल मात्र संघर्ष न हुआ था बल्कि इसकी रक्षार्थ देश के हजारों वीरों ने रक्त बहाया था। उल्लेखनीय है कि लगभग एक हजार वर्षों पहले इसकी स्मृति को इन वीरों में एक जहावीर गोगा जी चौहान⁴⁰ (वीर) की स्मृति में प्रति वर्ष मेले के रूप में सम्पूर्ण उत्तर भारत में खासकर उत्तर प्रदेश, राजस्थान तथा गुजरात में मनाया जाता है। महमूद गजनी की सेनाओं को रोकने तथा संघर्ष में नब्बे वर्षीय गोगा जी महाराज (935-1025 ई.) के पुत्र तथा पौत्र मारे गये थे। बाद में सम्भवतः फिरोज तुगलक के काल में ‘गोगावीर’ को ‘गोगापीर’ कहकर षडयन्त्र किया गया था। एक विद्वान ने महमूद के आक्रमणों की समीक्षा करते हुए लिखा, “डाकाजनी व सामूहिक हत्याकाण्ड से अधिक न थे, यदि उन पर इस्लाम धर्म के प्रचार का लेबल न लगा होता।”⁴¹

निश्चय ही महमूद गजनी के भारत पर 17 आक्रमण अधिक ध्वंसकारी तथा विनाशक थे। उसने धर्मान्तरण, नर संहार तथा भयंकर लूटपाट की। अनेक ऐतिहासिक मंदिरों तथा भवनों को नष्ट किया। गुप्तकालीन कलाकृतियों तथा स्थापत्य कला के नमूने नष्ट किये। अनेक अमूल्य मूर्तियों को तोड़ दिया। वह अपार सम्पत्ति को गजनी ले गया। दसों हजार हिन्दुओं को कैदी के रूप में ले गया तथा जिन्हें गुलामों के रूप में बेचा गया।⁴² अनेकों को जबरदस्ती धर्मान्तरित किया।⁴³ इससे पूर्व एक ओर जहां मोहम्मद बिन कासिम ने कुछ हजार लोगों का वध किया था, वहां गजनी ने लाखों व्यक्तियों का वध

किया।⁴⁴

भारत से प्राप्त अचानक चकाचौंध करने वाली सम्पत्ति को देखकर महमूद गजनी के भानजे (महमूद की बहिन मौला का पुत्र) सालार मसूद ने ग्यारह लाख की विशाल सेना के साथ भारत पर आक्रमण किया। भारत भूमि पर इतनी विशाल सेना के साथ यह पहला विदेशी आक्रमण था। इस भीषण युद्ध का वर्णन जहांगीर युगीन लेखक अब्दुर्रहमान चिश्ती⁴⁵ ने अपनी ऐतिहासिक पुस्तक मीरत-ए-मसूदी में विस्तृत वर्णन किया है। तत्कालीन सत्तारह हिन्दू शासकों ने बहराइच में मसूद की विशाल सेना को घेरने की कोशिश की। 14 जून, 1033 ई. के इस घमासान तथा परिणामकारी युद्ध में सालार मसूद का सर्वनाश हुआ।⁴⁶ वह स्वयं इस युद्ध में मारा गया। इस भयंकर पराजय का समाचार देने वाला एक भी मुसलमान नहीं बचा। मीरत-ए-मसूदी के अनुसार “सालार मसूद की मृत्यु के पश्चात अजमेर में मुजफ्फर खां भी मारा गया। उसके उत्तराधिकारियों को हिन्दुओं ने मार भगाया। जो मूर्तियां मुस्लिम हमलावरों ने तोड़ी थीं वे सब पुनः स्थापित की गईं और हिन्दुस्तान की जमीन पर मंदिरों में घंटियां बजने लगीं।”

वस्तुतः यह भयंकर संघर्ष पूर्व के महमूद गजनी के क्रियाकलापों के प्रति हिन्दू प्रतिरोध था, भयंकर पराजय से आक्रमणकारी मुसलमानों में आतंक तथा भय व्याप्त हो गया तथा भविष्य में आक्रमण करने के प्रति उनमें उदासीनता आ गई। अगले लगभग पौने दो सौ वर्षों (1033-1192 ई.) तक किसी भी मुस्लिम आक्रमणकारी ने भारत पर आक्रमण की हिम्मत न की। यह आक्रमण भारत के राष्ट्रीय जीवन का एक सुखद अनुभव था। सही मायनों में यह एक राष्ट्रीय युद्ध था जब विदेशी आक्रमणकारियों के समूल नष्ट करने का राजा सुहेल देव के नेतृत्व में हिन्दू राजाओं द्वारा सामूहिक सफल प्रयास हुआ।

महमूद गजनी तथा सालार मसूद के आक्रामक प्रयासों से धन तथा जन की

अपार हानि अवश्य हुई। सांस्कृतिक स्थलों को विनिष्ट किया गया। परन्तु इन मुस्लिम आक्रमणों ने हिन्दुओं में इस्लाम के प्रति घृणा का भाव बढ़ाया। वर्तमान कुछ वामपंथी इतिहासकारों⁴⁷ ने इस संघर्षों के परिणामस्वरूप एक मिश्रित संस्कृति का उद्भव ढूँढ़ने का मनगढ़न्त, तथ्यरहित, थोथा तथा राजनैतिक प्रेरित प्रयास अवश्य किया।

मोहम्मद गोरी के आक्रमण

इसी श्रेणी में भारत पर आक्रमण का तीसरा महती प्रयास मोहम्मद गोरी द्वारा 1175-1206 ई. के दौरान हुए। 1175 ई. में उसने मुल्तान को जीता। उच्छ के दुर्ग पर ६ गोखे से विजय प्राप्त की।⁴⁸ गुजरात में अन्हिलवाड़ा के शासक मूलराज ने उसे भयंकर पराजय दी। परन्तु 1180-1186 ई. के बीच वह लाहौर के प्रदेश को जीतने में सफल हुआ।

मोहम्मद गोरी का प्रथम भयंकर संघर्ष अजमेर एवं दिल्ली के शासक राजा पृथ्वीराज चौहान के साथ हुआ। इस समय पृथ्वीराज की आयु 27 वर्ष की थी तथा भारत की जनता ने उसे ‘राम’ की उपाधि से विभूषित किया था। उसने अपने जीवन में छोटी-बड़ी लगभग 21 लड़ाईयां लड़ी थीं।⁴⁹ उसे ‘भारतेश्वर’, ‘राजस्थान गौरव’, ‘हिन्दू संस्कृति का रक्षक’ आदि नामों से भी पुकारा जाता था।

यहां यह लिखना उपयुक्त तथा तर्कसंगत होगा कि तत्कालीन दरबारी तथा चाटुकार इतिहासकारों – हसन निजामी व मिनहाज-उस-सिराज ने मोहम्मद गोरी का चित्रण अतिरंजित भाषा में किया है। इसके साथ ही कुछ वर्तमान इतिहासकारों ने उस पर अपनी मुहर भी लगा दी है। तत्कालीन ग्रन्थ चन्दरबरदाई के ‘पृथ्वीराज रासो’ को भाट एवं चारण का काव्य मानकर उसे पूर्णतः उपेक्षित तथा अनदेखा कर दिया है जो अनुचित तथा ऐतिहासिक मानदण्डों के सर्वथा विपरीत है। सामान्यतः सभी मुस्लिम इतिहासकारों ने मोहम्मद गोरी की एक दो सफलताओं का वर्णन बढ़ा-चढ़ा कर किया, परन्तु उसकी

शर्ममाक तथा अपमानजनक पराजयों की लम्बी चौड़ी सूची को छोड़ दिया है।

चन्दरबरदाई के अनुसार 1191 ई. में तराईन के मैदान के युद्ध से पूर्व वह हांसी में पृथ्वीराज से हारा था। बाद में तराईन के प्रथम युद्ध में गोरी की भारी पराजय हुई थी। गोरी की भागती हुई सेनाओं का चालीस मील तक पीछा किया गया था। सेना में ऐसी भगदड़, पहले कभी न देखी गई थी।⁵⁰ 'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार वह बन्दी बना लिया गया था, परन्तु बाद में छोड़ दिया गया था। पर 1192 ई. में तराईन का दूसरा युद्ध भारत के इतिहास में निर्णायक सिद्ध हुआ।⁵¹ वस्तुतः यह तत्कालीन भारत के 'महानतम योद्धा'⁵² एवं अंतिम हिन्दू शासक की पराजय थी। इस युद्ध से मोहम्मद गोरी की विजय निश्चिन्त हो गई।⁵³ इस संघर्ष में राजपूतों का एक बार उनमें उत्साह जगाने वाला कोई योद्धा न रहा।⁵⁴ इस पराजय से पहली बार भारतीयों में राष्ट्रीय आत्मविस्मृति व राष्ट्रीय चरित्र की कमी का तथा राजपूतों के परस्पर द्वेष के कुपरिणामों का ज्ञान हुआ।

पृथ्वीराज चौहान की इस पराजय के बाद भी मोहम्मद गोरी ने हांसी, सुरसुती, कुहराम और समाना को विजय कर, वहां के मंदिरों को तोड़ा और वहां मस्जिदें बनवाई।⁵⁵ अजमेर में कई विद्रोह हुए तथा हजारों हिन्दुओं का नर संहार हुआ। इतिहासकार हसन निजामी ने लिखा, "हमें लूट में इतना माल व सम्पत्ति मिली कि समुद्र के रहस्यमय कोषागार और पहाड़ एकाकार हो गये।"⁵⁶ अजमेर में अनेक मंदिरों को ध्वंस कर मस्जिदें बनवाई।⁵⁷ यही दिल्ली में हुआ। बनारस में भी एक हजार मंदिरों को ध्वंस कर उनकी नीवों के स्थान पर मस्जिदें बना दीं।⁵⁸

तत्कालीन मुस्लिम इतिहासकार मोहम्मद गोरी की मृत्यु के बारे में प्रायः मौन है। केवल हसन निजामी ने गोरी की मृत्यु पंजाब के खोखरों द्वारा मानी है।⁵⁹ प्रबन्ध चिन्तामणि तथा एक अन्य संस्कृत ग्रन्थ 'विरुदविधि-विध्वंस' में पृथ्वीराज चौहान के बारे में लिखा कि जब मुसलमान सैनिक गुप्त रूप से उसके शिविर में घुस गये और उसे सुप्त

अवस्था में ही पकड़ लिया और मार दिया। परन्तु इसका कोई आधार या तथ्य परक तर्क नहीं दिया है। ऐसा भी वर्णन किया है कि मोहम्मद गोरी स्वयं पृथ्वीराज को अजमेर ले गया तथा उसे दया करके मुक्त करना चाहता था परन्तु अजमेर के महलों की दीवारों पर गोरी ने मुसलमानों को मारते सुअरों के झुण्ड के चित्र देखकर, गुस्से में आकर उसने पृथ्वीराज चौहान का वध करवा दिया। वस्तुतः यह चित्रण कपोलकल्पित है। अजमेर के राजमहल की दीवारों पर केवल रामायण तथा महाभारत के ही चित्र थे।

इस सन्दर्भ में राष्ट्रभक्त कवि चन्दरबरदाई का 'पृथ्वीराज रासो' का वर्णन ज्यादा तर्कसंगत तथा प्रमाणित लगता है जिसमें मोहम्मद गोरी की मृत्यु, पृथ्वीराज चौहान के हाथों से शब्दभेदी बाण से काबुल में उसी के आदेश से चलाये गये बाण से हुई। तभी से चन्दरबरदाई का यह कथन "चार बांस चौबीस गज, अंगुल अष्ट प्रमाण। ना ऊपर सुल्तान है - मत चूके चौहान", प्रसिद्ध हुआ। अतः चन्दरबरदाई के कथन के अनुसार, मोहम्मद गोरी मारा गया था। काबुल में आज भी मोहम्मद गोरी की कब्र से कुछ दूरी पर पृथ्वीराज चौहान का भी स्मृति चिन्ह बना हुआ है।

भारत में मुस्लिम राष्ट्रीयता का स्वरूप (1206-1526)

भारत में 1206-1707 ई. तक इसके कुछ भाग पर मुस्लिम शासन रहा। मुस्लिम शासकों ने कभी भी इस भूमि को मातृभूमि तथा पुण्य भूमि नहीं माना। वे केवल उसे भोग भूमि मानते रहे। भारत के प्रति उनके दृष्टिकोण तथा यहां के जीवन में उनकी समरसता तथा सांस्कृतिक जीवन मूल्यों के प्रति उनके चिंतन तथा व्यवहार को समझने के लिए इस काल को दो खण्डों - अर्थात् 1206-1526 ई. तथा 1526-1707 ई. के दो कालों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम भाग 1206-1526 ई. तक है जिसमें 320 वर्ष में लगभग 32 शासक हुए। इस काल में विभिन्न राजवंशों का विकास अर्धचन्द्र की भांति हुआ, जिसमें 1206-1388 ई. तक अर्थात् 182 वर्ष यह चन्द्रमा पूर्णिमा तक बढ़ता गया,

परन्तु इसके पश्चात् पुनः अमावस्या की रात्रि की ओर यह बढ़ता गया।⁶⁰ इस काल में क्रमशः गुलाम, खिलजी, तुगलक, सैयद तथा लोदी पांच राजवंशों का तीव्रता से उत्थान तथा पतन हुआ। इसी काल में दक्षिण में बहमनी तथा अविस्मरणीय विजयनगर जैसे महान राज्य की स्थापना हुई। साथ ही मंगोलों तथा तैमर के भयंकर तथा वीभत्स आक्रमणों ने दिल्ली सल्तनत तक को दहला दिया।

सूत्र रूप से यदि ऐतिहासिक सन्दर्भ में विचार करें तो ज्ञात होगा कि गोरी के बाद भारत के उत्तर के कुछ भाग पर गुलाम वंश (1206-1290 ई.) का शासन रहा। इसमें तीन प्रमुख शासक हुए - कुतुबुद्दीन ऐबक, शमशुद्दीन इल्तुतमिश तथा गयासुद्दीन बलबन। ऐबक का शासन भारत में पहला विदेशी शासन था जो पूर्णतः अभारतीय था अर्थात् जिसका धर्म अभारतीय तथा जिसने भारतीयों से किसी भी प्रकार समरस होने से मना कर दिया था।⁶¹ उसकी भारतीयों के प्रति नीति कठोर तथा निष्ठुर थी। विद्वानों ने उसकी गणना मध्य एशिया के तात्कालिक 'क्रूर तथा धर्मान्ध' जंगली योद्धाओं में की है।⁶² उसने लाखों व्यक्तियों का वध किया।⁶³ कला तथा धर्म के नाम पर उसने हिन्दुओं के अनेक मंदिरों तथा शिक्षा संस्थाओं को तोड़कर, उसी के चूने मसाले से दिल्ली में कुतुब-ए-इस्लाम का प्रारम्भ किया तथा अजमेर में ढाई दिन का झोंपड़ा नामक मस्जिद बनवाई।

दूसरा प्रसिद्ध गुलाम इल्तुतमिश था। डॉ. अरनोल्ड ने उसे जबरदस्ती गद्दी हथियाने वाला बताया है।⁶⁴ उसने कालिंजर, ग्वालियर, रणथम्भोर के वीर राजपूतों से संघर्ष किया, जिन्होंने गुलामों का शासन स्वीकार न किया। उसने बंगाल जीता तथा 1221 ई. में मंगोलों के नेता चंगेज खां के आक्रमण को टाला। उसने भारत के सांस्कृतिक मान बिंदुओं पर आक्रमण किये। झेलसा के प्राचीन मंदिर, उज्जैन के विश्वविख्यात महाकाल के मंदिर को ध्वंसित किया।⁶⁵ उज्जैन से सम्राट विक्रमादित्य की विशाल भव्य

मूर्ति को तोड़कर दिल्ली ले आया।⁶⁶ अपनी सलाह के लिए स्थापित परामर्श समिति 'मुस्तफा अलैहिस्लाम' की स्थापना की जिसने भारत में 'हिन्दुओं को अपना सबसे बड़ा दुश्मन' बताया।

गयासुद्दीन बलबन ने हिन्दुओं पर अत्याचार करने में कोई कसर न रखी। साथ ही उसका हिन्दू प्रतिरोध भी होता रहा। दिल्ली के आसपास के मेवाती, दोआब के हिन्दुओं तथा कटेहर का अपने क्रूर अत्याचारों तथा दमन का केन्द्र बनाया, क्योंकि उन्होंने उसका शासन चलाना कठिन कर दिया था। मंगोलों के प्रति उसकी उत्तर-पश्चिम की सुरक्षा नीति एक विदेशी शासक की दूसरे विदेशी आक्रमण से सुरक्षा नीति थी। संक्षेप में 1206-1290 ई. के लगभग 85 वर्ष के लम्बे काल में गुलाम वंश के शासन की कहानी, भारतीयों पर निरन्तर अत्याचारों, क्रूर हत्याओं तथा लूटमार की कहानी है। शासन में नागरिकता का अधिकार केवल उन्हें ही प्राप्त था जो इस्लाम के सिद्धान्तों के आधार पर अपना जीवन व्यतीत करते थे।⁶⁷ यहां तक कि भारतीय मुसलमानों को जिन्हें धर्मान्तरण करना पड़ा था, उन्हें भी समान अधिकार प्राप्त न थे। अतः भारत भूमि पर परकीयों का शासन था⁶⁸ जिन्हें भारतीयों से कोई लगाव न था।

दूसरा राजवंश खिलजी वंश का था जिसका दिल्ली के तख्त पर 1290-1320 ई. अर्थात् कुल 30 वर्ष शासन रहा। इसका प्रथम शासक जलालुद्दीन खिलजी था जो राजनैतिक षडयन्त्र से शासक बना था। इतिहासकार रतिभानु सिंह नाहर के शब्दों में वह "मुसलमानों के लिए महान, उदार तथा हिन्दुओं के लिए रंगा सियार था।"⁶⁹ 1291 ई. में उसने रणथम्भोर के राजा हमीर पर आक्रमण किया पर किला जीतने में असफल रहा। उसके ही काल में मंगोल दिल्ली तक बढ़ आये तथा दिल्ली के उस स्थान पर बस गये जिसे आज भी मुगलपुरा कहा जाता है।

अलाउद्दीन खिलजी इस वंश का कुटिल, क्रूर तथा निरंकुश शासक था जो

अपने चाचा जलालुद्दीन का वध करके शासक बना था। परन्तु इस काल में भारत के उत्तर तथा दक्षिण भारत में हिन्दू शासकों का ही प्रभुत्व रहा। उसने अपनी राजनैतिक महत्वाकांक्षा पूरा करने के लिए उत्तरी तथा दक्षिणी भारतीय शासकों पर आक्रमण किये। गुजरात को लूटा, सोमनाथ के मंदिर का ध्वंस किया, रणथम्भौर के दुर्ग पर आक्रमण किया तथा उसे छल-कपट से जीता। चित्तौड़ पर आक्रमण किया। इस आक्रमण का हेतु वहां की रानी पद्मावती को प्राप्त करना था। इस युद्ध में हजारों राजपूतों का बलिदान हुआ। रानी पद्मावती ने अनेक महिलाओं के साथ जौहर किया। प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो के अनुसार एक दिन में 30,000 हिन्दू मारे गये। अलाउद्दीन ने धार तथा चन्देरी पर भी आक्रमण किया। सिवाना तथा जालौर पर भी कब्जा किया। इसी भांति उसने दक्षिण भारत को जीतने तथा वहां से अपार धन प्राप्ति के लिए योजना बनाई। उसने क्रमशः देवगिरि, वारंगल तथा द्वारसमुद्र पर आक्रमण किये। अतुल धन प्राप्त किया, पर सैंकड़ों मंदिरों को ध्वंस करना न भूला। परन्तु परिस्थितिवश उसने दक्षिण भारत के प्रदेशों को दिल्ली राज्य में नहीं मिलाया। धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में वह अपनी धर्मान्धता तथा रुढ़िवादिता में किसी से पीछे न था। वह स्वयं विश्व में एक नये धर्म की स्थापना तथा दूसरा विश्व विजेता बनना चाहता था।⁷⁰ परन्तु उसको दोनो इरादे छोड़ने पड़े। हिन्दुओं के प्रति उसकी नीति असहिष्णुता की थी।⁷¹ अलाउद्दीन की क्रूरता तथा अत्याचारों की पराकाष्ठा के पश्चात् भी उत्तर तथा दक्षिण भारत के हिन्दू शासक उसका कटु विरोध करते रहे। भारत का अधिकतर भाग खिलजी शासक से मुक्त रहा।

खिलजी वंश के काल की सबसे बड़ी घटना अलाउद्दीन के कमजोर उत्तराधिकारियों के काल में हुई और यह थी 1320 ई. में कुछ महीनों के लिए पुनः दिल्ली के तख्त पर हिन्दू शासन की स्थापना। इसे प्रायः सभी मुस्लिम इतिहासकारों तथा चाटुकार लेखकों ने छिपाया है। अलाउद्दीन खिलजी ने गुजरात के शासक रायकर्ण पर आक्रमण

करके, रायकर्ण की पुत्री देवलरानी को प्राप्त किया था। उसने जबरदस्ती अपने पुत्र खिज्र खां से उसका विवाह कर इस्लाम धर्म अपनाने को विवश किया था, परन्तु वह अपने इस हिन्दुत्व के अपमान को भूली न थी। इसी भांति गुजरात के एक हिन्दू को जबरदस्ती मुसलमान बनाया था तथा उसे खुसरो खां का नाम दिया गया था। 1320 ई. में दिल्ली में एक महान राज्य क्रांति हुई जिसमें खुसरो खां तथा देवलरानी ने पहले दिल्ली के महल तथा अन्त में अपने हितैषियों की सहायता से दिल्ली तख्त पर अधिकार किया। पुनः हिन्दू साम्राज्य की स्थापना हुई। यह पृथ्वीराज चौहान के शासन के अन्त के पश्चात् पहला अवसर था। पुनः हिन्दू मन्दिरों में पूजा-अर्चना होने लगी। राजमहल में हिन्दू पद्धति से धार्मिक कार्य होने लगे। इससे भारत में राष्ट्रीय स्वाभिमान जागा। इसी भांति दक्षिण भारत में कालान्तर में विजयनगर राज्य का निर्माण हुआ। परन्तु दिल्ली के तख्त पर कुछ महीनों तक ही हिन्दू शासन रहा।⁷²

दिल्ली सल्तनत का तीसरा महत्वपूर्ण राजवंश तुगलक वंश था। इस वंश के प्रमुख शासक मोहम्मद तुगलक तथा फिरोज तुगलक हुए। मोहम्मद अपने पिता का वध करके शासक बना था। वह अत्यन्त महत्वाकांक्षी तथा रक्त पिपासु था। उसकी योजनाएं बड़ी विचित्र तथा काल्पनिक थीं। दोआब में अत्यधिक कर वृद्धि, राजधानी परिवर्तन, तांबे के सिक्के चलाना, खुरासन तथा कराजल पर आक्रमण योजना यह सभी उसके मन की अव्यावहारिक योजनायें थीं जिन्हें कुछ इतिहासकारों ने अपने कुतर्कों द्वारा उसकी बुद्धि की उर्वरता का द्योतक माना है। इन सभी बेतुकी, अविवेकी तथा कुत्सित योजनाओं का कष्ट भारत की अपार हिन्दुओं की जनसंख्या को सहना पड़ा। किसी भी योजना का उद्देश्य राष्ट्रहित या जनकल्याण न था। इन काल्पनिक योजनाओं ने चारों ओर अराजकता तथा भय की स्थिति पैदा कर दी। योजनाएं सभी असफल तथा विनाशकारी सिद्ध हुईं।

फिरोज तुगलक भी कम धर्मान्ध न था। यद्यपि वह एक हिन्दू महिला से जन्मा

था। उसने 1360 ई. में प्रसिद्ध जगन्नाथपुरी मंदिर को लूटा। पवित्र मूर्तियों को समुद्र में फेंक दिया। नगरकोट पर आक्रमण किया। वह भारतीय इतिहास में पहला शासक था जिसके काल में उलेमाओं का प्रभाव स्थापित किया गया। इस काल में बड़ी संख्या में हिन्दुओं को धर्मान्तरण किया तथा इस्लाम धर्म मानने को बाध्य किया। फतूहात-ऐ-फिरोजशाही से हिन्दुओं के प्रति सुल्तान की कठोर तथा दमनकारी नीति की जानकारी मिलती है।⁷³

इसी भांति सैयद (1414-1451 ई.) तथा लोदीवंश (1451-1526 ई.) क्रमशः चौथे और पांचवे वंश रहे। लोदी शासक यद्यपि मूलतः अफगान थे तथा उनकी शासन व्यवस्था तुर्कों से भिन्न थी जो अपेक्षाकृत प्रजातन्त्रवादी तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर आधारित थी। परन्तु हिन्दुओं के प्रति व्यवहार में कोई अन्तर न था। दूसरा लोदी शासक सिकंदरशाह यद्यपि एक हिन्दू माता से उत्पन्न हुआ था, परन्तु वह हिन्दुओं के प्रति अत्याधिक कठोर था। उसके धार्मिक अत्याचारों के अनेक प्रसंग कुरुक्षेत्र, मथुरा, आगरा, चन्देरी आदि के अनेक धार्मिक स्थलों से जुड़े हैं।

दक्षिण में विजयनगर साम्राज्य की स्थापना

दिल्ली सल्तनत के अधिकतर मुस्लिम शासक उत्तरी भारत में उनके प्रबल प्रतिरोध के कारण दक्षिण भारत की ओर ध्यान ही न दे सके। इस ओर दिल्ली में गुलाम वंश की स्थापना के लगभग 190 वर्ष बाद अलाउद्दीन खिलजी दक्षिण भारत की अपार धन सम्पदा से प्रभावित हुआ। उसने अपार धनराशि लूटी तथा अनेक मंदिरों का ध्वंस किया। पर दक्षिण भारत की स्वतन्त्रता बनी रही। मोहम्मद तुगलक के काल में दक्षिण भारत अनेक विद्रोहों का केन्द्र बन गया। इस काल में दक्षिण में विजयनगर साम्राज्य का निर्माण भारत के परम्परागत राष्ट्रीय स्वाभिमान तथा राष्ट्रीय जागरण का एक अविस्मरणीय युग था।⁷⁴ देश-विदेश के सभी इतिहासकारों तथा विद्वानों ने बिना किसी अपवाद के,

इसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। प्रसिद्ध इतिहासकार नीलकंठ शास्त्री ने इसे स्वतन्त्र हिन्दू दक्षिण भारत का अंतिम स्वर्णिम अध्याय माना है। विदेशी यात्री अब्दुर्रज्जाक ने लिखा, “ऐसा राज्य विश्व में न कभी आंखों से देखा और न कभी कानों से सुना। इसके जैसा राज्य समस्त पृथ्वी पर नहीं है।”⁷⁵ इस महान साम्राज्य के निर्माण में सर्वाधिक प्रेरक तथा योगदान स्वामी विद्यारण्य का है जो पम्पानगरी (वर्तमान हैम्पी) के रहने वाले थे, उन्होंने शिक्षा ग्रहण करते समय ही सम्पूर्ण दक्षिण में नवयुवकों में अदम्य उत्साह, राष्ट्रप्रेम, आत्मविश्वास तथा निर्भयता का भाव जगाया तथा धर्म के आधार पर एक सृष्टि साम्राज्य की स्थापना का स्वप्न लिया था। इन्हीं के आशीर्वाद से 1336 ई. में हरीहर तथा बुक्काराय नामक दो भाइयों ने विजयनगर साम्राज्य की स्थापना की थी। विश्व के तत्कालीन यात्रियों – बारबोसा, डिमनगौस, पेइज़ तथा न्यूनिज सभी ने इस साम्राज्य की बड़ी प्रशंसा की है। महाराजा कृष्णदेव इस साम्राज्य का महानतम शासक हुआ। पेइज़ ने उसे एक महान शासक तथा न्यायप्रिय राजा माना है। बाबर ने भी अपने ग्रन्थ बाबरनामा में अपने काल में यह स्वीकार किया कि “काफिरों के राज्य विस्तार एवं सेना की अधिकता की दृष्टि से विजयनगर राज्य है।” वस्तुतः इस शासन काल में भारत के सांस्कृतिक जीवन मूल्यों को प्रत्येक क्षेत्र में पुनः प्रतिष्ठित किया। चहुं ओर विकास हुआ।

विजयनगर साम्राज्य के आज के अवशेषों को देखकर नोबुल पुरस्कार विजेता वी.एस. नायपाल ने लिखा, “हम हिन्दुओं को जीवन में कम से कम हैम्पी (विजयनगर) जाना जरूरी है, जिससे वे स्वयं देखें कि उनकी महान सभ्यता को किसने और कैसे रौंदा।”⁷⁶ महाराजा कृष्णदेव राय का शासनकाल 1509-1530 ई. रहा। इसमें भारत के राष्ट्रीय जीवन में अनुकूल चहुंमुखी विकास हुआ। उसे ‘राजाओं का राजा, भारत के स्वामियों का स्वामी, तीन समुद्रों तथा भूमि का स्वामी’ कहा गया है। उसकी विजयशालिनी सेनाओं ने सम्पूर्ण दक्षिण पर प्रभुत्व स्थापित किया। व्यापार वाणिज्य का अद्भुत विकास

हुआ। यहां के राजपथों पर सभी राष्ट्रों एवं सभी धर्मों के असंख्य नागरिक पूर्ण स्वतन्त्रता और परम आनन्द के साथ इधर-उधर आते-जाते थे। हिन्दू धर्म तथा संस्कृति आधारित राज्य था। ग्रामीण समुदायों तथा ग्राम पंचायतों का विशेष स्थान था, जिसमें सभी जातियों को बिना भेदभाव के स्थान प्राप्त था। सभी को धार्मिक स्वतन्त्रता थी। स्वयं वैष्णव होते हुए भी सभी धर्मों की प्रगति को भी प्रोत्साहित किया। महिलाओं का सम्मान था। विभिन्न त्यौहारों तथा पर्वों को प्रोत्साहन दिया जाता था। राजदरबार में 'अष्ट-दिग्गज' अर्थात् आठ श्रेष्ठ विद्वान थे। अनेक मंदिरों तथा भवनों का निर्माण हुआ। मुख्यतः यह राज्य 1565 ई. तक तालीकोट के संघर्ष तक तेजी से फला फूला। परन्तु वह किसी न किसी रूप में वर्तमान काल तक चलता रहा।

वामपंथी इतिहासकारों का वैशिष्ट्य है⁷⁷ कि उन्होंने यहां भी वर्ग भेद के सिद्धांत को गढ़ डाला। उनके अनुसार विजयनगर राज्य की रचना पिरामिड की भांति थी जिसमें राजा नगर की सबसे ऊंची भूमि पर महलों में रहता था तथा नीचे की ओर सामान्य लोग आर्थिक आधार पर रहते थे।

संक्षेप में दिल्ली सल्तनत का काल (1206-1526 ई.) भारत के इतिहास में 'लड़ाई-मारकाट' अथवा सैनिक राज्य था। अर्सकाइन के अनुसार, "व्यक्ति का शासन था, न कि कानून का।"⁷⁸ वह उत्तरी भारत में निरंतर मुस्लिम शासकों के जिहाद या धार्मिक युद्धों का वर्णन करता है। शासन का स्वरूप मुस्लिम धर्मानुकूल तथा पूर्णतः साम्प्रदायिक था। यह एक मजहबी राज्य था।⁷⁹ बादशाह सीज़र भी था तथा पोप भी परन्तु धार्मिक बातों पर उसका अधिकार कुरान शरीफ के नियमों तक सीमित था।⁸⁰ डा. जदुनाथ सरकार का निष्कर्ष है कि मुस्लिम राज्य का कार्य था, "इस काफ़िरों के देश (दारुल-हरब) पर तब तक जिहाद करना है, जब तक वे इस्लामी राज्य (दारुल इस्लाम) न बन जायें और उस पर विवाद करने वाले, इस्लाम स्वीकार न कर लें।"⁸¹

वर्तमान मुस्लिम इतिहासकारों ने जैसे - मोहम्मद हबीब, आई.एच. कुरेशी ने भारत में मुस्लिम राज्य के समर्थन में अपने कुतर्कों द्वारा मुस्लिम शासन को न्यायोचित बतलाया तथा उसका समर्थन किया। प्रो. ताराचन्द ने भी कुछ इने गिने उदाहरण गिनाकर लीपा पोती करने का प्रयास किया। निःसंदेह इस लम्बे काल में जन समाज की स्थिति अत्यन्त चिंताजनक तथा खराब रही। हिन्दुओं पर जज़िया मोहम्मद बिन कासिम के काल से, दिल्ली सल्तनत के काल में चलता रहा। हिन्दुओं का बड़ी मात्रा में नर संहार तथा अमानुषिक रूप से दमन होता रहा। भारतीय संस्कृति के मान बिन्दुओं पर चारों ओर से प्रहार हुए। यह काल भारत में इस्लामीकरण तथा गुलामीकरण का था, परन्तु यह भी सत्य है कि इसके पश्चात् भी भारत में हिन्दुओं द्वारा सतत विजय तथा संघर्ष होते रहे। भारत विश्व के अन्य देशों की भांति दारुल हरब से दारुल इस्लाम का देश न बन सका। राष्ट्रीय जीवन की मूल भावना नष्ट न हो सकी, यद्यपि हिन्दुओं की आस्थाओं, मान्यताओं अथवा मान बिंदुओं को नष्ट करने की कोई कसर न छोड़ी गई।

मुगल शासक तथा राष्ट्रीय भाव

कुछ मुस्लिम तथा वामपंथी इतिहासकारों ने भारत में मुगल शासकों के काल को भारत का 'शानदार युग' कहा है।⁸² यह काल प्रमुखतः 1526-1707 ई. तक रहा। यद्यपि इसके बाद ग्यारह अन्य निर्बल उत्तराधिकारी किसी न किसी रूप में 1857 ई. तक घसीटते रहे। इसी काल के दौरान 18वीं शताब्दी में, विदेशी नादिरशाह तथा अहमद शाह अब्दाली ने भारत में भीषण आक्रमण किये तथा मुगल शासकों के काल में लाखों व्यक्तियों का नर-संहार तथा भयंकर लूटमार चलती रही।

बाबर की धर्मान्धता तथा बहशीपन

1526-1707 ई. के काल में कुल छः मुगल शासक हुए⁸³, परन्तु ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इनमें से किसी भी शासक ने इस राष्ट्र को

न मातृभूमि ही माना और न ही यहां के जनजीवन से एकरस होने का क्षणिक भी प्रयत्न किया। इसे भली प्रकार समझने के लिए इन मुगल बादशाहों के चरित्र तथा जीवन को समझना आवश्यक होगा।

राजनैतिक दृष्टि से यदि अवलोकन तथा विश्लेषण करें तो भारत में पहला मुगल शासक बाबर था, जो एक लुटेरा तथा धर्मान्ध था। वह मध्य एशिया के समरकंद राज्य की एक बहुत छोटी सी जागीर फरगना का शासक था। उसका पिता उमर शेख मिर्जा तैमूरशाह तथा उसकी माता कुतलुक निगार खानम मंगोल की वंशज थी। पिता में विरासत में उसे शराब की लत तथा अपने को तैमूर वंश का कहलाने का हक मिला था। उसने कभी भी अपने को मुगल या मंगोल नहीं माना, बल्कि मुगल कहने से वह चिढ़ता था। उसने अपने गुरु को, शेख मजीद बेग को 'लम्पट तथा अत्याधिक गुलाम रखने वाला'⁸⁴ बतलाया। दूसरा शिक्षक कुलीबेग था जिसके बारे में बाबर ने लिखा कि वह, "न नमाज पढ़ता, न रोज़ा रखता, बड़ा कठोर, आततायी व पूरा काफिर था।"⁸⁵ तीसरा शिक्षक पीर अली दोस्तगाई और वैसलागरी थे जो "बेहद हंसोड - ठिठोलिया और बदकारी में बेबाक था।"⁸⁶ बाबर अपने गुरुओं के धार्मिक स्वभाव से बड़ा नाखुश था। परन्तु उसने भी उनके कई अवगुणों को अपना लिया था। इसका एक उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा। जब बाबर केवल 16-17 वर्ष की आयु का था, तब उसे एक बाबुरी नामक तरुण से प्रेम उन्माद हो गया था तब इस उन्माद में उसने आशिकी और माशूकी पर कई शेर लिखे थे। परन्तु जब बाबर ने उस तरुण को आगरा की गली में देखा तो बाबर ने स्वयं लिखा कि, "वह लड़का मिल गया जो हमारी सोहबत में रह चुका था। हम उससे आंखें नहीं मिला पाये क्योंकि हम अब बादशाह हो चुके थे।"⁸⁷ अतः बाबर के भारत आने से पूर्व के ऐय्याशी जीवन का सरलता से मूल्यांकन किया जा सकता है।

निकम्मे कबूतरबाज बाबर के पिता उमर शेख मिर्जा ने अपनी फरगना जागीर

को बढ़ाने का प्रयत्न किया पर पूर्णतः असफल रहा। पुत्र बाबर ने तीन बार समरकन्द को जीतने की असफल कोशिश की, बल्कि वह फरगना जागीर से भी हाथ धो बैठा। अतः कुछ काल बाद वह दीन-हीन अवस्था में, अपनी माता के साथ, केवल दो टैन्टों के साथ खुरासन की ओर भागा। उसने शीघ्र ही छलकपट से 1504 ई. में काबुल पर अधिकार कर लिया और तभी से उसे अपना स्थायी निवास बनाया।

बाबर ने अपनी आत्मकथा 'बाबरनामा' में अपने जीवन के कुल 48 वर्षों 10 महीनों में से बीच-बीच स्थान छोड़कर कुल 18 वर्षों का वर्णन किया है। बाबर का भारत पर आक्रमण, भारत की राजनीतिक कमजोरी नहीं बल्कि बाबर की दयनीय दशा थी। वह भारत की अपार धन सम्पत्ति की इच्छा तथा भारत को दारुल हरब से दारुल इस्लाम करने की इच्छा से इस ओर प्रवृत्त हुआ। उसने महमूद गजनी तथा मोहम्मद गोरी को अपना पूर्वज बतलाया तथा भारत को तैमूरिया वंश का क्षेत्र बतलाया। बाबर ने 1519-1526 ई. तक भारत पर पांच आक्रमण किये। सभी आक्रमण उसकी धर्मान्धता, धार्मिक कट्टरता तथा इस्लामी जिहादी जुनून से ओत-प्रोत थे। पहला आक्रमण बाजौर के सीधे सादे वनवासियों पर किया। इसमें 3000 से अधिक व्यक्ति मारे गये। यह आक्रमण इसलिए किया गया क्योंकि बाजौर के लोग विद्रोही तथा मुसलमानों के शत्रु थे तथा उनमें काफिरों की प्रथायें प्रचलित थीं।⁸⁸ उसने एक पुश्ते पर आदमियों के सिरों का एक स्तम्भ बनाया। कुछ सिर बदख्शा, क्रून्दज व बल्ख भेजे। यही अत्याचार उसने भेरा पर आक्रमण करके भी किये। परन्तु यहां उसने सिक्खू के पुत्र दीव को व एक अन्य को भारी धन वसूल करके छोड़ दिया। गुरु नानक देव ने बाबर के तीसरे, चौथे व पांचवे आक्रमणों का आखों देखा वर्णन किया है। उनके ये वर्णन सैयदपुर, लाहौर तथा पानीपत की बाद की घटनाओं से जुड़े हैं। उन्होंने हिन्दू की हालत के बारे में लिखा, "हिन्दू कहूं तो मारा जाऊं, मुसलमान में नाहिं।" उन्होंने बाबर की कटु आलोचना करते हुए लिखा -

कलि काली रोअ कसाई धर्म परणं कर डड़रिया।

कूड़ अमानस सच चन्द्रमा दी सै नाही कह चढ़िआ।।

जब बाबर ने स्यालकोट जीत लिया तथा आगे बढ़ा। गुरु नानक ने विजित क्षेत्रों में उसके अत्याचारों का वर्णन करते हुए नर संहार, लूटमार, महिलाओं की सरे आम बेइज्जती का वर्णन किया है, उन्होंने लिखा -

खुरासन खसमाना कीआ हिन्दुस्थान डराइआ।

आये दोसु न देई करता जमु करि मुगलु चढ़ाइया।

एती मार पई करलाणे तैं की दरदु न आइया।

करता तू समना का सोई

जे सकता सकते कउ मारे ता मनिर रोसु न हाई

सकता सीह मारे पै बगै खसमै सा पुरसाई।

रतन बिगार्ड विगौए कुती मुइया सार न काई।

आये जोड़ि बिछोड़े आये वेरतु तेरी बड़ि आई।

अनुवाद के रूप में उसे इस भांति समझा जा सकता है - “हे विधाता, तूने खुरासन को तो संरक्षित कर लिया था, परन्तु हिन्दुस्थान को आतंकित कर डाला। तू इस काण्ड का कर्ता है, पर स्वयं को दोष नहीं देता। तूने मुगल बाबर को साक्षात् यमराज बनाकर इस देश पर चढ़ा दिया। उस यमराज बने बाबर ने हिन्दुस्थानियों को इतनी निर्दयता से मारा कि वे त्राहि-त्राहि कर उठे, इतना होने पर भी क्या तुझे तनिक सा दर्द भी न हुआ? तू तो सबका एक ही कर्ता है न। यदि एक सशक्त किसी अन्य शक्तिशाली को मार दे तो मन में रोष नहीं होता, परन्तु जब बलवान शेर, गायों के बाड़े पर आ धमके तो लोग स्वामी से ही पूछते हैं कि संकट वेला तू कहां चला गया था? हाय, रत्नों (भारतीयों) को विजाड पर इनकी दुर्दशा कर दी इन कुत्तों ने। इतनी लोग मार दिए कि इनकी सार नहीं। हे विध

ताता! तू स्वयं जोड़ता है और तू स्वयं ही बिछोड़ता है। अब तू स्वयं देखेगा कि तेरी बडीमाई क्या करती फिरती है।

बाबर ने भारत के मुख्य क्षेत्र में कुल चार युद्ध किये। दो हिन्दू शासकों से तथा दो मुस्लिम शासकों से। क्रमशः उसके दो युद्ध धार्मिक थे तथा दो राज्य विस्तार के लिये। दो हिन्दू शासकों में उसका टकराव मेवाड़ के राणा संग्रामसिंह तथा चन्देरी के दुर्ग के किलेदार से था। बाबर ने मेवाड़ के राणा संग्रामसिंह (सांगा) से स्वयं युद्ध का वर्णन किया है। इसने उसे ‘धर्मयुद्ध’ बतलाया⁸⁸ तथा इसके लिये शराब छोड़ने का द्वांग रचा। स्थानीय मुसलमानों को अपनी ओर मिलाने के लिए उनसे तमगा कर हटा दिया। स्वयं बाबर ने बाबरनामा में राणा सांगा को उत्तर भारत का शक्तिशाली शासक माना है।⁸⁹ राणा सांगा पहले इब्राहिम लोदी को हरा चुका था तथा वह भारत के इतिहास में पहला शासक था जिसने विदेशी आक्रमणकारियों को पराभूत करने के लिये विशाल स्तर पर सामूहिक प्रयत्न तथा नेतृत्व किया था। सम्भवतः यदि उसका योग्य उत्तराधिकारी होता तो मुगलवंश का नाम ही भारत के इतिहास में न होता। वह चित्तौड़ की बप्पा रावल तथा महाराजा कुम्भा की परम्परा से था। कर्नल टाड ने उसके शासन को समृद्धि की चरम सीमा तक पहुंचने वाला बताया है।⁹⁰ उसने 16वीं शताब्दी में भारत में एक ऐसा राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया जो भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं पर आधारित हो। प्रो. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव⁹¹ के अनुसार राणा सांगा की पराजय के पश्चात् भी बाबर की हिम्मत राजस्थान पर आक्रमण करने या बहादुर राजपूतों को नाराज करने की न हुई।

वास्तव में राणा सांगा की वीरता एवं शौर्य से उसकी इतनी शक्ति बढ़ गई थी कि मालवा, गुजरात तथा दिल्ली के सुल्तानों में से कोई अकेला उसे पराजित न कर सकता था। उसने अपने जीवन में अनेक युद्धों में भाग लिया तथा प्रायः सभी में सफलता

प्राप्त की थी। संक्षेप में उसका राज्य उत्तर में प्याना के निकट पीला खाल तक, पूर्व में सिंध नदी, दक्षिण में मालवा तथा पश्चिम में लम्बी चौड़ी पहाड़ियों तक फैला था। कर्नल टाड के अनुसार⁹² राणा सांगा के पास 80,000 घोड़े तथा 500 युद्ध योग्य हाथी थे। साथ में सात राजा, नौ राव तथा एक सौ चार मुख्य सरदार थे, जिन्हें रावल या रावत की उपाधियाँ प्राप्त थी। साथ में मारवाड़ तथा अम्बेर उसकी प्रभुसत्ता को मानते थे। इसके अलावा ग्वालियर, अजमेर, सीकरी, रायसीन, कालपी, चन्देरी, बूंदी, गागरीन, रामपुरा तथा आबू के राव थे।

बाबर के लिए इस समय विचित्र स्थिति थी। इतिहासकार लेनपूल के अनुसार⁹³ बाबर के लिए एक ऊँचे स्तर के व्यक्ति से लड़ने का भारत में पहला अवसर था। राणा सांगा ने खनुवा के निकट एक पहाड़ी पर अपने खेमे गाड़ दिये थे। बाबर ने बड़े नाटकीय ढंग से मदिरा त्यागने का ढोंग किया। कुरान पर हाथ रखकर अपने सैनिकों से प्रतिज्ञा कराई कि वे युद्ध होने तक पत्नी का त्याग तथा अन्त तक लड़ेंगे। 16 मार्च 1527 ई. को यह युद्ध हुआ। यह युद्ध दस घण्टे चला। बाबर युद्ध में विजय की ओर से पूर्ण निराश हो चुका था। वस्तुतः यह भारतीय इतिहास के एक अत्यन्त स्मरणीय युद्धों में से एक था। प्रो. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव का निष्कर्ष⁹⁴ है कि शायद ही कोई दूसरा घमासान युद्ध हुआ हो जिसका निर्णय अंत तक लटका रहा हो। बाबर के तोपखाने ने युद्ध को निर्णायक मोड़ दिया। राणा सांगा बुरी तरह घायल हुआ, जहाँ उसे सुरक्षित स्थान पर ले जाया गया। जनवरी 1528 ई. में उसकी मृत्यु हुई। हसन खां मेवाती भी इस युद्ध में मारा गया।

बाबर ने इस युद्ध को 'मुहम्मद साहब के धर्म के शत्रु दुष्ट काफिरों'⁹⁵ से संघर्ष बतलाया। बाबर के विजयपत्र में इसे बाबर द्वारा 'मूर्तियों की नींव का खंडन करने वाला' बताया गया। बाबर यद्यपि कोई पैगम्बर, खलीफा या धर्म सन्त न था, परन्तु इस संघर्ष के बाद उसने 'गाज़ी' की उपाधि धारण की। उसके विजय पत्र के नीचे यह रूबाई लिखी

गई।⁹⁶

“इस्लाम के लिए मैं वनों में चक्कर लगाता रहा
काफिरों तथा हिन्दुओं से युद्ध की तैयारी करता रहा
मैंने शहीदों के समान मरने का निश्चय किया
ईश्वर का धन्यवाद है मैं गाज़ी हो गया।”

महाराजा पृथ्वीराज चौहान के पश्चात् यह उत्तर भारत में महानतम संघर्ष था। इसके परिणामस्वरूप बाबर का केन्द्र काबुल के बजाय भारत बन गया। बाबर ने विजयोपरांत 'काफिरों' के कटे सिरों का एक स्तम्भ बनवाया।⁹⁷

बाबर का हिन्दुओं के साथ दूसरा संघर्ष चन्देरी के दुर्ग पर विजय थी जो उसने 1528 ई. में की। इस सफलता पर भी बाबर ने लिखा⁹⁸, कि हमने वहाँ के काफिरों का संहार कर दिया, जो स्थान वर्षों से दारुल-हरब बना हुआ था, बाबर का बहशीपन यहीं समाप्त न हुआ। अनेक भारतीय संस्कृति के प्रतीक हिन्दु मन्दिरों को ध्वंसित किया गया। उसके एक अधिकारी ने सम्भल में एक मंदिर गिराकर मस्जिद का निर्माण किया। उसके शेख जैना ने चन्देरी के अनेक मंदिरों को नष्ट किया। इतना ही नहीं उसने भारतीय सांस्कृतिक जीवन के मान बिन्दु रामजन्मभूमि पर भी बकी द्वारा उक्त स्थान पर मस्जिद का निर्माण करवाया। इसी भाँति ग्वालियर के निकट उरवा में अनेक जैन मूर्तियों को नष्ट किया।

यह उल्लेखनीय है कि कुछ छद्मवेशी सेकुलरवादी इतिहासकारों⁹⁹ ने उपरोक्त तथ्यों के बाद भी बाबर को 'सेकुलरवादी बादशाह' सिद्ध करने में अपनी उर्जा को व्यर्थ किया। उनका मुख्य आधार भूपाल से प्राप्त एक नकली बाबर की अंतिम इच्छा की प्रति है। इसके बारे में विश्व प्रसिद्ध इतिहासकार मिसेज ऐ.एस. बैवरिज ने¹⁰⁰ इसे पूर्णतः

जालसाजीपूर्ण विवरण बतलाया तथा इसे विरोध में 17 तर्क दिये हैं। बानगी के रूप में इसके आधार पर कहा गया कि बाबर हिन्दू तथा मुसलमानों को समान समझता था। उसने हिन्दू मंदिरों को नष्ट नहीं किया बल्कि हिन्दू मंदिरों को दान दिये। बाबर ने अपने दो पुत्रों का विवाह हिन्दू कन्याओं से किया। उसने अपने पुत्र हिमायूँ को उदारता की नीति अपनाने को कहा। कौन मानेगा इन चाण्डूखाने की, बेसिरपैर की गप्पों को। सम्भवतः इतिहास के प्रति अज्ञानी तथा उससे अपरिचित ही ऐसे जालसाजी पूर्ण वर्णन को मानेंगे।

इसके साथ यह भी हास्यापद है कि कुछ वामपंथी विद्वानों ने बाबर को एक महान सांस्कृतिक विरासत का देयता माना है।¹⁰¹ सम्भवतः यह उनकी पुरानी सोवियत साम्राज्य की मित्रता या मीर बकी के प्रति प्रेम है जो ताशकंद का रहने वाला था जहां कम्युनिस्ट पार्टी आफ इण्डिया का जन्म (1920 ई.) में हुआ था। उपरोक्त आभास इसी से होता है कि 1973 ई. में जब इण्डो-सोवियत प्रतिनिधि-मण्डल भारत आया तो उन सभी ने बाबर के तमगे लगाये हुए थे तथा जिनका आदान-प्रदान भारतीय कम्युनिस्टों ने किया। इतना ही नहीं 1990 ई. में तत्कालीन भारत के एक सेकुलरवादी प्रधानमन्त्री विश्वनाथ प्रसाद सिंह ने अपनी ताशकन्द यात्रा में बाबर के मधुर सम्बन्धों को याद किया। यह भी कितना विचित्र है कि एक अंग्रेज ब्रिटिश अधिकारी ने¹⁰² अपने शोधग्रन्थ में बाबर को एक साम्राज्य निर्माता बतलाया जबकि भारत के उत्तरी भाग में बाबर का राज्य एक छोटी सी भौगोलिक पट्टी के अलावा कुछ था ही नहीं। संक्षेप में बाबर को भारत भूमि से किंचित भी लगाव न था। भारतीयों के लिये वह एक क्रूर लुटेरा था। यहां तक कि भारतीय मुसलमान भी उससे घृणा करते थे।¹⁰³

कामरान तथा राती घाटी का युद्ध

बाबर के पश्चात् हिमायुँ दिल्ली का शासक बना। वह केवल 1530-1540 ई. तथा 1556-1556 ई. के कुछ महीनों तक रहा। वह सभी मुगल शासकों में कमजोर,

विलासी तथा अफीम का व्यसनी था। उसकी माता माहम बेगम खुरासन के एक सन्त के वंश की थी तथा शिया मत को मानती थी। हिमायुँ की बोलचाल की भाषा तुर्की थी।¹⁰⁴ वह अपने पिता का चहेता था परन्तु बाबर उसके व्यवहार से दुखी रहता था। उदाहरणतः 1527 ई. में जब हिमायुँ ने बख्शा जाते हुए दिल्ली के खजाने को लूटा था।¹⁰⁵ अपने जीवन काल में उसने कुछ गिने चुने संघर्ष किये परन्तु उनमें भी उसे सफलता न मिली थी। चौसा तथा कन्नौज की लड़ाईयों में वह अफगान शेरखां से पराजित हुआ था। गुजरात के बहादुरशाह को भी वह पराजित न कर सका था। यदि वह छोटी-मोटी कोई सफलता भी पाता तब उस खुशी में वह जश्न, दावतें तथा विलासिता में डूब जाता था।

भारतीय जन समाज ने उसे स्वीकार न किया, न ही उसके भाईयों को। हिमायुँ जीवन भर लुढ़कता रहा और उसकी मौत भी सीढ़ियों से लुढ़क कर हुई थी। हिमायुँ का यदि कोई वैशिष्ट्य था, वह परिस्थितियों से पलायन था। उसने जनहित कार्य के नाम से केवल एक कार्य किया, उसने दिल्ली में दीन-ए-पन्नाह का निर्माण किया जिसका अर्थ उसने 'धर्म की रक्षा करने वाला' बताया। बाबर की तरह भारतीय जनता उसे एक विदेशी आक्रमणकारी शासक समझती थी जिसने कभी भी भारतीय जनता के प्रति कोई सहानुभूति न दिखाई।

परन्तु यह महत्वपूर्ण है कि भारत के लोग खनुवा में बाबर द्वारा पराजय को न भूले थे। हिमायुँ तो स्वयं भगोड़ा था। परन्तु राजस्थान के हिन्दु युवाओं ने उसका बदला हिमायुँ के छोटे भाई कामरान से लेने की योजना बनाई। कामरान, बाबर का योग्यतम पुत्र था जो दिल्ली का शासक बनना चाहता था। इस प्रसंग में राती घाटी का युद्ध¹⁰⁶ भारतीय इतिहास की एक अमर गाथा है। उल्लेखनीय है कि तात्कालीन चाटुकार मुस्लिम इतिहासकारों ने इसका उल्लेख नहीं किया। बल्कि इसे जानबूझकर छिपाया। यह युद्ध 26 अक्टूबर 1634 ई. को बीकानेर की भूमि पर हुआ। यह युद्ध हिमायुँ के भाई कामरान

के साथ हुआ। इसका वर्णन तत्कालीन लेखक बीटू सज्जन ने 1535 ई. में अपनी पुस्तक 'छन्दराय जैतसी' में किया है। बाद में 'वीर विनोद' तथा राजस्थान के इतिहासकारों ने भी इसका वर्णन किया है। इस युद्ध में कामरान की सेना के साथ घमासान युद्ध हुआ। बीकानेर के जैतसी ने राजस्थान के सभी राजाओं का सहयोग लिया। यह युद्ध भैंसों तथा बैलों के सींगों पर मशालें बांधकर बीकानेर के निकट बीहड़ जंगलों में लड़ा गया। कामरान की सेनाओं को घेरकर अचानक रात्रि में आक्रमण किया। इस युद्ध में कामरान की सेना की बड़ी क्षति हुई। कामरान भाग गया, परन्तु उसका शिरत्राण वहीं गिर पड़ा। संक्षेप में इस ढंग से भारतीयों ने मुगलों के प्रति अपना रोष प्रकट किया। कामरान ने भी दिल्ली के सिंहासन पर बैठने का विचार सर्वदा के लिये छोड़ दिया।

सम्राट अकबर तथा हेमू की राष्ट्रभक्ति

मुगलवंश का तीसरा शासक अकबर था जिसने 1556-1605 ई. तक अर्थात् लगभग पचास वर्ष राज्य किया। वह भी पहले दो शासकों की भांति विदेशी था। उसकी रगों में भारतीय रक्त की एक बूंद भी न थी।¹⁰⁷ वह अफीम मिली शराब का व्यसनी था। वह उसके नशे में धुत्त हो जाता था।¹⁰⁸ उसमें महिला विषयक सभी लतें थी। अबुल फजल के अनुसार उसके हरम में लगभग 3000 महिलायें थी।¹⁰⁹

सम्राट अकबर का जीवन दर्शन तथा दैनिक क्रियाकलाप एक विदेशी साम्राज्यवादी तथा कट्टर मुसलमान के समान थे। उसने प्रारम्भ से ही भारत में अपना राजनीतिक एवं मजहबी प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न किया। अकबर के राज्य विस्तार की भावना तैमूरिया वंश परम्परा के अनुकूल थी जो नृशंसता, क्रूरता तथा दमन से पूर्ण थी। उसे छलकपट से दूसरे राज्य को जीत लेने में जरा भी हिचक न थी। विशेषकर उसके हेमू, महारानी दुर्गावती तथा महाराणा प्रताप से संघर्ष, सम्राट अकबर के राष्ट्रीय चरित्र की क्षुद्रता को दर्शाते हैं।

सम्राट अकबर का पहला प्रमुख टकराव हेमू से हुआ था जो एक साधारण नागरिक से उठकर अपनी योग्यता के आधार पर ऊंचे पद पर पहुँचा था। आदिलशाह के काल में वह एक विशाल सेना का सेनापति बन गया था। डॉ. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव के अनुसार उसने अपने जीवन में 24 लड़ाईयाँ लड़ी थीं जिसमें उसने 22 युद्धों में सफलता प्राप्त की थी।¹¹⁰ अक्टूबर 1556 ई. में वह दिल्ली का सम्राट घोषित किया गया था। उसने 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की थी। वह दिल्ली के पठानों तथा मुगलों के काल में पहला हिन्दू शासक था जो दिल्ली के तख्त पर अपने अधिकार प्राप्त कर शासक बना था, यद्यपि देवलरानी तथा खुसरो खाँ भी शासक रहे थे।

जिस समय 27 जनवरी 1556 ई. को हिमायूँ की शाही पुस्तकालय की सीढ़ियों से गिरकर मृत्यु हो गई थी, इस समय अकबर पंजाब के गुरुदासपुर जिले के कलानौर नामक स्थान पर था। उसके संरक्षक बैरम खाँ ने अकबर को मुगल सम्राट घोषित कर दिया। हिमायूँ की मृत्यु के बाद ही हेमू ने दिल्ली और आगरा पर अधिकार कर, सम्पूर्ण खजाने को अपने अधिकार में कर दिल्ली की ओर कूच किया। तत्कालीन दिल्ली के मुगल गवर्नर तारदीबेग ने 7 अक्टूबर, 1556 ई. को कुतुबमीनार से 5 मील दूर तुगलकाबाद में सामना किया, परन्तु वह हेमू से बुरी तरह पराजित हुआ। हेमू से भयभीत होकर सम्भल का मुगल शासक अली कुली खाँ भी भाग गया। हेमू ने 'विक्रमादित्य' की उपाधि प्राप्त की तथा अपने सिक्के चलाये।

निःसन्देह यह भारतीय इतिहास का स्वर्ण दिवस था, जब एक विदेशी आक्रांता द्वारा स्थापित, परकीय सत्ता को उखाड़कर भारत में पुनः स्वकीय शासन स्थापित किया गया। एक इतिहासकार के अनुसार, "350 वर्षों (1206-1556 ई.) के विदेशी शासन को देश से उखाड़ फेंकने और दिल्ली में स्वदेशी शासन को पुनः स्थापित करके हेमू के साहसपूर्ण प्रयत्न की जितनी प्रशंसा की जाये, थोड़ी है।"¹¹¹

यहां पर क्षणिक रुककर यह विचारणीय अवश्य है कि हेमू की इस महान राष्ट्रभक्ति तथा सफलता को यूरोपीयन इतिहासकारों, विशेषकर निष्पक्षता की दुहाई देने वाला ब्रिटिश प्रशासक इतिहासकारों ने देश की स्वतन्त्रता के लिए हेमू के अदम्य उत्साह तथा साहस की प्रशंसा क्यों नहीं की तथा अकबर जो स्वयं विदेशी था, उसकी वकालत क्यों की? वस्तुतः “यह हेमू का न्यायोचित अधिकार था तथा सर्वोत्कृष्ट कर्तव्य भी।”¹¹² सही बात यह है कि स्वयं ब्रिटिश भी विदेशी घुसपैठिये थे। इसलिए वे जानबूझकर चुप रहे। अतः संक्षेप में कोई निष्पक्ष व्यक्ति इसके लिए हेमू की प्रशंसा तथा अद्भुत साहस की सराहना किये बिना नहीं रह सकता। यह तो हेमू के गौरवमय राष्ट्रीय चरित्र का उज्ज्वल प्रमाण है।

हेमू के निरन्तर सफलताओं से पंजाब में अकबर तथा उसका संरक्षक बैरम खां परेशान हो गए। एक विचार ऐसा भी हुआ कि काबुल चला जाये, परन्तु बैरम खां ने दिल्ली की ओर बढ़ने का निश्चय किया। सरहिन्द में आगरा, दिल्ली और सम्भल के भगोडे गवर्नर अकबर से आ मिले थे। उन्होंने भी काबुल जाने की सलाह दी थी। सेना में विश्वास तथा दिल्ली जाने की इच्छा को बनाये रखने के लिए बैरम खां ने दिल्ली के गवर्नर तारदी बेग को तलवार से मार दिया गया।

आखिर 5 नवम्बर 1556 ई. को दोनों सेनाओं का संघर्ष पानीपत के मैदान में हुआ। हेमचन्द्र विक्रमादित्य के आंख में तीर लग जाने से समस्त युद्ध का पासा पलट गया। हेमचन्द्र के हाथी के हौदे से गिरते ही अनेक मुगल घुड़सवारों ने उसे घेर लिया। उसे बेहोशी में ही अकबर के पास ले जाया गया। अकबर पानीपत में तीन कोस की दूरी पर सुरक्षित बैठा था। बैरम खां ने अकबर से हेमचन्द्र के सिर को तलवार से छूने को कहा ताकि ‘काफिर’ को मारने पर अकबर को गाज़ी की उपाधि मिल सके। बाद में बैरम खां ने स्वयं ही हेमचन्द्र का सिर काट दिया। इसके बाद क्रूरता तथा नृशंसता का ताण्डव

प्रदर्शन हुआ।

आगरा पर कब्जा कर लिया गया। बाबर के काल की भांति कत्ल आम किया गया। काफिरों के सिरों का एक स्तम्भ बनाया गया। हेमचन्द्र के पिता 80 वर्षीय सन्त पूरन दास को पकड़ कर मुसलमान बनने को कहा गया, न मानने पर उसे मौत के घाट उतार दिया। हेमचन्द्र का सिर अफगानों को दिखलाने के लिए काबुल भेजा गया तथा शेष धड़ दिल्ली के पुराने किले पर जहां हेमचन्द्र का राज्याभिषेक हुआ था, लटका दिया गया। क्या अकबर के इन कुकृत्यों से उसे भारतीय राष्ट्रीयता का पोषक अथवा महान कहा जा सकता है?

दुर्गावती जब रण में निकली

सम्राट अकबर की गोंडवाना विजय (1564 ई.) उसकी साम्राज्यवादी लिप्सा¹¹³ तथा क्षुद्र स्वार्थ भावना का द्योतक है। अकबर के विश्वासपात्र अबुल फजल ने भी इसे अकबर की अदूरदर्शिता माना है। इतिहासकारों ने अकबर के इस आक्रमण को ‘अकारण’ माना है।¹¹⁴ क्या वास्तव में यह आक्रमण अतिक्रमण के अलावा कुछ न था?¹¹⁵ विद्वानों ने रानी दुर्गावती पर आक्रमण को ‘भारत के इतिहास का सबसे दुःखान्त नाटक’ माना है।¹¹⁶ इससे पूर्व दिल्ली के किसी शासक ने गोंडवाना पर आक्रमण न किया था।

रानी दुर्गावती समस्त मध्यकालीन भारतीय इतिहास में सर्वश्रेष्ठ योद्धा, न्यायप्रिय शासिका तथा जनप्रिय मानी जाती है। तत्कालीन बिशप ऐयरे चैटरसन ने अपनी पुस्तक ‘द स्टोरी आफ गोंडवाना’ में उसकी अत्याधिक प्रशंसा की है। वह गोंडवाना के प्रसिद्ध शासक संग्राम सिंह के पुत्र दलपत की वीर पत्नी थी। वह महोबा के चन्देल वंश के शासक की पुत्री थी। विवाह के चार वर्ष दलपत की मृत्यु हो गई थी तथा उसका पुत्र वीर नारायण केवल तीन वर्ष का था। अतः वह उसकी संरक्षिका के रूप में शासन सम्भाल रही थी। उसे शेरों का शिकार सर्वाधिक प्रिय था। अकबर की तुलना में रानी के सेना

बहुत कम थी। अकबर ने आसफ खां को उससे लड़ने के लिये अपार सेना देकर भेजा था। दो दिन तक भयंकर संघर्ष हुआ था। शत्रु द्वारा पकड़े जाने व अपवित्र होने की आशंका से रानी ने स्वयं छुरा भोंक कर आत्महत्या कर ली। उसका अन्त उतना ही शानदार हुआ जैसा उसका पूर्व का जीवन था।¹¹⁷ निःसन्देह उसका नाम भारत की योग्यतम पुत्रियों में माना जायेगा।¹¹⁸ राजमहलों की महिलाओं ने जौहर किया। आसफखां को किले से अपार धनराशि तथा 1000 हाथी मिले। पर उसने इसका आंशिक भाग ही अकबर को भेजा।

अतः संक्षेप में अकबर का यह अकारण भयंकर आक्रमण, किसी भी न्यायिक मापदण्ड से अनुचित था सिवाय केवल विजय तथा लूट के प्रेम से।¹¹⁹ प्रश्न है कि युद्ध अकबर की महानता का अथवा अत्यन्त निकृष्टता का द्योतक है?

महाराणा प्रताप का राष्ट्रप्रेम

अकबर का मेवाड़ (चित्तौड़) पर आक्रमण उसके जीवन का भयंकरतम युद्ध था। यह आक्रमण सम्राट अकबर की उत्तरी भारत में सर्वोच्चता प्राप्त करने की नीति का भाग था।¹²⁰ यह संघर्ष विदेशी साम्राज्यवाद तथा मातृभूमि के प्रति उत्कट प्रेम से परिपूर्ण राष्ट्रवाद का युद्ध था। अकबर ने चित्तौड़ पर दो बार आक्रमण किये। प्रथम 1567-1568 ई. में तथा एक दशक बाद 1576 ई. में। प्रथम संघर्ष राजा उदयसिंह के साथ हुआ जो उदयसिंह के अनुसार 'एक मलेच्छ विदेशी' से था। उदयसिंह के विरुद्ध संघर्ष में बड़ी क्षति हुई। अकबर ने स्वयं 20 अक्टूबर 1567 ई. से 23 फरवरी 1568 ई. तक अर्थात् चार महीने तक घेरा डाला। किले पर अधिकार न होते देख, अकबर ने बारूद से सुरंग बनाने की योजना बनाई। इसमें जयमल राठौर बुरी तरह से घायल हो गया। केलवा के सौलह वर्षीय पुत्र फतेहसिंह (फत्ता) ने संघर्ष जारी रखा था, प्राणों की आहुति देने पर भी सफलता न मिली थी। अकबर ने इस संघर्ष में मेवाड़ की अनेक कलाकृतियां नष्ट कर

दीं। कर्नल टाड और 'वीर विनोद' में इसका विशद वर्णन किया है। क्या विश्व का कोई निष्पक्ष इतिहासकार अकबर के इस धिनौने तथा कालिमायुक्त कारनामे को भूल सकेगा?

विजय होने पर अकबर ने भी बाबर की भांति राष्ट्रभक्तों को कत्ल करने का आदेश दिया। इस महायुद्ध में 30,000 हिन्दुओं का नर संहार किया गया।¹²¹ उल्लेखनीय है कि इतने वीरभक्त अत्याचार तो क्रूर अलाउद्दीन खिलजी ने भी नहीं किये थे।¹²²

चित्तौड़ हाथ से निकल जाने तथा हिन्दुओं के भयंकर नर संहार के पश्चात् भी संघर्ष समाप्त नहीं हुआ। 3 मार्च 1572 ई. को उदयसिंह की मृत्यु के पश्चात् महाराणा प्रताप का गोगुण्ड नामक स्थान पर राज्याभिषेक किया गया। विपरीत परिस्थितियों में भी महाराणा प्रताप ने दिल्ली दरबार में उपस्थित न होकर संघर्ष का मार्ग चुना। मातृभूमि की रक्षार्थ उसके प्रयास निरन्तर चलते रहे।

इन महत्त्वपूर्ण अथक प्रयत्नों के लिए कौन महाराणा प्रताप की अतुल प्रशंसा न करेगा? शायद ही कोई देशद्रोही हो जो उसके प्रयासों को नकारे। यदि महाराणा प्रताप अत्याधिक कष्टों के मार्ग को न चुनते तो सामाजिक अधोपतन होता तथा संघर्ष का मार्ग अवरुद्ध होता, केवल एक जागीरदार बन कर रह जाते, उनके परिवार के किसी व्यक्ति को मुगल दरबार में रहना पड़ता। अकबर के साम्राज्य के लिए सेना देनी पड़ती तथा आर्थिक समृद्धि जुटानी पड़ती।¹²³

अकबर ने तरह-तरह के लालच महाराणा प्रताप को दिये। राजा मानसिंह को भेजा। उसके असफल लौटने पर राजा भगवानदास को भेजा। बाद में राजा टोडरमल को भेजा। वस्तुतः अकबर ने धूर्ततापूर्ण ढंग से राजपूतों में अलगाव तथा राज्य करो की नीति को अपनाया।¹²⁴ आखिर राजा मानसिंह व आसफ खां को अकबर ने एक विशाल सेना के साथ आक्रमण के लिए भेजा। राजा मानसिंह राजभक्ति तथा आर्थिक लाभ से प्रेरित था जबकि महाराणा प्रताप के पास साधनों की अत्याधिक कमी थी, परन्तु माता के दूध की

लाज रखने की प्रेरणा थी। आखिर 21 जून 1576 ई. को दोनों के बीच यह महासंग्राम हल्दीघाटी में हुआ। प्रायः सभी इतिहासकारों ने इस युद्ध में राजपूतों के योगदान की बड़ी प्रशंसा की है। कुछ विद्वानों ने माना कि हल्दीघाटी का युद्ध राजपूतों के सैनिक इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाएगा। जिस भांति आगामी 1857 ई. के महासमर में भारत के प्रत्येक वर्ग, जाति अथवा सम्प्रदाय के लोगों ने भाग लिया था, इस स्वतन्त्रता संग्राम में राजपूताना के प्रत्येक परिवार ने योगदान किया। वनवासी भील भी किसी से पीछे न रहे। यह युद्ध ऐसा था जिसमें दोनों दलों ने अपने को विजयी माना। तत्कालीन सभी भारतीय स्रोतों – राज प्रशस्ति, अमर काव्य, वंशावली, राणा रासो तथा जगदीश मंदिर के अभिलेख (जो 13 मई 1652 ई. का है) से यह स्पष्ट होता है कि महाराणा प्रताप सिंह की सेना ने राजा मानसिंह की सेना को खदेड़ दिया था। प्रसिद्ध विद्वान डॉ. राजेन्द्रसिंह कुशवाहा¹²⁵ ने हल्दीघाटी के महासंघर्ष के परिणामों की विशद व्याख्या की है। इस संघर्ष से मुगल सेना का अजेय होने का विश्वास चकनाचूर हो गया। संघर्ष में मुगलों के हाथ कुछ भी नहीं लगा, सिवाय महाराणा प्रताप के एक हाथी 'रामप्रसाद' के, जिसका नाम अकबर ने खुंदक में आकर 'पीर प्रसाद' रख दिया। इस युद्ध से भारतीय जनता में विदेशी शासन से मुक्त होने की भावना तीव्र हुई।

यह कहना मूर्खतापूर्ण होगा कि अकबर, महाराणा प्रताप की वीरता से इतना प्रसन्न हुआ कि उसने अपने जीवनकाल में राणा प्रताप से संघर्ष नहीं किया। अकबर युद्ध के परिणाम से प्रसन्न न हुआ। मानसिंह बलि का बकरा बना तथा कुछ समय तक अकबर की अप्रसन्नता का पात्र बना रहा। अकबर के निष्फल प्रयत्न होते रहे। जबकि महाराणा प्रताप ने अधिकांश प्रदेशों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

अकबर ने अपनी साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा पूरी करने के लिए मालवा, जौनपुर, मेरठ, रणथम्भोर, कालिंजर, गुजरात, काबुल, काश्मीर, सिंध, उड़ीसा, बलूचिस्तान

तथा कन्धार पर भी आक्रमण किये। उसने दक्षिण भारत में खानदेश व अहमदनगर को भी जीता। अधिकतर उसकी लडाइयां साम्राज्यवादी नीति का ही अंग थी। विश्व प्रसिद्ध मार्क्सवादी चिंतक डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा¹²⁶ कि यदि अकबर के सामने चक्रवर्ती सम्राटों का आदर्श होता तो वह गुजरात और बंगाल जैसे क्षेत्रों को विशेष रक्तपात के बिना स्वायत्त शासन प्रदेश रहने देता। विभिन्न युद्धों से भयंकर रक्तपात, नर-संहार, नृशंसा करने के पश्चात् भी उसकी एक लालसा जीवन भर बनी रही। वह थी अपने पूर्वजों की भूमि मध्य एशिया तथा फरगना प्राप्त करने की। इस दिशा में उसने कन्धार (1595 ई.) पर आक्रमण भी किया पर आगे न बढ़ सका।

अकबर की धार्मिक कुटिलता

धार्मिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से भी अकबर के कुकृत्य किसी भी विदेशी धर्मान्ध शासक से कम नहीं थे। इस दिशा में ब्रिटिश इतिहासकारों की भांति भारतीय मार्क्सवादी इतिहासकारों तथा कतिपय सेकुलरवादियों ने सुर से सुर मिलाकर अकबर को 'महान', 'राष्ट्रीय' तथा उनके योग को 'शानदार' कहने में ऐड़ी चोटी का जोर लगा दिया। परन्तु तथ्यों के आधार पर यह सही नहीं बैठता।

पानीपत के युद्ध के बाद अकबर ने हेमचन्द्र का सिर काटकर गाज़ी की उपाधि प्राप्त की थी। इतनी छोटी आयु में वह 'गाज़ी' की उपाधि प्राप्त करने वाला भारत में पहला और आखिरी मुगल बादशाह था। प्रारम्भ में बदायुनी के अनुसार वह दिन में पांच बार नमाज नित्य पढ़ता था। उसने मक्का जाने वाले यात्रियों को एक भारी धनराशि सरकारी खजाने से दी थी।¹²⁷ उसके द्वारा स्थापित इबादतखाने में प्रारम्भ में केवल शेखों और उलेमाओं का प्रभुत्व था।¹²⁸ जो परस्पर लड़ते रहते थे। 1579 ई. में अकबर ने भी सिकन्दर अथवा अलाउद्दीन खिलजी की भांति लौकिक के साथ आध्यात्मिक जगत का भी स्वामी बनने की महात्वाकांक्षा की। इस सन्दर्भ में विद्वान निजामुद्दीन अहमद के

अनुसार¹²⁹ 1591-1592 ई. में इस्लाम को प्रारम्भ हुए लगभग एक हजार वर्ष पूरे हो रहे थे। इस काल में यह अफवाह ज़ोरों पर थी कि मेहंदी नाम का पैगम्बर होने वाला है। इस सम्बन्ध में यदि अकबर देरी करता तो उसकी महत्वाकांक्षा पूरी होने में कठिनाई आती। अतः अकबर ने शेख मुबारक व उसके दोनों पुत्रों - शेख फैज़ी तथा अबुल फज़ल की सहायता से 1579 ई. में अर्थात् 12-13 वर्ष पूर्व ही एक मज़हर (प्रपत्र) तैयार करवाई। कुछ विद्वानों का मत है कि इसमें अकबर के विश्वासपात्र एवं मित्र अबुल फज़ल का विशेष योगदान था। सितम्बर 1579 ई. में इस मज़हर में सम्पूर्ण भारत में इस्लाम सम्बन्धी झगड़ों में अकबर को फैसला करने का अधिकार दिया गया।¹³⁰ इस मज़हर पर तत्कालीन प्रमुख धार्मिक नेताओं मख़दूम-उल-मुल्क व अब्दुल नबी के भी हस्ताक्षर करायें गए। इसमें बतलाया गया कि, “न्यायप्रिय राजा का स्थान ईश्वर की दृष्टि से मुजहादिक (धार्मिक नेता) से कहीं अधिक ऊंचा होता है।”

इस मज़हर में अकबर को इतनी अधिक उपाधियां दी गईं जो शायद विश्व में किसी भी मुस्लिम शासक को दी गई हों। उसे ईश्वर का स्वरूप, अबुल फतह जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर, बादशाहे-गाज़ी, सबसे अधिक न्यायप्रिय और बुद्धिमान राजा और ईश्वर का ज्ञान प्राप्त कहा गया।¹³¹ यह मज़हर “सब लोगों के लिए बाध्य थी” और उसका उद्देश्य “इस्लाम का प्रचार” बतलाया गया।¹³² वी.ए. स्मिथ ने लिखा कि इससे अकबर की धार्मिक तथा सामाजिक गुप्त भावनायें प्रकट होती हैं।¹³³ यह एक योजनापूर्वक पाखण्ड की नीति थी।¹³⁴ इतना ही नहीं अकबर ने अपने राजकाल के प्रारम्भ (1556 ई.) से प्रारम्भ होने वाला तारीख-ए-इलाही कैलेंडर भी प्रारम्भ किया तथा इसे सरकारी रूप से नया संवत् माना गया।¹³⁵

अकबर ने 1582 ई. में दीन इलाही धर्म की स्थापना की। यह उसके राजनीतिक प्रपंच का अगला पक्ष था। इसके लिए उसने ईसाई, पारसी, जैन, शिया, सूफियों तथा

हिन्दुओं को बुलाया। अकबर इसके द्वारा धर्म का प्रधान पुरोहित बन गया। इसके सदस्यों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण कसौटी पूर्ण राजभक्ति की शर्त थी। इसके अनुयायी परस्पर अभिवादन पर ‘अल्लाह हो अकबर’ तथा जल्लालहू कहते थे। अबुल फज़ल ने स्वयं माना कि लोग ‘अल्लाह हो अकबर’ (अल्लहा महान है) का अर्थ यह ही लेते थे कि अकबर ही अल्लाह है। वी.ए. स्मिथ ने दीन इलाही को अकबर की बुद्धिमत्ता का नहीं बल्कि उसकी बेवकूफी का उदाहरण बतलाया है।¹³⁶ उसने लिखा कि सम्पूर्ण योजना मिथ्यास्पद तथा निरंकुश स्वेच्छाचारिता का विकास था।¹³⁷ ताज्जुब है कि अकबर के मरते ही इस धर्म का एक भी पोषक नहीं रहा।

ब्रिटिश इतिहासकारों तथा प्रशंसकों को सम्राट अकबर की जो नीति सर्वश्रेष्ठ लगी वह थी उसकी राजनीति, जिसमें परस्पर अलगाव तथा टकराव के तत्व थे, जिससे भारत में विभिन्न जातियों, सम्प्रदायों एवं समुदायों में अलगाव स्थापित कर लम्बे समय तक राज्य किया जा सके। अंग्रेजों ने अंत तक इस विभाजन तथा राज्य करों की नीति का पोषण किया। उल्लेखनीय है कि भारत में अंग्रेजी शासन का अंतिम वायसराय लार्ड माउन्टबेटन¹³⁸ भी अपने अंतिम पाकिस्तान के सदन में अकबर को श्रद्धांजलि देना न भूला। कर्नल टाड, हण्टर, जे.डब्ल्यू. केयी, जी.बी. मेलीशन, वी.ए. स्मिथ प्रायः सभी ने अकबर की नीति का अनुमोदन किया। अंग्रेजों ने भी भारत में यही संरक्षण तथा शोषण की नीति अपनाई थी।¹³⁹

जहांगीर तथा शाहजहां की धार्मिक मतान्धता

अकबर के पश्चात् दिल्ली के मुगल शासक जहांगीर तथा शाहजहां बने। दोनों ही अत्याधिक विलासी तथा मतान्ध थे। दोनों सुरा के साथ सुन्दरी तथा सौन्दर्य के भूखे थे। स्वयं जहांगीर के अनुसार वह प्रायः बीस प्याले शराब नित्य लेता था। पारिवारिक दृष्टि से दोनों का जीवन सामान्य न था।¹⁴⁰ अकबर जहांगीर को अपना ‘बिगड़ैल पुत्र’ मानता था।

चित्तौड़ के स्वदेश प्रेमियों ने इन विदेशी शासकों के प्रति सिर न झुकाया। जहांगीर के साथ महाराणा प्रताप के पुत्र राजा अमरसिंह से संघर्ष चलता रहा जो 1613 ई. में मेवाड़ की सन्धि के साथ समाप्त हुआ। शहाजहां की भी इसे तोड़ने की हिम्मत न हुई। बुन्देलखण्ड में बुन्देले तथा राजस्थान में (जोधपुर) में अमरसिंह राठौर अपनी स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न करते रहे।

इन शासकों की भी महत्वाकांक्षा कन्धार तथा मध्य एशिया अर्थात् अपने पूर्वजों की भूमि तक पहुंचने की रही। परन्तु जहांगीर के काल में कन्धार भी हाथ से निकल गया। शहाजहां की नीति भी असफल रही। शहाजहां ने गिनती में 48 लड़ाईयां लड़ी थीं पर सफलता न के बराबर थी। उसने भी अपने पूर्वजों की भांति आक्सस नदी व हिन्दुकुश पर्वत के मध्य ट्रान्जिक्सोनिया के प्रदेश पर आधिपत्य चाहा। इससे पूर्व बाबर ने इस समस्त प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। परन्तु देर तक कब्जा न रख सका था। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार यह विजय योजना भावात्मक भी थी तथा उसका लगाव अपने पूर्वजों की भूमि से था। बल्लू तथा बदख्शा प्राप्त करने के लिए कन्धार पर अधिकार आवश्यक था। कन्धार जीतने के लिए शहाजहां ने तीन बार क्रमशः 1649, 1652 तथा 1653 ई. में बड़े प्रयत्न किये परन्तु वह एक इंच भूमि भी प्राप्त न कर सका। इस प्रकार शहाजहां ने भारतीय राजकोष का 12 करोड़ रुपया खर्च किया तथा हजारों भारतीय सैनिक मरवा दिये।

धार्मिक दृष्टि से उपरोक्त दोनों शासक धर्मान्ध तथा रुढ़िवादी थे। उदाहरण के लिए जहांगीर ने 1611 ई. में जगन्नाथपुरी पर आक्रमण किया। 1620 ई. में किश्तवार पर आक्रमण कर, काश्मीर के प्रसिद्ध वेरीनाग मंदिर को विनष्ट किया। मेवाड़ तथा कांगड़ा में ही ऐसा किया। वराह अवतार की प्रसिद्ध मूर्ति को नष्ट करवाया तथा उसको नष्ट कर टुकड़े तालाब में फिंकवा दिये। सिक्ख धर्म के प्रति वह अत्यन्त रुढ़िवादी था तथा सिक्ख

गुरुओं को अनेक कष्ट दिये। उसने श्वेताम्बर जैनियों को अनेक कष्ट दिये। शहाजहां ने इससे भी आगे बढ़कर अनेक मंदिरों का ध्वंस किया। बनारस में 76 मंदिर गिराये गये।¹⁴¹ नये मंदिरों के निर्माण पर प्रतिबन्ध लगाये। हिन्दुओं पर तीर्थ यात्रा कर लगाया। धर्म परिवर्तन को प्रोत्साहन दिया। शियाओं के प्रति उन्होंने कठोर नीति अपनाई। एक विद्वान के अनुसार “शहाजहां की धार्मिक कट्टरता एवं असहिष्णुता ने ही औरंगजेबी प्रतिक्रियावादी शासन पद्धति को जन्म दिया।”¹⁴² उसकी यह नीति औरंगजेब के कट्टर शासन की अग्रदूत बनी।¹⁴³

औरंगजेब : भारतीय राष्ट्रीयता का शत्रु

औरंगजेब मुगलवंश का सबसे दुर्भाग्यशाली शासक था। उसके काल में राजनैतिक दृष्टि से सर्वाधिक विस्तार हुआ, परन्तु उसकी धार्मिक असहिष्णुता तथा प्रतिक्रियावादी नीति ने उसके काल में सर्वाधिक विद्रोहों को जन्म दिया। उसने अपने कुकृत्यों से भारतीय राष्ट्रीयता की उदारता तथा सर्वधर्म सद्भाव की जड़ों को हिलाने का प्रयत्न किया। साथ ही उसने अपनी क्रूर तथा धर्म विरोधी नीतियों से मुगल शासन की नींव को ही हिला दिया। यद्यपि बाबर से अकबर तथा जहांगीर-शहाजहां के काल में राणा सांगा, हेमचन्द्र विक्रमादित्य तथा महाराणा प्रताप द्वारा भारत की राष्ट्रीय भावना को विकसित करने के प्रयत्न हुए थे परन्तु औरंगजेब के काल में गुरु गोविन्द सिंह तथा वीर शिवाजी द्वारा इसके पुनः सफल प्रयास हुए।

औरंगजेब मुगल शासकों में सर्वाधिक धर्मान्ध, परिवार में नीचतापूर्ण व्यवहार तथा एक महा शक्की स्वभाव का व्यक्ति था। उसका राज्याभिषेक एक बार नहीं चार बार हुआ था। औरंगजेब भी राज्य विस्तार का इच्छुक था। उसने असम पर तीन बार आक्रमण किया पर नाममात्र की सफलता मिली। उसने उत्तर-पश्चिम की ओर ध्यान दिया। कबायली सरदारों को भारी रिश्वतें तथा ऊंचे ओहदे देकर फुसलाना चाहा तथा शांति

स्थापित करनी चाही पर सदैव अराजकता बनी रही। कबायलियों पर पेशावर पर अधिकार कर लिया पर निरंतर विद्रोह होते रहे। दक्षिण भारत में किसी भांति बीजापुर तथा गोलकुण्डा पर अधिपत्य प्राप्त किया, परन्तु दक्षिण में उसके मुख्य शत्रु शिवाजी तथा उनका परिवार संभाजी, राजाराम व ताराबाई बने रहे। वी.ए. स्मिथ के अनुसार दक्षिण भारत केवल औरंगजेब की कब्र नहीं मुगल साम्राज्य की कब्र साबित हुआ। औरंगजेब के पास जो भी था वह भी नष्ट कर लिया, “औरंगजेब ने अपने पीछे केवल उजड़े हुए प्रदेश छोड़े, जहां कोई पेड़ भी न था।”

कुछ मुस्लिम इतिहासकारों तथा मार्क्सवादी समर्थकों ने औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता तथा धर्मान्धता का श्रद्धापूर्वक समर्थन किया है। एक मार्क्सवादी इतिहासकार ने औरंगजेब को ‘जिंदा पीर’¹⁴⁴ ही बता दिया। औरंगजेब की दैनिक पांच बार नमाज पढ़ना, रोज़े रखना, कुरान पढ़ना आदि की कोई भी आलोचना न करेगा, परन्तु जब वह बगुले की भांति दूसरे धर्मों के प्रति टेढ़ी दृष्टि रखे, उनको समूल रूप से नष्ट करने की सोचे, तो कोई भी उसके क्रियाकलापों को कोई महत्त्व नहीं देगा। इस धर्म परायण देश में औरंगजेब का विरोध प्रमुख रूप से उसकी धार्मिक असहिष्णुता, कट्टरता, धर्मान्धता तथा दूसरी धर्मों की स्वतन्त्रता को नष्ट करने के कारण हुआ।

औरंगजेब ने भारत के सांस्कृतिक जीवन मूल्यों के साथ खिलवाड़ किया। उनके आध्यात्मिक तथा धार्मिक केन्द्रों को नष्ट किया। उसके शासन काल में सैकड़ों मन्दिरों को नष्ट किया गया। बाबर ने तो जहां भारतीयों के पवित्र आस्था स्थल रामजन्मभूमि को नष्ट करके मस्जिद का निर्माण किया था, औरंगजेब ने मथुरा में भगवान कृष्ण के जन्म स्थान तथा काशी में विश्वनाथ के मंदिर को नष्ट करके मस्जिदों का निर्माण करवाया। उसने भारत को दारुल हरब से दारुल इस्लाम बनाने के लिए सुन्नी धर्म को राज्य धर्म घोषित किया। मुताहासिबों की नियुक्तियां की। राजस्थान में सैकड़ों मंदिरों को

गिराया गया। अम्बेर, जोधपुर, अयोध्या, हरिद्वार में अनेक मंदिर गिराये। मंदिरों को गिराने का एक अलग विभाग स्थापित किया। हिन्दुओं पर जज़िया तथा यात्रा कर लगाये। इस्लाम धर्म अपनाने पर अनेक सुविधाओं की घोषणाएँ हुईं। हिन्दुओं के सामाजिक रीतिरिवाजों, त्यौहारों, पर्वों पर प्रतिबन्ध लगाये।

आस्थाओं, मान्यताओं, जीवन मूल्यों के प्रति प्रहार से चहुं ओर से औरंगजेब का तीव्र विरोध हुआ। यह विरोध गोकुल नामक जाट के नेतृत्व में मथुरा से प्रारम्भ हुआ। बाद में राजाराम, रामचरा व चूड़ामल ने इसे आगे बढ़ाया। नारनौल व मेवात क्षेत्र में सतनामी सम्प्रदाय ने तीव्र संघर्ष किया, जिसमें 2000 सतनामी मारे गए। स्थान-स्थान पर हिन्दुओं, राजपूतों तथा शियाओं द्वारा प्रतिरोध हुआ।

मुगल शासकों का सिख गुरुओं से संघर्ष गुरुनानक देव के काल से हो गया था। जब गुरुनानक ने बाबर के अत्याचारों की कटु आलोचना की थी। जहांगीर ने गुरु अर्जुन देव को अत्याधिक कष्ट दिये थे। औरंगजेब के काल में काश्मीर के पंडितों की सुरक्षार्थ सिख पंथ के नवें गुरु तेगबहादुर सिंह का दिल्ली में बलिदान हुआ था। गुरु गोविन्द सिंह ने खालसा पंथ की स्थापना कर मुगलों से टक्कर ली थी। इस संघर्ष में उनके चारों पुत्रों का बलिदान हुआ था। सम्भवतः यह भारतीय इतिहास में देश तथा की रक्षार्थ विश्व के सम्मुख महानतम उदाहरण था। इसके पश्चात् भी निर्भीक निडर गुरु गोविन्द सिंह ने जफरनामा (विजय पत्र)¹⁴⁵ भेजा था जिसमें औरंगजेब के कुकृत्यों तथा देशघातक कुकृत्यों का ब्यौरा दिया था। इसी भांति बुन्देलखण्ड में चम्पतराय के नेतृत्व में मुगलों को चुनौती दी गयी, जिससे बुन्देलखण्ड सतत संघर्ष का केन्द्र बन गया था। बाद में छत्रसाल के नेतृत्व में एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना हुई थी। मेवाड़ तथा मारवाड़ में भी राजसिंह व अजीत सिंह ने संघर्ष किया।

शिवाजी : भारतीय राष्ट्रीयता के प्रतीक

दक्षिण भारत में शिवाजी महाराज का उदय भारतीय राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रीय चरित्र का एक महान प्रतीक बन गया। उन्होंने भारत की मातृभूमि के प्रति अटूट श्रद्धा तथा भारतीय सांस्कृतिक जीवन मूल्यों की पुनः प्रतिस्थापना की। उनके जीवन तथा कार्यों पर अनेक श्रेष्ठ ग्रन्थ उपलब्ध हैं। अतः यहां विस्तार पूर्वक वर्णन की आवश्यकता नहीं है।

औरंगजेब का भयंकर संघर्ष शिवाजी महाराज के साथ हुआ, जो उसके लिए जी का जंजाल बन गया। शिवाजी के रूप में हिन्दू शक्ति का अभ्युदय तथा जागरण औरंगजेब के लिए अभिशाप हो गया था। शिवाजी का लक्ष्य भारत भूमि से विदेशी सत्ता को नष्ट कर, सुविशाल हिन्दू साम्राज्य की स्थापना करना था। इसी हेतु शिवाजी ने औरंगजेब या उसके अधिकारियों को कई बार पराजित किया। उनके द्वारा अफजल खां का वध एक अन्तर्राष्ट्रीय घटना थी।¹⁴⁶ उन्होंने 1674 ई. में रायगढ़ में हिन्दवी साम्राज्य की स्थापना कर एक महा पराक्रम का यशस्वी कार्य किया था। उनका राज्याभिषेक एक युग परिवर्तनकारी तथा वैश्विक महत्त्व की घटना थी।¹⁴⁷ श्री जदुनाथ सरकार ने लिखा, “शिवाजी के राष्ट्रव्यापी कार्य से औरंगजेब तथा अन्य सभी मुगल ताकतें विचलित हो गई थी। औरंगजेब शिवाजी के विरुद्ध अनेक सेनापतियों को भेजता था, पर हर बार एक ही प्रश्न रहता कि अब किसे भेजा जाए?” शिवाजी के पश्चात् संभाजी, राजाराम व ताराबाई भी औरंगजेब के लिए विनाशकारी साबित हुए थे। पेशवाओं के द्वारा भी हिन्दू पद पदशाही की स्थापना की गई थी। सर जदुनाथ सरकार ने एक अन्य स्थान पर लिखा, “मराठा जाति अपने उदय से पूर्व छोटे-छोटे अणुओं की भांति दक्षिणी रियासतों में बंटी हुई थी, उसने (शिवाजी) उन्हें एक मजबूत राष्ट्र में बांध दिया..... किसी अन्य हिन्दू ने आधुनिक युग में इतनी प्रतिभा का परिचय न दिया था।”¹⁴⁹

हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध

प्रश्न है कि उपरोक्त मजहबी उन्माद – दिल्ली सल्तनत के पठानों तथा मुगल शासकों के प्रयत्नों ने भारतीय जनजीवन के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन को कहां तक प्रभावित किया? प्रसिद्ध लोक प्रिय कथन है – ‘राजनीति तोड़ती है, धर्म जोड़ता है’। अतः इस काल में भारत के सन्तों तथा भक्तों ने सबको जोड़ने का प्रयत्न अवश्य किया तथा इसे भारत की जड़ों तक पहुंचाया। उन्होंने भारत के जीवन मूल्यों को पुनर्स्थापित करने का प्रयत्न किया, परन्तु वे भारत की राजनीति पर हावी न हो सके। मोहम्मद बिन कासिम से मुगलों के अंतिम शासक बहादुर शाह ‘जफर’ तक मुस्लिम शासकों द्वारा धर्मान्धता तथा दारुल हरब से दारुल इस्लाम के जिहादी नारे ने इस देश के हिन्दू समाज को अपने ही देश में अछूत सा बनाये रखा। मुस्लिम शासन काल में हिन्दू दूसरी अथवा तीसरी श्रेणी का नागरिक बना रहा।¹⁴⁹ मुसलमान हिन्दुओं को ‘काफिर’ कहते तथा हिन्दू उन्हें घृणा से ‘मलेच्छ’ पुकारते। सम्पूर्ण मुस्लिम काल में मुसलमानों द्वारा जबरदस्ती धर्मान्तरण होता रहा। हिन्दुओं पर जज़िया कर लगाया। हिन्दू सम्पूर्ण भारत में तीर्थ यात्रा न कर सके तथा उनमें किसी प्रकार का राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय एकता का भाव उत्पन्न न हो, इसलिए समय-समय पर यात्रा कर लगाया गया। मूर्तियों तथा मंदिरों को खण्डित करने का योजनापूर्वक प्रयास होता रहा। स्वाभाविक है कि हिन्दुओं में अस्थायी तौर पर निराशा आई। इसी का परिणाम यह हुआ कि हिन्दू तथा मुसलमानों में जो कटुता आई, वह आज तक समाप्त न हुई।

एक ओर मुस्लिम शासक बलबन, अलाउद्दीन खिलजी, मोहम्मद तुगलक, फिरोज तुगलक, सिकन्दर लोदी, बाबर, औरंगजेब आदि भारत के इस्लामीकरण के प्रयत्नों में जुटे रहे। वहां कठमुल्लों, मौलवियों तथा उलेमाओं ने हिन्दुओं के प्रति कटुता पैदा करने में कोई कसर न रखी। तभी सूफी चिन्तन से प्रभावित शहाजहां के पुत्र दारा

शिकोह को कहना पड़ा कि, “बहिस्त उसी जगह है जहां मुल्ले और मौलवी नहीं हैं और वहां उनका शोर सुनाई नहीं देता।”¹⁵⁰

प्रसिद्ध राष्ट्रकवि रामधारी सिंह ‘दिनकर’ ने मुसलमानों के बहशीपन का वर्णन अपने ग्रन्थ में इन शब्दों में किया, “लड़ाई मारकाट के दृष्य तो हिन्दुओं ने बहुत देखे थे परन्तु उन्हें सपने में भी उम्मीद न थी कि संसार में एकाध जाति ऐसी भी हो सकती है, जो मूर्तियों को तोड़ने और मंदिरों को भ्रष्ट करने में सुख माने। जब मुस्लिम आक्रमण के समय मंदिरों तथा मूर्तियों पर विपत्ति आई तो हिन्दुओं का हृदय फट गया और वे इस्लाम से तभी से भड़के सो आज तक भड़के हुए हैं।”¹⁵¹

वस्तुतः न ही मुस्लिम शासकों अथवा मुसलमानों का भारतीयों से कोई लगाव था। उनका लगाव केवल भारत की अपार धन सम्पत्ति से था। उनके द्वारा भारतीयों के समरस होने अथवा उनके साथ भाईचारा स्थापित करने का कोई प्रयत्न न हुआ। सही बात तो यह है कि मुस्लिम मजहब में मुस्लिम भ्रातृत्व के अलावा विश्व बन्धुत्व या वसुधैव कुटुम्बकम् का कोई चिंतन है ही नहीं।

मुस्लिम शासक भारत के धन वैभव से अवश्य सदैव लालायित रहे, परन्तु उन्होंने कभी भारत भूमि को अपनी पितृभूमि या पुण्यभूमि नहीं माना। मुगल शासकों में बाबर को सर्वदा फरगना तथा काबुल की याद सताती रही। हिमायूं फारस की ओर भागता रहा। अकबर समरकन्द व कन्धार की तड़प लिये फिरता रहा। शहाजहां तथा आरंगजेब मध्य एशिया की ओर दौड़ते रहे। उन्होंने भारतभूमि को भोग भूमि के अलावा कोई महत्त्व न दिया। संक्षेप में इसी भांति मुसलमान भी भारत भक्ति से विरक्त रहे।

प्रसिद्ध इतिहासकार जदुनाथ सरकार ने लिखा, “रूढ़िवादी मुसलमान ने सदैव यही अनुभव किया कि वह भारत में रहता अवश्य है परन्तु भारत का अविभाज्य अंग नहीं है। उसने अपने हृदय में, “भारतीय परम्पराओं, भाषा और सांस्कृतिक वातावरण अपनाने

की बजाय उन्हें फारस और अरब से आयात करना अच्छा लगता है। भारतीय मुसलमान बौद्धिक दृष्टि से विदेशी थे। वह भारतीय पर्यावरण के अनुरूप हृदय को नहीं बना पाये।”¹⁵²

इसी भांति प्रसिद्ध इतिहासकार स्टेनली लेनपूल का विचार है कि, “नौ शताब्दियों के सम्पर्क के पश्चात् भी हिन्दू-मुसलमान में कोई भावपूर्ण सम्बन्ध स्थापित न हो सके। अतः तभी से हिन्दू तथा मुसलमान के बीच एक ऐसी खाई बन गई जो आज भी मूल रूप से बनी हुई है। विश्व में किसी भी देश में मुसलमानों का अलगाव इतना नहीं दिखलाई देता जितना भारत में। आज भी भारत का सामान्य हिन्दू तथा मुसलमान एक-दूसरे से अपरिचित है। परस्पर के इस वैमनस्य ने वर्तमान भारत में अनेक जटिल समस्याओं को जन्म दिया, जो भारत के विकास में बाधक हैं।”¹⁵³

भारत के राष्ट्रीय कौन?

यह भारतीय इतिहास की विडम्बना है कि कुछ ‘एमीनेंट’ वामपंथी इतिहासकारों ने तथा तथाकथित सेकुलरवादियों ने भारत में मुस्लिम शासन काल का तथा इसके राष्ट्रीय स्वरूप का तथ्यरहित, भ्रामक तथा मनमाना विश्लेषण किया है। इनके अनुसार ‘भारत में मुस्लिम शासनकाल भारत का शानदार युग’ तथा मुगल बादशाह के काल को ‘महान मुगल साम्राज्य’ बताया। इन लेखकों ने मुस्लिम शासकों, विशेषकर मुगल बादशाहों को महिमामण्डित किया तथा इन विदेशी आक्रमणकर्ता से संघर्ष करने वाले स्वतन्त्रता सेनानियों को इतिहास में कोई स्थान नहीं दिया। वामपंथी इतिहासकारों द्वारा लिखित एन. सी.आई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित 1969 ई. में कक्षा 6 से 12वीं तक की इतिहास की पुस्तकों अथवा 2006 ई. में पुनः नवीन सामाजिक अध्ययनों की पुस्तकों में उनका मन्तव्य साफ झलकता है। उदाहरण के लिए इनमें बाबर का वर्णन है, राणा सांगा का नहीं। अकबर का वर्णन है पर हेमचन्द्र विक्रमादित्य, रानी दुर्गावती या महाराणा प्रताप का नहीं,

औरंगजेब का यशोगान है, पर शिवाजी महाराज का वर्णन केवल दो पंक्तियों में है और वह भी नकारात्मक। मुगल शासन को एक 'आदर्श' राज्य बताते हुए एक दैवीय प्रकाश की भी बात गढ़ी गई तथा एक मंगोल रानी अलानकुंआ की बेतुकी कहानी भी मूल पाठ्यक्रम में डाल दी गई जो सूर्य की किरणों से गर्भवती हो गई। पुस्तक में जहांगीर की न्याय की जंजीर का अविवेकपूर्ण विस्तृत विवरण किया गया है जिसका एक बार भी कभी प्रयोग नहीं हुआ।

वामपंथी इतिहासकारों ने मनमाने ढंग से राष्ट्रीयता को दो भागों में विभाजित कर दिया। एक को विशुद्ध राष्ट्रवादी कहा तथा दूसरे को सीमित अर्थ में राष्ट्रवादी माना। उन्होंने मुगल शासक अकबर, औरंगजेब जैसे खलनायकों को विशुद्ध 'राष्ट्रीय शासक' बतलाया तथा महाराणा प्रताप, शिवाजी जैसे राष्ट्र नायकों को दूसरी श्रेणी में रखा। वास्तव में यह विचित्र तथा मनगढ़न्त विश्लेषण है जिसमें विदेशी आक्रमणकारी 'राष्ट्रीय' तथा देश की स्वतन्त्रता के लिए लड़ने वाले दूसरी श्रेणी के बन गए। वस्तुतः इन्हें शिवाजी, गुरुगोविन्द सिंह तथा राष्ट्रीय नेता कहने में आपत्ति है। इन सभी विद्वानों ने इतिहास को इस ढंग से तोड़ने मरोड़ने तथा लीपापोती करने की कारणमीमांसा भी नहीं की। सम्भवतः वे तीन चार कारणों से मुगल शासकों को 'राष्ट्रीय' होने का प्रमाण पत्र दे रहे हो। डॉ. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव ने तर्कपूर्ण ढंग से इन सम्भावनाओं का विश्लेषण किया है।¹⁵⁶

प्रथम यह सम्भावना हो सकती है कि अंग्रेजों ने मुगलों को शासन से अपदस्थ किया था। अतः वामपंथी लेखकों ने मुगल शासकों को 'देशभक्त' समझा हो। परन्तु यह तर्क कुतर्क होगा। ब्रिटिश इतिहासकारों तथा प्रशासकों ने माना है कि अंग्रेजों ने भारतीय राजसत्ता मुगलों से नहीं, बल्कि मरहटों तथा सिखों से छीनी थी।¹⁵⁷ मुगल तो केवल नाममात्र के शासक थे। मुगलों के अंतिम शासक बहादुरशाह जफर का राज्य केवल दिल्ली के लाल किले तक सीमित था।

दूसरा तर्क यह हो सकता है कि मुगल शासकों का शासन दिल्ली सल्तनत के पठानों की तुलना में बेहतर था। सम्भवतः इसलिए उन्होंने मुगलों के शासन को 'शानदार' तथा शासकों को 'महान' कहा हो। परन्तु इसमें भी उनकी निष्पक्षता सिद्ध नहीं होती और न ही कोई चिंतन का आधार। कोई भी यह कह सकता है कि ब्रिटिश शासन मुगलों से बेहतर था।

तीसरे अकबर के अपने शासनकाल में कुछ सामाजिक, आर्थिक सुधार किये गये थे, परन्तु इस आधार पर तो उसे राष्ट्रीय राज्य नहीं कहा जा सकता।

चौथे, यह भी कि आधुनिक मुस्लिम इतिहासकारों ने एक वर्ग के रूप में मुगल साम्राज्य की सफलताओं को, सत्य को छिपाते हुए, बढ़ा चढ़ा कर बतलाया है। उन्होंने मुगलों की असफलताओं या कमियों को या तो छिपाया, या भुला दिया हो।

इतिहास के निष्पक्ष विवेचना से भारतीय राष्ट्रीयता के आधारभूत तत्वों को नहीं भूलना चाहिए। भारतीय चिंतन में सत्ता और राजसत्ता कभी भी राष्ट्र की आत्मा का स्थान ग्रहण न कर सके। उनकी दृष्टि में राष्ट्र की आत्मा का स्थान धर्म तथा इसकी सांस्कृतिक मान्यताओं में निहित रहा है। मातृभूमि के प्रति अनन्य भक्ति तथा सांस्कृतिक वैशिष्ट्य ही राष्ट्रीयता का स्थायित्व व शाश्वतता प्रदान करता है। देश की मातृभूमि की रक्षार्थ बलिदान को सर्वोपरि तथा ब्रह्मालोक की प्राप्ति बतलाया है। सांस्कृतिक मान्यताओं में धर्म के सन्दर्भ में व्यक्तिगत रूप से पूर्ण स्वतन्त्रता तथा दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णुता, उदारता तथा समरसता का भाव इसके विशेष गुण रहे हैं।

इस सन्दर्भ में मुगल शासक मूलतः विदेशी थे। कालान्तर में न उनका भारत भूमि के प्रति कोई प्रेम था और न ही यहां के लोगों से। बाबर एक विदेशी धर्मान्ध लुटेरा था तथा वह सर्वदा हिन्दुओं के लिए 'काफिर' शब्द का प्रयोग करता था। उससे तो भारत के मुसलमान भी घृणा करते थे। बाबर से अधिक योग्य तथा सम्माननीय हसन खां मेवाती

था जिसने स्वदेश की रक्षा के लिए राणा सांगा की सेना में भाग लिया। बाबर ने उसे तरह-तरह के प्रलोभन दिये। हसन खां मेवाती ने अपने पुत्र नाहर खां के बाबर द्वारा बन्धक बनाये जाने पर भी स्वदेश भक्ति न छोड़ी। वह बाबर के विरुद्ध लड़ता लड़ता युद्ध में मारा गया। अतः राष्ट्रभक्ति में बाबर, राणा सांगा तथा हसन खां मेवाती का पासंग भी न था।

बाबर की भांति अफीमची हिमायूँ को भी बाबर की तरह भारत से कोई लगाव न था। पहले ही बताया गया कि अकबर में भी भारतीय रक्त की एक बूंद भी नहीं थी। उसका लगाव तो स्वयं में भी कन्धार जीतने का रहता था तथा वह अपने पूर्वजों की भूमि समरकन्द का स्मरण करता था। उससे कई गुणा राष्ट्रभक्त अब्दुरहीम खनखाना तथा भक्त रसखान थे। अकबर स्वयं पैगम्बर तथा विश्व सम्राट बनना चाहता था। उसकी इबादतखाने की स्थापना, सुलुह उल कुल की नीति मज़हर की घोषणा, तारीखे ए इलाही (ईश्वर का कैलेण्डर) लागू करना तथा दीन इलाही की स्थापना किसी भी भांति से उदारवादी कृत्य न थे, जैसा कुछ सेकुलरवादियों ने उन्हें इस आधार पर महान बना दिया। बल्कि धर्म का राजनीति के लिए उसने इसका दुरुपयोग किया था। दीन इलाही उसका राजनैतिक स्टंट था, यही अवस्था, जहांगीर, शाहजहां तथा औरंगजेब की थी। मुगलों का राज्य वास्तव में एक मजहबी राज्य था। हिन्दुओं को दूसरे श्रेणी का नागरिक समझा जाता था।

विचारणीय विषय है कि भारतीय राष्ट्रीयता का प्रतिनिधित्व कौन करता है? साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षी अकबर या देशाभिमान पर बलिदान होने वाली दुर्गावती या भारतीय स्वतन्त्रता के लिए मर मिटने वाला हेमचन्द्र विक्रमादित्य अथवा जंगलों में भटकने वाला महाराणा प्रताप। यदि महाराणा प्रताप के संघर्षमय जीवन को लें, विदेशी शासन की स्थापना के पश्चात् पचास वर्षों में उसका यह पहला मुगलों के विरुद्ध संघर्ष था, जिसमें मुगलों की अजेय सेना को समूल नष्ट कर दिया था। हल्दी घाटी के महान

संघर्ष ने हिन्दू समाज में नवचेतना, आत्मविश्वास तथा वीजीगीषु वृत्ति को जगाया। वामपंथी इतिहासकारों ने महाराणा प्रताप को केवल दिल्ली के सम्राट के सन्दर्भ में ही देखने का प्रयत्न किया तथा राणा प्रताप मेवाड़ के राजाओं की श्रृंखला की एक कड़ी मात्र माना। इन वामपंथी इतिहासकारों ने महाराणा प्रताप को एक छोटे से राज्य के लिए संघर्षशील अर्थात् संकीर्ण हिन्दू राष्ट्रीयता का प्रतीक तथा एक संस्कृति का उन्नायक तथा आधुनिकता का प्रतीक माना जो सर्वथा अतार्किक व अप्रामाणिक है। उल्लेखनीय है कि तत्कालीन भारत की किसी भाषाओं में किसी भी लेखक ने अकबर की प्रशंसा में एक भी काव्य छोड़, वाक्य भी नहीं लिखा। कुम्भन दास, तुलसीदास, रहीम, यहां तक कि तत्कालीन कवि आदा ने भी उसकी कटु आलोचना की तथा महाराणा प्रताप की बड़ी प्रशंसा की है।

वस्तुतः किसी शासक का मूल्यांकन विद्वानों ने राष्ट्र जीवन मूल्यों के लिए किए गये प्रयत्नों के रूप में आंका जाना चाहिए। कर्नल टाड का यह कथन अकाट्य है कि, “अरावली पर्वत श्रृंखलाओं का कोई भी पथ ऐसा नहीं है जो प्रताप के किसी कार्य से पवित्र न हुआ हो, किसी भी शानदार विजय अथवा उससे भी शानदार पराजय से। हल्दी (घाटी) मेवाड़ की धर्मोपल्ली है तथा दिवेर का मैदान उसकी मैराथन है।” आगामी भारत के इतिहास में महाराणा प्रताप हमेशा प्रेरक रहे। पर अकबर नहीं। शचीन्द्रनाथ सान्याल¹⁵⁸ की क्रान्तिकारी समिति का कोई भी सदस्य ऐसा नहीं हो सकता था जिसने चित्तौड़ के विजय स्तम्भ के नीचे शपथ न ली हो। चित्तौड़ की तीर्थयात्रा और हल्दी घाटी का तिलक लगाना अनिवार्य हो गया था। वस्तुतः अंग्रेजों के शासनकाल में दासता से मुक्ति दिलाने में प्रताप के नाम ने जादू का काम किया था। 1913 ई. में अपनी पत्रिका के प्रथम अंक ‘प्रताप’ को समर्पित करते हुए प्रसिद्ध राष्ट्रवादी गणेश शंकर विद्यार्थी¹⁵⁹ ने लिखा था, “संसार के किसी भी देश में तू (प्रताप) होता तो तेरी पूजा होती और तेरे नाम पर लोग

अपने को न्यौछावर करते। (यदि तू) अमेरिका में होता तो वाशिंगटन या नेलसन को तेरे आगे झुकना पड़ता। फ्रांस में जान आफ आर्क तेरी टक्कर में गिनी जाती और इटली तुझे मैजिनी के मुकाबले रखता।” एक विद्वान ने प्रताप को अकबर के विरुद्ध “भारत की प्रधान तात्विक भावना का प्रतीक” माना है। भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में कभी भी अकबर की जय नहीं बोली गई जबकि महाराणा प्रताप सदैव प्रेरणा तथा क्रांति का प्रतीक रहा।

राष्ट्रियता के प्रेरक पुरुषों में यही बात शिवाजी के बारे में मानी जाती है। जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे ने शिवाजी को एक महान संघर्ष तथा तपस्या का परिणाम बताया है। वामपंथी इतिहासकार शिवाजी को भी औरंगजेब की तुलना में राष्ट्रीय मानने को तैयार नहीं हैं। उनके महासंघर्ष को देश के साथ जोड़ने से उन्हें लज्जा आती है, बल्कि इस सन्दर्भ में वे सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, जस्टिस रानाडे, पं. मदनमोहन मालवीय, आर.सी. दत्त व लोकमान्य तिलक को भी नहीं बख्शाते।¹⁶⁰ वास्तव में इन सभी विद्वानों ने राणा प्रताप शिवाजी तथा गुरुगोविंद को राष्ट्रीय महान पुरुष माना है। जदुनाथ सरकार ने लिखा, “शिवाजी जैसा सच्चा नेता सम्पूर्ण मानव जाति के लिए एक अद्वितीय देन है।”¹⁶¹

यह सर्वविदित है कि शिवाजी द्वारा हिन्दवी स्वराज्य की स्थापना का लक्ष्य औरंगजेब जैसे ‘जार’ से भिन्न था। उनके द्वारा प्रारम्भ किया आन्दोलन कोई व्यक्तिगत आन्दोलन नहीं था बल्कि एक देशव्यापी आन्दोलन था। इसका लक्ष्य था हिन्दुत्व की रक्षा तथा भारतभूमि से विदेशी साम्राज्य को नष्ट करके एक विशाल हिन्दू साम्राज्य की स्थापना करना। यह लिखना अनुचित न होगा कि, न केवल मुगलों ने बल्कि तत्कालीन सभी शक्तियों ने उनका लोहा माना था। ऐसी परिस्थिति में हर समय घोड़े की पीठ पर रहने वाले शिवाजी की तुलना पालकी में बैठकर युद्ध करने वाले औरंगजेब से करना किसी भी दृष्टि से न्यायोचित नहीं है। भारत के किसी भी राष्ट्रीय आन्दोलन में, किसी भी राष्ट्रीय स्मृति, किसी भी जुलूस, किसी भी राष्ट्र जागरण में कहीं भी कोई औरंगजेब

की जयजयकार करता नहीं दिखलाई देगा। इसके विपरीत शिवाजी महाराज का जयघोष के बिना कोई राष्ट्रीय संघर्ष पूरा नहीं होता।

इसी भांति गुरु गोविन्द सिंह का व्यक्तित्व तथा कृतित्व भारतीय इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ है। गुरु गोविंद सिंह समस्त समाज को बिना किसी भेदभाव के, भयमुक्त तथा निस्वार्थ भावना से ओतप्रोत किया। गुरु गोविन्द सिंह का औरंगजेब के नाम विजयपत्र (जफरनामा) उनकी वीरता, धीरता तथा श्रेष्ठता का द्योतक है। गुरु गोविन्द सिंह के संघर्ष कोई व्यक्तिगत प्रतिष्ठा या भूमि के विस्तार के लिए न थे बल्कि स्वदेश की रक्षा तथा स्वधर्म की स्वतन्त्रता के लिए थे। उन्होंने खालसा पंथ की स्थापना कर सम्पूर्ण राष्ट्र को नवजीवन तथा संजीवनी बूटी दी। उनके नेतृत्व में 14 लड़ाइयां लड़ी गई थी।

अतः निष्कर्ष में यह सत्य है कि मुगल शासक विदेशी, आक्रमणकारी, साम्राज्यवादी तथा धर्मान्ध थे। उन्हें न भारत भूमि से कोई लगाव था और न ही भारतीयों से। इन अभारतीय आक्रमणकारी शासकों को राष्ट्रीयता की गरिमा से मंडित करना सर्वथा अनुचित तथा देशघातक है। इसके विपरीत शिवाजी तथा गुरुगोविन्द सिंह जैसे राष्ट्रभक्तों तथा महा बलिदानियों पर प्रत्येक भारतीय को गर्व करना चाहिए।

अध्याय-तीन

सन्दर्भ सूची

1. जयदीप सेन, भारत में जिहाद (नई दिल्ली, 2001), देखें प्रथम पृष्ठ
2. विस्तार के लिये देखें, सतीशचन्द्र मित्तल, मुस्लिम शासक तथा भारतीय जन समाज (नई दिल्ली, 2007), पृ. 15
3. ज्योफरी परिन्दर (सं.) एन इलस्ट्रेटेड हिस्ट्री आफ वल्ड्स रीलीजन्स (ग्रेट ब्रिटेन, 1983), पृ. 462
4. सैयद अमीर अली, द स्पिरिट आफ इस्लाम
5. नशीर इकबाल, 'ग्रेपेल्स विद डैफनिशन आफ मुस्लिम', द टाइम्स आफ इंडिया, 5 अगस्त, 2005
6. डेनियल पाइप्स, इन द पाथ ऑफ गॉड, इस्लाम एण्ड पालिटिकल पावर (नई दिल्ली, प्र.सं. 1983, रिप्रिंट 2006), पृ. 14
7. वही, पृ. 19
8. वही, पृ. 19
9. वी.एस. नायपाल, बियॉड बिलीफ : इस्लामिक एक्सकर्शन्स एमंग द कन्वर्टेड पीपुल (पेंगुइन, 2001)
10. हरिकृष्ण निगम, 'इस्लाम और स्वाभिमानी सिख पंथ', राष्ट्रधर्म (मई, 2004), पृ. 21
11. राम स्वरूप, अण्डरस्टैंडिंग इस्लाम थ्रू हदीस, रीलीजन फैथ, ओर फैनैटिज्म (नई दिल्ली, 1984 सं.), पृ. vii; जयदीप सेन, पूर्व उद्धरित
12. वही
13. एस.के. मलिक, कुरानिक कन्सैप्ट आफ वार, पृ. 54
14. विस्तार के लिए देखें, सुहास मजूमदार, द इस्लामिक डोकट्रिन आफ परमानेंट वार (नई दिल्ली, 1994)
15. डॉ. कृष्ण वल्लभ पालीवाल, 'इस्लाम की धार, जिहाद की तलवार', राष्ट्रधर्म (अक्टूबर, 2006), पृ. 31-34
16. एस.जी. मिश्र, हिस्ट्री आफ फ्रीडम मूवमेन्ट इन इंडिया (1857-1947 ई.) (नई दिल्ली, 1991), पृ. 21
17. पुरुषोत्तम सिंह योग, "अलगाव की राजनीति के विष बीज", पाञ्चजन्य (26 अप्रैल, 1990)
18. वचनेश त्रिपाठी, "राष्ट्रभक्ति और देशभक्ति शैतानी बुराईयां हैं।" पाञ्चजन्य (21 जून, 1987); मौलाना मौदूदी, नेशनलिज्म एण्ड इंडिया (द्वि.सं. पठानकोट, 1947), पृ. 24
19. एस.आर. शर्मा, द क्रिसेंट इन इंडिया (आगरा, 1954), पृ. 33
20. के.आर. मल्कानी द सिंध स्टोरी; रामगोपाल, मुस्लिम रूल इन इंडिया (देखें फार्वर्ड सिकन्दर बख्त द्वारा)
21. विलियम वोन पोकहेमर, इंडियाज रोड टू नेशनहुड : ए पोलिटिकल हिस्ट्री आफ इंडियन सब-कन्टीनेन्ट (नई दिल्ली, 1981), पृ. 3
22. चचनामा (अनु. कालुचबेग), उद्धरित, इलियट एण्ड डाऊनसन, हिस्ट्री ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स, भाग एक, पृ. 52, 54; बुलजले हेग, द कैम्ब्रेज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग तीन, पृ. 3
23. अलु विलाधुरी (उद्धरित), इलियट एण्ड डाऊनसन, पूर्व उद्धरित, भाग एक, पृ. 170
24. चचनामा (उद्धरित), वही, भाग एक, पृ. 82
25. डॉ. रामगोपाल मिश्र, इंडियन रेजीस्टेन्स टू अर्ली मुस्लिम इनवेर्ड्स अपटू 1206 (मेरठ), पृ. 20
26. वही, पृ. 22
27. डॉ. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, द सल्तनत आफ दिल्ली (आगरा, 1950), पृ. 33
28. स्टेनेली लेनपूल, मेडिवल इंडिया अण्डर मोहम्मडन रूल (712-1764 ई.) (प्र.सं. 1903, रिप्रिंट लन्दन, 1925), पृ. 12
29. डॉ. ईश्वरी प्रसाद, हिस्ट्री आफ मेडिवल इंडिया (इलाहाबाद, 1933), पृ. 73
30. वही, पृ. 75
31. स्टेनेली, लेनपूल, पूर्व उद्धरित, पृ. 12
32. डॉ. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, पूर्व उद्धरित, पृ. 60
33. वही, पृ. 60
34. मुल्ला मोहम्मद कासिम हिन्दूशाह फरिश्ता, तारीखे-फरिश्ता (फारसी से हिन्दी अनुवाद डॉ. नरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव) (लखनऊ, 2003), पृ. 47
35. वही, पृ. 53
36. वही, पृ. 59

37. भीषण संघर्ष के विशद वर्णन के लिए देखें, डा. राम गोपाल मिश्र, पूर्व उद्धरित; अशोक कुमार सिंह का शोध ग्रन्थ, सल्तनत कालीन हिन्दू प्रतिरोध; के.एम. मुन्शी, जय सोमनाथ; आचार्य चतुरसैन शास्त्री, सोमनाथ, सतीशचन्द्र मित्तल, मुस्लिम शासक तथा भारतीय जन-समाज, पृ. 33-35
38. रोमिला थापर, ए हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग एक (पेंगुइन, ग्रेट ब्रिटेन, 1966 रिप्रिंट, 1984), पृ. 232-234
39. वही, पृ. 233; एस. शंकर, रोमिला थापर का महमूद, दैनिक जागरण (1 जून, 2004)
40. ओमप्रकाश, जाहवीर गोगा जी चौहान (धर्मरक्षक गोगा बापा की बलिदान गाथा) (उदयपुर, 2011)
41. विलियम बोन पोकहेमर, पूर्व उद्धरित, पृ. 231
42. विलियम बोन पोकहेमर, पूर्व उद्धरित, पृ. 231; के.एस. लाल, मुस्लिम स्लेव सिस्टम इन मेडिवाल इंडिया (नई दिल्ली, 1994), पृ. 20-24
43. के.एस. लाल, पूर्व उद्धरित, पृ. 19-24
44. देखें, के.एस. लाल के विभिन्न ग्रन्थ - मुस्लिम स्टेट इन इंडिया (नई दिल्ली, 1999), पृ. 62; अली मुस्लिम इन इंडिया (नई दिल्ली, 1984), पृ. 30-33, 92; ग्रोथ आफ मुस्लिम पोपुलेशन इन इंडिया (नई दिल्ली, 1973), पृ. 212-217
45. गेजेटियर आफ अवध, 1877, पृ. 111-112
46. विस्तार के लिए, सतीशचन्द्र मित्तल, मुस्लिम शासक तथा भारतीय जन समाज, पृ. 32-34
47. अर्जुनदेव, द स्टोरी आफ सिविलाइजेशन, भाग दो (नई दिल्ली, 1989 सं.), पृ. 380
48. मुल्ला मोहम्मद कासिम हिन्दूशाह फरिश्ता, पूर्व उद्धरित।
49. 'हमीर महाकाव्य' में न्यायचन्द्र सूरी ने पृथ्वीराज के सात संघर्षों, 'पृथ्वीराज रासो' में चन्दरबरदाई ने व मृत्युंजय ने व मृत्युंजय ने 'प्रबन्ध चिंतामणि' में 21 आक्रमणों का वर्णन किया है। डा. दशरथ शर्मा ने 1186 ई. से लगातार संघर्षों का वर्णन किया है। हसन निज़ामी ने केवल दो प्रमुख आक्रमणों का वर्णन किया है। देखें, हरियाणा इन्साइक्लोपीडिया, इतिहासखण्ड, भाग दो, पृ. 145
50. डा. ईश्वरी प्रसाद, ए न्यू हिस्ट्री आफ इंडिया (इलाहाबाद, 1956), पृ. 140; स्टेनली लेनपूल, पूर्व उद्धरित, पृ. 52
51. डा. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास (1000-1707 ई.) (आगरा, 1965), पृ. 222
52. हरियाणा इन्साइक्लोपीडिया, इतिहास खण्ड, भाग दो (नई दिल्ली, 2011), पृ. 55, 144
53. डा. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ. 223
54. डा. ईश्वरी प्रसाद, हिस्ट्री आफ मैडिवाल इंडिया (फ्राम 647 ए.डी. टू द मुगल कानक्वेस्ट) (इलाहाबाद, 1933), पृ. 150
55. आर.सी. मजूमदार, द हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ इंडियन पीपुल (मुम्बई), पृ. 112
56. हसन निज़ामी, ताज-उल-मासिरी (अनु.), इलियट एण्ड डाउनसन, पूर्व उद्धरित, भाग दो, पृ. 215
57. वही, पृ. 222
58. वही, पृ. 223
59. वही, पृ. 223
60. एस.आर. शर्मा, पूर्व उद्धरित, पृ. 169
61. विलियम बोन पोकहेमर, पूर्व उद्धरित, पृ. 233
62. वी.ए. स्मिथ, द आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ. 223
63. वही, पृ. 223
64. डा. अरनोल्ड, द कैलिफाट्स
65. डा. मोहन यादव, उज्जयिनी का पर्यटन (उज्जैन, 2012), पृ. 29
66. मिंहाज-उस-सिराज, तबकाते नासिरी (अनु. सैयद अहमद अब्बास रिजवी) देखें, आदि तुर्ककालीन भारत (अलीगढ़), पृ. 176
67. वूल्जले हेग, पूर्व उद्धरित, देखें भाग तीन
68. डॉ. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास (1000-1707 ई.), पृ. 106
69. रतिभानुसिंह नाहर, पूर्व मध्यकालीन भारत
70. जियाउद्दीन बरनी, तारीख-ए-फिरोजशाही (अनु. सैयद अहमद अब्बास रिजवी), देखें खिलजी कालीन भारत (अलीगढ़), पृ. 54
71. डा. ईश्वरी प्रसाद, हिस्ट्री आफ मैडिवाल इंडिया, पृ. 269-270
72. विस्तार के लिए देखें, सतीश चन्द्र मित्तल, 'देवल रानी और खुशरो खां', पाञ्चजन्य, 28 जून

2009

73. सुल्तान फिरोजशाह, फतूहाते-ए-फिरोजशाही (अनु. रिजवी), देखें, तुगलककालीन भारत, भाग दो (अलीगढ़), पृ. 326-327
74. विस्तृत अध्ययन के लिए देखें, सतीशचन्द्र मित्तल, अविस्मरणीय विजयनगर साम्राज्य एवं महाराजा कृष्णदेव राय (नई दिल्ली, 2007); रोबर्ट सैवल, ए फोरगोटन एम्पायर, विजयनगर, ए कन्ट्रीव्यूशन टू द हिस्ट्री (प्र.सं. 1900, चौथा सं. नई दिल्ली, 1987); डा. वी.सी. रे, द मिस्ट्री आफ विजयनगर (मद्रास, 1905); ए.एच. लोग, हम्पी रुइन्स (मद्रास, 1917); सेलेटोर, सोशल एण्ड पालिटिकल लाईफ इन द विजयनगर एम्पायर, दो भागों में
75. अब्दुर रज्जाक, मतला-उस-सांदीन (अनु.) इलियट एण्ड डाउसन, पूर्व उद्धरित, भाग चार, पृ. 105-120
76. वी.एम. नायपाल, 'इण्डिया', ए मिलियन म्युटीनीज नाउ
77. अनिरुद्ध राय, 'द राईज एण्ड फॉल आफ विजयनगर - ए अल्टरनेटिव हाइपोथेसेज टू हिन्दू नेशनलिस्ट्स थीसीस', इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस प्रोसीडिंग्स, 64वां अधिवेशन, मैसूर, 2003 (प्रकाशित पटना, 2004 में), पृ. 428-429
78. एल एसकाइन, हिस्ट्री आफ इंडिया अंडर द हाउस आफ तैमूर, बाबर एण्ड हिमायूँ, भाग एक (लन्दन, 1854), पृ. 406
79. आर.पी. त्रिपाठी, सम एसपैक्ट्स आफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया (इलाहाबाद, 1936) : डा. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ. 1
80. डा. ईश्वरी प्रसाद, हिस्ट्री आफ मैडीवल इंडिया, पृ. 576
81. डा. जदुनाथ सरकार, औरंगजेब, भाग तीन, पृ. 249
82. बिपिन चन्द्र, माडर्न इंडिया (नई दिल्ली, संस्करण 2005), पृ. 1
83. विस्तृत अध्ययन के लिए देखें, सतीशचन्द्र मित्तल, मुस्लिम शासक और भारतीय जन समाज, पृ. 87-120
84. बाबर, बाबरनामा या तुजुक-ए-बाबरी (अनु. रिजवी) (अलीगढ़)
85. वही
86. वही
87. वही
88. वही
89. वही
90. कर्नल टाड, द एनेल्स एण्ड इन्टीक्यूटीज आफ राजस्थान (देखें, भाग एक)
91. प्रो. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ. 360
92. कर्नल टाड, पूर्व उद्धरित, भाग एक, पृ. 241
93. लेनपूल, पूर्व उद्धरित
94. प्रो. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ. 360
95. बाबरनामा, पूर्व उद्धरित
96. वही, पृ. 249
97. वही, पृ. 251
98. वही, पृ. 267
99. देखें, श्रीमती सुरेन्द्र कौर व तपन सान्याल, टूवर्ड्स कम्युनल हारमनी, ए सेकुलर एम्परर बाबर (सरहिन्द, 1987); साथ ही इनके उत्तर में देखें, सतीशचन्द्र मित्तल, 'श्री रामजन्म भूमि - बाबरी मस्जिद, कुछ ऐतिहासिक प्रमाण', पञ्चनन्द शोध संस्थान (चण्डीगढ़, 2010) भाग XVIII, नं. 1
100. देखें, मिसेज ए.एस. बैनरेज का बाबरनामा का अंग्रेजी अनुवाद
101. तरुण विजय, 'बाबर की याद भारत के सम्बन्ध को मजबूत करेगी', पाञ्चजन्य, 5 अगस्त 1990
102. रशब्रुक विलियम्स, बाबर : ऐन ऐम्पायर बिल्डर इन द सिक्सटीन सेंचुरी (लन्दन, 1918)
103. सतीश चन्द्र मित्तल, 'भारत मुसलमान बाबर से घृणा करते थे', पाञ्चजन्य, 29 अगस्त, 2010
104. एस.के. बैनर्जी, हिमायूँ बादशाह (आक्सफोर्ड, 1935), पृ. 3
105. सतीशचन्द्र मित्तल, मुस्लिम शासक तथा भारतीय जन समाज, पृ. 95
106. सतीशचन्द्र मित्तल, हिन्दुओं का राजनीतिक प्रतिरोध, पाञ्चजन्य, 19 अगस्त, 2007, पृ. 30; डा. राजेन्द्र सिंह कुशवाहा, ग्लिमप्सेज आफ भारतीय हिस्ट्री (नई दिल्ली, 2003), पृ. 297-298; विस्तार के लिए वीटू सज्जन, छन्दराय जैतसी; श्यामदास, वीर विनोद (दिल्ली, 1986)
107. वी.ए. स्मिथ, अकबर द ग्रेट मुगल, पृ. 1
108. विवियन, अकबर, पृ. 16; अकबर के दरबार में ईसाई पादरी अस्वा बीबा ने लिखा है कि अकबर इतनी शराब पीता था कि वह मेहमान से बात करते सो जाता था।
109. देखें अबुल फजल, अकबरनामा; डा. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने हरम की संख्या 5000

- बतलाई है, देखें, भारत का इतिहास, पृ. 603; विस्तार के लिए देखें, के.एस. लाल, द मुगल हरम
110. डा. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृ. 482
 111. वही, पृ. 485
 112. वही, पृ. 485
 113. विवियन, पूर्व उद्धरित, पृ. 496
 114. डा. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, पूर्व उद्धरित, पृ. 496
 115. वी.ए. स्मिथ, अकबर द ग्रेट मुगल (1542-1605 ई.) (प्र.सं. 1917, रिप्रिंट दिल्ली, 1962), पृ. 50-51
 116. वी.बी. कुलकर्णी, हिरोज हू मेक हिस्ट्री (मुम्बई, 1965), पृ. 65
 117. बिशप ऐयरे चैटरसन, द हिस्ट्री आफ गोंडवाना, उद्धरित, वी.वी. कुलकर्णी पृ. 66
 118. वही, पृ. 46
 119. वी.ए. स्मिथ, पूर्व उद्धरित
 120. डा. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, पूर्व उद्धरित, पृ. 497
 121. वही, पृ. 498
 122. वी.वी. कुलकर्णी, पूर्व उद्धरित, पृ. 45
 123. वही, पृ. 47
 124. वही, पृ. 49
 125. डा. राजेन्द्र सिंह कुशवाला, पूर्व उद्धरित, पृ. 311-314
 126. देखें, डा. रामविलास शर्मा, इतिहास दर्शन
 127. वी.ए. स्मिथ, पूर्व उद्धरित
 128. वही, पृ. 48
 129. देखें, निजामुद्दीन अहमद, तबकाते अकबरी, भाग तीन; विवियन, पूर्व उद्धरित, पृ. 62
 130. डा. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, पूर्व उद्धरित, पृ. 518
 131. वही, पृ. 519
 132. वही, पृ. 519
 133. वी.ए. स्मिथ, पूर्व उद्धरित, पृ. 159

134. वही, पृ. 159; एस.सी. मित्तल, इंडिया डिस्टोरटेड: ए स्टेडी आफ ब्रिटिश हिस्टोरियन्स आन इंडिया, भाग तीन, पृ. 412
135. अमृत्यु सेन, द आरग्यूमेन्टेन्टीय इंडियन (पेंगुइन, 2005), पृ. 331
136. वी.ए. स्मिथ, पूर्व उद्धरित, पृ. 160
137. वही, पृ. 160
138. देखें, 14 अगस्त 1947 को पाकिस्तान की संविधान सभा में लार्ड माउन्टबेटन का भाषण, इंडियन एक्सप्रेस (15 अगस्त, 1947); अकबर के प्रति नीति के विस्तार के लिए देखें, हरबन्स मुखिया, हिस्टोरियन्स एण्ड हिस्टोग्रेफी ड्यूरिंग द रेन आफ अकबर (नई दिल्ली, 1976)
139. एस.सी. मित्तल, इंडिया डिस्टोरटेड: ए स्टेडी आफ ब्रिटिश हिस्टोरियन्स आन इंडिया, भाग एक, पृ. 93-94
140. बेनी प्रसाद, हिस्ट्री आफ जहांगीर (द्वितीय सं. इलाहाबाद, 1930), पृ. 27; डा. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, पूर्व उद्धरित, पृ. 703
141. वी.ए. स्मिथ, द आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ. 397
142. डॉ. आशीर्वादी लाला श्रीवास्तव, पूर्व उद्धरित, पृ. 703
143. वही, पृ. 703
144. सतीश चन्द्रा, मध्यकालीन भारत भाग दो (नई दिल्ली, 1986 सं.), पृ. 85
145. देखें, सतीशचन्द्र मित्तल, 'गुरु गोविन्द का औरंगजेब को विजयपत्र' पाञ्चजन्य, 22 मई 2011, जफरनामा का अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ। हिन्दी में बालकृष्ण मुंजतर (कुरुक्षेत्र, 1990), जनजीवन जोत सिंह आनन्द ने देहरादून, 2006) में अनुवाद किये, गुरुमुखी में महेन्द्रसिंह तथा सुरेन्द्रजीतसिंह न इसका अंग्रेजी से अनुवाद किया। इससे पूर्व नवतेज सिंह सरन ने भी इसका अंग्रेजी में अनुवाद किया था।
146. देखें, श्री गुरुजी समग्र दर्शन, खण्ड 6, पृ. 77; अफजल खां के जीवन तथा उसकी वध के घटना के लिए देखें, सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय : महान संगठक शिवाजी (दिल्ली, 1977), पृ. 124-136
147. सतीशचन्द्र मित्तल, 'शिवाजी का राज्याभिषेक', श्री हंडरेड एनीवर्सरी आफ कोरोनाशन आफ छत्रपति शिवाजी महाराज (सोविनियर, महाराष्ट्र सरकार, नई दिल्ली, 1974), पृ. 60-63
148. जदुनाथ सरकार, शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स, (कोलकाता, 1928), पृ. 405; एस.डी. कुलकर्णी, ए स्टेडी आफ इंडियन कल्चर, भाग चार, पृ. 138
149. हृदय नारायण दीक्षित, 'अकबर की याद का अवसर', दैनिक जागरण, 3 फरवरी 2006

150. दारा शिकोह, सिरै अकबर (उद्धरित), सतीशचन्द्र मित्तल, मुस्लिम शासक तथा भारतीय जन समाज
151. रामधारी सिंह 'दिनकर', संस्कृति के चार अध्याय
152. जदुनाथ सरकार, ए शोर्ट हिस्ट्री आफ औरंगजेब, पृ. 393
153. स्टेनली लेनपूल, पूर्व उद्धरित, पृ. 423
154. बिपीन चन्द्रा, माडर्न इंडिया (नई दिल्ली, 2005), लेखक ने अपनी पुस्तक का प्रारम्भ ही महान मुगल साम्राज्य से प्रारम्भ किया, देखें पृ. 1
155. इस सन्दर्भ में वामपंथी चिन्तन की दिशा को समझने के लिए देखें, रोमिला थापर, हरबन्स मुखिया तथा विपिन चन्द्र, कम्युनिलिज्म एण्ड द राइटिंग आफ इंडियन हिस्ट्री (नई दिल्ली, 1977), पृ. 58-60
156. डा. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, मुगल एम्पायर (1526-1803 ई.) (दिल्ली, 1952), पृ. 545-546
157. डब्ल्यू.डब्ल्यू. हण्टर, ए ब्रीफ हिस्ट्री आफ इंडियन पीपुल्स (लन्दन, 1895 सं.), पृ. 154
158. सज्जन सिंह राणावत, इतिहास में प्रताप का स्थान - प्रताप एक आदर्श, राजस्थान की गौरवशाली परम्परा (बाबा साहब आठे जन्म शताब्दी समारोह, उदयपुर, 2003-04), पृ. 92
159. वही, पृ. 92-93
160. रोमिला थापर, हरबन्स मुखिया व बिपीन चन्द्र, पूर्व उद्धरित, पृ. 58
161. जदुनाथ सरकार, शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स, पृ. 450

अध्याय-चार

भक्ति आन्दोलन : एक महान राष्ट्रशक्ति का जागरण

मध्ययुगीन भारतीय में भक्ति आन्दोलन एक अद्भुत भक्ति और शक्ति का समन्वय था। यह हृदय में ईश्वर भक्ति तथा मन में राष्ट्र प्रेम जगाने का एक अत्यन्त श्रेष्ठ प्रयास था। यह वह काल था जब इस देश का हिन्दू समाज मुस्लिम आक्रांताओं के अत्याचारों से ग्रसित था। नर संहार इतनी मात्रा में था जो हिन्दू समाज की जनसंख्या को अत्याधिक प्रभावित कर रहा था। अनेक हिन्दू मंदिरों तथा अन्य श्रद्धा केन्द्रों को ध्वंसित किया जा रहा था। समस्त हिन्दु समाज को द्वितीय या तृतीय श्रेणी का जागरिक माना जाता था। वस्तुतः मुस्लिम आक्रमणकारियों तथा शासकों का उद्देश्य भारत जैसे देश को दारुल हरब से दारुल इस्लाम बनाना था। अतः दो मार्ग ही थे - इस्लाम धर्म अपनाओ अथवा मृत्यु के लिए तत्पर हो जाओ। शरियत के चारों प्रमुख चिन्तकों में सिफ अबू हनीफ (699-766 ई.) के मूर्ति पूजकों के लिए अथवा काफिरों के लिए एक अन्य रास्ता भी छोड़ा था कि वे 'जिम्मी' बन जायें तथा जज़िया दें।'

ऐसे भय और निराशा के वातावरण में भक्ति आन्दोलन की सतत धारा हिन्दू समाज में निरन्तर विश्वास, आस्था के साथ आशामय वातावरण बनाती रही। उसने हिन्दुओं में आत्म विश्वास जगाये, जीने की आशा जगाई तथा भविष्य का मार्ग सुझाया। अतीत के प्रति आस्था जागृत की तथा सांस्कृतिक जीवन मूल्यों की रक्षा के लिए प्रेरित किया। भारतीय जीवन में आध्यात्मिकता तथा धर्म रक्षा की भावना जागी। इसका प्रकटीकरण समय-समय पर भक्ति आन्दोलन के रूप में विकसित तथा प्रसारित हुआ।

यह सोचना नितांत भ्रामक तथा तथ्यरहित होगा कि भक्ति आन्दोलन कोई साझा

आन्दोलन या हिन्दू-मुस्लिम के सम्मिलित प्रयत्नों का प्रतिफल था। यद्यपि कुछ इस्लाम से अत्याधिक प्रभावित इतिहासकारों ने इसे इस्लाम की देन² बतलाया है। कुछ ईसाई विचारकों³ ने इसे ईसाईयत की देन भी लिखा है। परन्तु उपरोक्त कथन अर्थहीन, तर्कहीन तथा व्यक्तिगत मानसिकता को दर्शाते हैं न कि सामूहिकता तथा ऐतिहासिकता को बोध। भक्ति आन्दोलन विशुद्ध रूप से एक महान राष्ट्रीय आन्दोलन रहा जिसका उद्देश्य निराश हिन्दू समाज में आशा का संचार तथा जागरण था। अपवाद रूप में इससे यदाकदा कुछ भारतीय मुस्लिम भी प्रभावित अवश्य हुए। यह भारत तथा भारतीयों की सुरक्षा के लिए था।⁴ यह भी सोचना उचित न होगा कि भक्ति आन्दोलन केवल भक्तों का आन्दोलन था बल्कि यह हिन्दू आचार्यों, सन्तों, भक्तों, गुरुओं, सुधारकों, लेखकों की सामाजिक-धार्मिक चेतना का स्वर था जो समस्त मुस्लिम शासकों के काल में किसी न किसी स्थान अथवा प्रदेश में गुंजित होता रहा।

इस्लाम से पूर्व भारत में भक्ति की धारा

यह सर्वज्ञात है कि भक्ति का जन्म तथा विकास भारत की प्राचीन परम्पराओं में ही निहित है। अनेक देश-विदेश के विद्वानों ने इसका वर्णन किया है। प्रसिद्ध विद्वान मैकनीकोल ने लिखा, “यह हिन्दू धर्म की आत्मा के द्वारा किया हुआ वह प्रयत्न कहा जा सकता है जिसके द्वारा उसने अन्धविश्वासों में जकड़ी हुई जाति को जगाने का प्रयत्न किया और वह जाति अपनी गहरी नींद से अंगड़ाई लेकर उठ खड़ी हुई तथा उसने भक्ति के प्रकाश द्वारा अपने को मुक्त अनुभव किया।” इसी भांति एक अन्य स्थान पर उसने लिखा, “भक्ति आन्दोलन की जड़ें बहुत पुरानी हैं और इस्लाम ने केवल इसकी प्रगति को भारत के कुछ भागों में तीव्र करने में सहायता मात्र की।”

भारत में भक्ति की परम्परा न इस्लाम धर्म की देन है और न ही उनके अत्याचारों का परिणाम। बल्कि इसकी जड़ें बहुत गहरी हैं। वैदिक साहित्य भक्ति का अक्षय भण्डार

है। अकेले ऋग्वेद में विभिन्न देवों की स्तुतियां हैं। उपनिषद् काल में चिंतन की प्रधानता है। भागवत धर्म की तभी स्थापना हुई। गीता में ज्ञान, भक्ति तथा कर्म के तीन मार्ग बतलाये हैं।

ऐसा ज्ञात होता है कि भक्ति की भावना उत्तर से अधिक दक्षिण भारत में तीव्रता से विकसित हुई। उदाहरण के लिए सैंकड़ों वर्षों पहले दक्षिण में आलवार भक्त हुए।⁵ वे आध्यात्मिक ज्ञान से ओतप्रोत थे। उनमें 12 आलवार भक्त बहुत प्रसिद्ध हुए। ये सभी विष्णु के असीम भक्त थे। यद्यपि इनका कालखण्ड बताना कठिन है। परन्तु इनमें अत्याधिक प्राचीन चार ऋषि माने जाते हैं। ये हैं पोयगै, भूतैर, पेय और तिरुमल्लिशै। इनमें पोयगै कांचीपुरम के निकट बेहका स्थान में जन्मे थे। पोयगै का अर्थ है तालाब। कमल पुष्पों के तालाब के निकट जन्मे होने के कारण इनका यह नाम पड़ा। ये विष्णु के परम भक्त थे। इन्होंने एक पुस्तक मुदूर्तिरुवन्दादि लिखी जिसमें विष्णु के विभिन्न अवतारों का वर्णन है। भूतैर तिरुकडन मल्लै (वर्तमान महाबलिपुरम) में जन्मे। इन्होंने भगवान विष्णु पर एक पुस्तक लिखी, पेय मयिलै (वर्तमान मयिलापुर) में जन्मे। भक्ति करते करते ये अत्यधिक भावविह्वल हो जाते थे। अतः इन्हें मतिभ्रष्ट (मूढ़) कहते तथा ‘पेय’ पुकारते थे। इनमें चौथे तिरुमल्लिशै थे। इनकी दो रचनायें – तिरुच्चन्द-विरुत्तम् और नानमुखन् तिरुवन्दादि हैं जो प्रसिद्ध हैं।

इसी भांति आलवार संत इसके बाद के माने जाते हैं। इनके नाम हैं नम्मालवार, मधुरकवि, कूलशेखर, पैरिय अलवार तथा अन्दाळ। इसमें नम्मालवार का नाम सर्वोपरि है। ये एक अब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए। इन्होंने कई ग्रन्थों की रचना की। इनके ग्रन्थों में राम व कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है। दूसरे तमिल भाषा में मधुर पदों की रचना करने के कारण इन्हें मधुर कवि कहा गया। इनका जन्म तिरुक्लोलूर में हुआ था। इन्होंने भारत के तीर्थ स्थलों की यात्रा की तथा ये नम्मालवार को अपना गुरु मानते थे। कूलशेखर

का जन्म चेर सम्राट दृढव्रत के घर हुआ था। राम के अनन्य भक्त थे। तमिल तथा संस्कृत भाषाओं में कई रचनायें जो पेरुमाल तिरुमोलि तथा मुकुन्दमाला के नाम से प्रसिद्ध हैं। पैरिय अलवार का जन्म विष्णुहरि के परम भक्त मुकुन्द पट्टर के घर हुआ था। इन्होंने तत्कालीन पाणिडय राजा वल्लभदेव की सभा में अपनी विद्वता के कारण पट्टरपिरान (ब्राह्मण श्रेष्ठ) की उपाधि प्राप्त की थी। इन्होंने सूरदास की भांति कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन किया। इन्हें पैरिय (महान) आलवार कहा जाता है। अन्दाल का जन्म बिल्लपुत्तूर में हुआ था। ये गोपिका की भांति भगवान की भक्ति करती थी। एक विद्वान का मत है कि उत्तरी भारत में जो स्थान मीरा का है, वह ही दक्षिण भारत में भक्तिमती अन्दाल का है।⁶

कालान्तर में तिरुमंगै आलवार, तिरुप्पाण आलवार, तोण्डरडिपोडि अलवार हुए। तिरुमंगै, कुरैयलूर नामक स्थान पर कल्लर जाति में पैदा हुए थे। तमिल, संस्कृत भाषाओं में निपुणता के साथ युद्धकला में भी श्रेष्ठ थे। इन्होंने छह ग्रन्थ लिखे जो वेदांग के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये परम वैष्णव भक्ति तथा वैष्णव दर्शन के ज्ञाता थे। तिरुप्पाणर (पवित्र पाणर) कहते थे। तोण्डरडिपोडि का जन्म मण्डकुडि नामक स्थान पर हुआ। ये श्रीहरि विष्णु के भक्त थे। कई ग्रन्थ लिखे। तोण्डर (भक्त) के तिरुवडिपोडि (चरण धूलि) को धारण करने के कारण इनको उपरोक्त नाम से पुकारा गया।

इस भांति दक्षिण में वैष्णव भक्त आलवार के प्रसिद्ध बारह प्रसिद्ध भक्त माने जाते हैं। इनका जीवन काल यद्यपि निश्चित रूप से कहना कठिन है, परन्तु सामान्य 7वीं शताब्दी से 9वीं शताब्दी के मध्य का माना जाता है। ये सभी भक्त विभिन्न जातियों तथा समाज के विभिन्न स्तरों के थे परन्तु प्रभु भक्ति में अग्रणी थे।

इसी भांति तमिल सन्तों तथा भक्तों में नयनामार शैवमत के उपासक थे। ये सभी शिव के अनन्य भक्त थे। ये भी विभिन्न जातियों के थे। इनकी संख्या 63 है। इनमें अप्परा

(600-681 ई.) साम्बान्दर (644-660 ई.) तथा मानिक कवाचक्र (660-692 ई.) तथा सुन्दरा (710-735 ई.) प्रसिद्ध हैं। संक्षेप में इस्लाम से पूर्व दक्षिण भारत में आलवार तथा नयनामार अर्थात् वैष्णव तथा शैव मत था। शैवमत से भी तमिलनाडु में एक नव चेतना जगाई। परिणामस्वरूप पांडय तथा चोल शासकों ने अनेक मंदिरों का निर्माण किया तथा ये मंदिर समाज की अनेक गतिविधियों – शिक्षा, सेवा, सुरक्षा, न्याय, प्राकृतिक प्रकोप से रक्षा आदि के केन्द्र बन गये। रामायण तथा गीता ने सम्पूर्ण दक्षिण भारत में वहां के नवयुवकों में चेतना तथा सांस्कृतिक वातावरण जगाया तथा भारतीय राष्ट्रीय भावनाओं को उदीप्त किया।

उत्तर भारत में भी भक्ति की लहर की परम्परा नई न थी। डा. दिनेशचन्द्र सेन ने इसका विस्तृत विचार तथा विश्लेषण किया है। ऋग्वेद में देवों की स्तुतियों का वर्णन है जिसमें दास्य भाव से भक्ति की गई है। उत्तर भारत में रचा वैदिक तथा संस्कृत साहित्य इस भक्ति की धारा से परिपूर्ण है। छठी शताब्दी ई.पू. भारत के उत्तर पश्चिम से सतत विदेशी आक्रमणों के पश्चात् भी भक्ति की यह धारा अविरल रूप से बहती रही। यूनानी राजदूत मैगस्थनीज ने भी यवनों द्वारा हरिकृष्ण पूजा का वर्णन किया है। पुष्यमित्र शुंग के काल में भक्ति का प्रचार हुआ। भक्ति के कारण ही कनिष्क के काल में बौद्धधर्म दो भागों में विभक्त हो गया। महायान भक्ति का द्योतक बना। गुप्त शासकों ने भक्ति को महत्व दिया। अतः भक्ति की धारा कोई नवीन बात न थी। यह भारत की प्राचीन परम्पराओं के अनुरूप थी।

डा. ताराचन्द्र ने लिखा, “इस्लाम के आगमन से पूर्व भारत में एकेश्वरवाद था ही नहीं और शंकर जैसे आचार्य की शिक्षा पर भी इस्लाम का प्रभाव पड़ा था।” यह कथन प्रमाणों के आधार पर सत्य नहीं है। वस्तुतः नवीन खोजों के आधार पर आदि शंकराचार्य के जीवन काल के बारे में अनेक भ्रांतियां फैलाई गई थीं। ब्रिटिश विद्वान ए.

बी. कीथ ने अपने ग्रन्थ में⁸ अपनी संभावित राय देते हुए आदि शंकर का जन्म 788 ई. में हो सकता है और सम्भवतः उनका निधन 820 ई. में हो गया या वे सन्यासी हो गए। ब्रिटिश विद्वान की इस सम्भावना को कुछ विद्वानों ने सही मान लिया। इसका शिकार इस्लाम भक्त भारतीय इतिहासकार ताराचन्द्र भी हुए। नवीनतम खोज के आधार पर युग प्रवर्तक, अद्वैत दर्शन के महान उन्नायक तथा भारतीय राष्ट्रीय एकता के महान पोषक शंकराचार्य का जन्म 509 ई. पूर्व तथा देहावसान 477 ई. पूर्व हुआ था अर्थात् जब वह केवल 32 वर्ष जीवित रहे। इस कथन का विस्तृत प्रमाण शंकराचार्य के मठों से प्राप्त आचार्यों की क्रमबद्ध नामावली तथा उसकी अवधि, जैन तथा बौद्ध साहित्य तथा समय-समय पर आचार्यों के ग्रन्थ हैं।⁹ शंकराचार्य ने चार मठों अथवा पीठों की स्थापना - ज्योतिर्पीठ बद्रीनाथ, शारदापीठ-द्वारिका, श्रंगेरी मठ तथा गोवर्धन पीठ-पुरी की स्थापना की थी। अनेक आधुनिक विद्वान भी उनकी जन्मतिथि 509 ई. पूर्व ही मानते हैं।¹⁰ प्रसिद्ध विद्वान डा. दिनेश चन्द्र का यह कथन सत्य है, “हिन्दू प्रचारक ने मुसलमानों के आगमन के बहुत पूर्व में एक ब्रह्म के अनेक स्वरूपों की विवेचना करते हुए परब्रह्म के ज्ञान का उपदेश दिया था। किन्तु मुस्लिम सम्पर्क के कारण इस भावना को प्रोत्साहन मिला और उसका प्रभाव हमें नामदेव, रामानन्द, कबीर तथा नानक की शिक्षाओं में परिलक्षित होता है, जिससे कि हमें हिन्दू तथा मुस्लिम विचारधारा का प्रभाव प्रतीत होता है।”

जन्म मृत्यु के बारे में आदि शंकराचार्य के जीवन के बारे में कोई भी विवाद हो परन्तु यह नितांत सत्य है कि उन्होंने भारत के चारों कोनों में चार धामों में चार मठों की स्थापना करके भारत की भौगोलिक तथा सांस्कृतिक एकता स्थापित की। उन्होंने “अपनी प्रकांड प्रखर प्रतिभा से युग के सारे विवादों को समेट समाज को वेदांत की पृष्ठभूमि पर समन्वित किया। उनके वर्चस्व से भारत के तीर्थ स्थान, पहाड़, नदियां, शहर, गांव सब एक ब्रह्म एक सत्य की अखण्ड एकता में बंध गये जिसने न केवल हमें बौद्ध धर्म के ह्रास

से उबारा वरन् मुगल, ईसाई साम्राज्यों के थपेड़ों को सहन करने की सामर्थ्य दे हमारी पहचान को सुरक्षित रखा।” आद्य शंकराचार्य ने उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और गीता पर टीकाएँ लिख राष्ट्र की एकता को दिशा दी। उन्होंने हमें “पूर्ण स्वराज्य की संकल्पना दी। उन्होंने कहा था अखण्डता केवल राजनीति द्वारा सम्भव नहीं, क्योंकि भाषा, धर्म, प्रांत भेद राजनीति के आश्रय में फलते-फूलते हैं।

मध्यकाल में भक्ति आंदोलन

भक्ति आन्दोलन भारत की प्राचीन आध्यात्मिकता, दर्शन तथा सांस्कृतिक जीवन मूल्यों पर आधारित नवजागरण था। सार रूप में इसका वैशिष्ट्य निर्जीव कर्मकाण्डों, पूजापाठों तथा व्रतों का विरोधी था। यह जातिप्रथा की जटिलताओं की भर्त्सना करता है। बाहरी दिखावों तथा अन्धविश्वासों का खण्डन करता है। इसके विपरीत यह एकेश्वरवाद अथवा अद्वैत सामज में सांस्कृतिक समरसता तथा गुरु की महत्ता को दर्शाता है।

भक्ति आन्दोलन एक राष्ट्रव्यापी था। सम्भवतः भक्ति आन्दोलन जैसी व्यापकता, निरन्तरता, इस जैसी इससे पूर्व भारत के किसी भी आन्दोलन में दृष्टिगोचर नहीं होती। मध्यकाल में मुस्लिम अत्याचारों तथा जबरदस्ती धर्म परिवर्तन की प्रक्रिया ने इसे अधिक तीव्र तथा दृढ़ किया।

जगतगुरु शंकराचार्य के बाद दक्षिण भारत महान आचार्यों की जन्मभूमि रहा। जिस भांति आद्य शंकराचार्य अद्वैत सम्प्रदाय के आदि आचार्य माने जाते हैं, वैसे ही जगतगुरु रामानुजाचार्य (1017-1137 ई.) विशिष्टाद्वैत श्री सम्प्रदाय के आदि आचार्य माने जाते हैं। इनका जन्म कांचीपुरम के निकट श्रीपेरुपुथुर में हुआ। इनकी वैदिक शिक्षा कांची के प्रसिद्ध यादव प्रकाश ने दी। छोटी आयु में इनकी प्रसिद्धि हो गई थी। रंगमठ के पीठासीन यमुनाचार्य जी इनसे प्रभावित हुए थे तथा इनको बुलाने के लिए अपने शिष्य को भेजा, पर इनके पहुंचने से पूर्व उनका देहांत हो गया था। उन्हें जानकारी मिली कि

यमुनाचार्य जी की तीन इच्छाएँ थी। ये थी ब्रह्मसूत्र का भाष्य, विष्णु-सहस्रनामतथा आलवन्दारों के 'दिव्य प्रबन्धक' की टीका। ये तीनों इच्छा पूर्ण की गई। विशिष्टाद्वैतवाद के प्रथम महान प्रतिपादक के रूप में इन्हें माना कि जीवात्मा परमात्मा से एकाकार है परन्तु उसका पृथक् अस्तित्व भी है। इस प्रकार परमात्मा तथा जीवात्मा एक भी है और उनमें अलगाव भी है। इसे ही विशिष्टाद्वैतवाद कहा गया। उन्होंने समस्त जगत की ब्रह्म की अभिव्यक्ति माना। उनके विचारों का तेजी से प्रसार हुआ। उन्होंने सम्पूर्ण भारत की तीर्थयात्रा की थी। उनके पश्चात उनका विचार एक सतत महान परम्परा की भाँति आगे बढ़ता गया। उन्होंने गौरवमय अतीत के दर्शन को बतलाते हुए जनमानस में भक्ति भाव के साथ आत्मविश्वास पैदा किया।

द्वैताद्वैत दर्शन के महान व्याख्याता श्री निम्बार्काचार्य दक्षिण भारत में गोदावरी तट पर वैद्यपत्तन के निकट अरुणाश्रम में हुआ। इनके पिता अरुण मुनि तथा माता का नाम जयन्ती देवी था। इनका बचपन का नाम नियमानन्द जो बाद में आचार्य निम्बार्क के नाम से प्रसिद्ध है। इनके जन्म काल के बारे में कई मत हैं परन्तु यह सामान्य विद्वानों ने बाहरवीं शताब्दी माना है। आचार्य निम्बार्क का उत्तर भारत में मथुरा के निकट ध्रुवक्षेत्र में था। आचार्य निम्बार्क ने अनेक ग्रन्थों की रचना, परन्तु आज उपलब्ध वेदांत सूत्रों पर 'भाष्य-वेदांत पारिजात सौरभ' उपलब्ध है। आचार्य निम्बार्क के अनेक शिष्य थे जिनमें उनके शिष्य केशव भट्ट के अनुयायी विरक्त होते थे तथा हरिव्यास के अनुयायी गृहस्थ होते थे। इनके सम्प्रदाय में श्रीमद्भागवत को प्रमुख ग्रन्थ माना जाता है तथा श्री राधाकृष्ण की पूजा होती है। इनके मत में ब्रह्म से जीव और जगत पृथक् भी है और एक भी है। इनके तथा इनके शिष्यों के प्रभाव प्रचुर मात्रा में भक्ति साहित्य का सृजन हुआ तथा देश के अनेक हिन्दुओं को प्रेरित किया।

द्वैतवादी महान चिंतक मध्वाचार्य का जन्म 1256 विक्रमी संवत् में हुआ।

इनका जन्म कर्नाटक प्रांत में उदीधि के निकट बेलिग्राम माना जाता है। इनके पिता मधिाजी भट्ट तथा माता का नाम वेदवती था। इन्होंने ग्यारह वर्ष की अल्पायु में अद्वैत मत के सन्यासी आचार्य अच्युत प्रेक्षाचार्य से सन्यास की दीक्षा ली थी। प्रारम्भ में इनका नाम वासुदेव था जो अब पूर्णप्रज्ञ हो गया था। इन्होंने वेदांत का गंभीर अध्ययन किया। अनेक स्थानों की यात्रा की तथा विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ किया। इन्होंने अपने उपदेशों में भगवद्भक्ति का प्रचार वेदों की प्रमाणिकता की स्थापना, मायावाद का खण्डन तथा मर्यादा का संरक्षण किया। इन्होंने अनेक भाष्य लिखे, अनेक मठ स्थापित किये तथा मंदिरों का निर्माण कराया। उन्होंने उडपि में भगवान कृष्ण की मूर्ति प्रस्थापित की तभी से यह उनके अनुयायियों का केन्द्र बन गया। उनकी यात्राओं, मंदिरों की स्थापना तथा रचनाओं से लोगों में धर्म के प्रति आस्था, संस्कृत साहित्य के प्रति सम्मान तथा अतीत के प्रति गौरव बढ़ा।

महाप्रभु बल्लभाचार्य का जन्म आन्ध्र प्रदेश में 15वीं शताब्दी में हुआ। इनका जन्म 1476 ई. तथा गोलोकवास 1531 माना जाता है। वे शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय अथवा पुष्टि मार्ग के संस्थापक आचार्य थे। 13 वर्ष की अल्पायु में वे धर्मोपदेश को निकल पड़े थे तथा स्थान-स्थान पर भगवद् कथाएँ सुनाते थे। विभिन्न मत-मतान्तरों से शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त कर 31 वर्ष की आयु में इन्होंने वैष्णव मत का प्रतिपादन किया था। उन्होंने दिव्य गुणों से युक्त पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के ही परब्रह्म होने की पुष्टि करते हुए उनकी विविध लीलाओं का वर्णन किया। उन्होंने बतलाया कि श्रीकृष्ण ही देव हैं। उनका नाम ही मन्त्र है तथा उनकी सेवा ही एकमात्र कर्म है। उन्होंने कृष्ण भक्ति का प्रसार करने के लिए भारतवर्ष की तीन बार परिक्रमाएँ कीं। धर्म का प्रचार करते हुए ये विजयनगर भी गये, जहां विश्व के प्रसिद्ध सम्राट कृष्णदेव राय ने विराट धर्म सम्मेलन आयोजित किया हुआ था। वहां शास्त्रार्थ द्वारा इन्होंने सभी मत-मतान्तरों के संतों एवं पंडितों को सन्तुष्ट किया।

सभी विद्वानों ने मिलकर आपका कनकाभिषेक किया जिसमें कई मन सोना इन्हें दिया गया जो उन्होंने वहीं उसी समय दान कर दिया। सभी ने आपको 'वाचस्पति' स्वीकार किया तथा सर्वसम्मति से आपको 'अखण्ड भूण्डलाचार्यवर्य जगतगुरु श्री मदाचार्य श्री महाप्रभु' की उपाधि से विभूषित किया गया। भारत की यात्रा करते हुए उन्होंने चौरासी बैठकें स्थापित की और चौरासी वैष्णव बनाये।

यह भी उल्लेखनीय है कि वल्लभाचार्य में प्रभु भक्ति के साथ देशभक्ति की भावना थी। उदाहरण¹¹ के लिए मथुरा में विश्रामघाट पर किसी पीर ने एक मजबूत धागा बांध दिया जो यमुना तट से दूसरी ओर तट तक था। एक दिन उसने फरमान दिया कि इस धागे के नीचे अथवा इस धागे से निकलकर प्रयाग तक की यमुना ही क्यों, अपितु गंगा सागर तक जाने वाली गंगा में भी स्नान करेगा, तो वह मुसलमान, जिसने ऐसी किसी स्नान करने वाले के यहां भोजन किया – वह मुसलमान और जिस-जिसने भी उनके यहां भोजन किया – वे सभी क्रमशः मुसलमान होंगे। पीर ने यह अल्लाह का फरमान बताया। सभी मथुरावासी परेशान हो, माध्वाचार्य के पास पहुंचे। उन्होंने सभी को यमुना तट पर कीर्तन करने को कहा। अगले दिन प्रातः ही नहाते हुए कहा, “जिन्होंने इस धागे के नीचे स्नान किया वे शुद्ध, जिन्होंने उनके यहां भोजन किया, वे निष्पाप, जिन्होंने उनके यहां किसी प्रकार का जल भी पिया – वे वैष्णव, श्री वैष्णव, परम वैष्णव! इस तरह की घटना ने हिन्दू समाज में आत्मविश्वास तथा स्वाभिमान को जागृत किया।

उन्होंने श्रीकृष्ण के बृज क्षेत्र में स्थित गोवर्धन पर्वत पर अपनी गद्दी स्थापित की। श्रीनाथजी का दिव्य मंदिर बनवाया। भक्त सूरदास, कुंभनदास, परमानन्द दास व कृष्णदास इनके प्रमुख शिष्य थे। इन्होंने कई ग्रन्थों की रचना की। इनके देहावसान के पश्चात् इनके पुत्र गोसाईं विठ्ठलदास गद्दी पर आसीन हुए।

उत्तरी भारत में श्री रामानंदाचार्य को मध्ययुगीन उदात्त चेतना के जन्मदाता,

भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तक तथा तत्कालीन धार्मिक तथा सामाजिक चेतना का मार्गदर्शक माना जाता है जहां रामान्दाचार्य अथवा रामानंद ने समकालीन पीड़ित, उपेक्षित तथा नैराश्य से पूर्ण हिन्दू समाज को सांत्वना दी, चेतना जगाई, वहां राष्ट्रीय जागरण किया, भारत की सांस्कृतिक जीवनधारा का अक्षुण्य प्रवाहित करने में योगदान किया।

स्वामी रामानंद का आविर्भाव 15वीं शताब्दी में (1410-1520 ई.) माना जाता है। इनका जन्म प्रयाग में हुआ। इनके पिता पुण्यसदन तथा माता सुशीला देवी थे। अल्पायु में ही ये काशी चले आये थे तथा पंचगंगा घाट पर रहने लगे थे। इनके गुरु स्वामी राघवानन्द थे। इन्हें रामभक्ति गुरु परम्परा से मिली। उन्होंने रामभक्ति को एक व्यापक सांस्कृतिक आन्दोलन का आधार बनाकर राष्ट्रीय जागरण किया। उन्होंने इससे समाज में आशा, आत्मविश्वास तथा स्वाभिमान का भाव जागृत किया। उन्होंने भारतीय समाज के अन्धविश्वासों तथा बाहरी आडम्बरों से ऊपर उठकर प्रेम और भक्ति का मार्ग दिखलाया।¹² रामभक्ति के ही माध्यम से उन्होंने समाज के विभिन्न वर्गों में सामाजिक समरसता तथा समन्वय की भावना पैदा करने का सफल प्रयास किया। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ श्री वैष्णव मताब्ज भास्कर में प्रचलित ऊंच-नीच की भावना पर क्रूर प्रहार किया।

यह उल्लेखनीय है कि जहां रामानुज ने ग्यारहवीं शताब्दी में कृष्ण भक्ति की उपासना का प्रचलन किया, वहां श्री रामानन्द को 15वीं शताब्दी में उत्तरी भारत में रामभक्ति के प्रसार का श्रेय है। इस काल में रामनन्दी सम्प्रदाय सबसे अधिक प्रभावी बन गया।¹³ एक विद्वान के अनुसार पूर्णावतार का जो पद भगवान कृष्ण का प्राप्त था, वही पद मर्यादा पुरुषोत्तम राम को भी प्राप्त हो गया।¹⁴ स्वामी रामानन्द द्वारा रामभक्ति का प्रसार उत्तर-दक्षिण अर्थात् सम्पूर्ण देश की एकता को आबद्ध करने में सहायक हुआ। राम का नाम पूरे समाज को जोड़नेवाली महत्त्वपूर्ण कड़ी बन गया। एक विद्वान के अनुसार वे “विभिन्न परिवेशों के बीच में एक सेतु की भूमिका का निर्वाह करते थे। वे नर और

नारायण के बीच एक सेतु थे; शूद्र और ब्राह्मण के बीच एक सेतु थे; हिन्दू और हिन्दुत्व के बीच एक सेतु थे; देवभाषा (संस्कृत) और लोकभाषा (हिन्दी) के बीच एक सेतु थे।¹⁵ श्री रामानन्द की एक और महत्त्वपूर्ण देन है एक प्रभावी तथा अद्भुत शिष्य परम्परा खड़ी करना। उनकी शिष्य परम्परा में कबीरदास, पीपाजी, रविदास (रैदास), अनन्तानन्द, सुरसुरानन्द, नरहरियानन्द, योगानन्द, सुखानन्द, श्री धन्ना जी, श्री सेन जी, गालवानन्द थे। उनकी प्रेरणा से जहां कबीर तथा अनेकानेक शिष्य रामानन्द जी की वाणी के सन्देशवाहक बने वहां दूसरी ओर रामभक्ति के महान उपासक तुलसी दास उनके प्रचारक बने।

स्वामी रामानन्द के प्रसिद्ध बारह शिष्य¹⁶ उत्तर भारत के विभिन्न प्रांतों अथवा क्षेत्रों से थे। ये अधिकतर सामान्य तथा निम्न वर्ग के थे। इनमें से कुछ का वर्णन संक्षिप्त में जानना उपयोगी होगा। मध्ययुगीन सन्तों में संत कबीर का अनन्य स्थान है। नीरू और नीमा जुलाहे परिवार में, पले संत कबीर की ख्याति देशव्यापी थी। कबीर ने अपने गुरु रामानन्द से निर्गुण 'राम' तथा 'भक्ति' का रहस्य सीखा।¹⁷ यद्यपि राम की अवतारवाद की धारणा को उन्होंने स्वीकार नहीं किया, परन्तु ईश्वर को ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया। इसके प्रमाण श्री गुरुग्रन्थ साहब में उनके एक दोहे से होता है जो उसमें दिया गया है।¹⁸ इसमें ईश्वर को सर्वशक्तिमान तथा अदृश्य माना है। कबीर पर स्वामी रामानन्द का प्रभाव स्पष्ट करते हुए सभी विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि उन्होंने 'भक्ति' के लिए अभय का पाठ रामानन्द से ही सीखा।¹⁹ कबीर के सन्दर्भ में 'कबीर ग्रन्थावली' में राम का नाम 217 बार आया है।²⁰ कबीर की भक्ति रामानन्द की भांति जातिभेद अथवा वर्गभेद से ऊपर है। उन्होंने निर्गुण ब्रह्म के निर्गुण राम कहकर अपनी भक्ति का विषय बनाया। कबीर का वैशिष्ट्य इस बात में ही कि "धर्म के स्थान पर धार्मिकता-आध्यात्मिकता को बृहत्तर सामाजिक आचरण से जोड़कर कबीर ने बहुत बड़ी नैतिक संहिता प्रस्तुत की है।"²¹ उन्होंने दोनों के हित में कुर्बान होने में मुक्ति की सीख -

समानता, स्वतन्त्रता, निर्भयता, मानवीय सरोकार के सर्वोच्च मूल्यों की संस्थापना की जो आज के 'सेकुलर' युग में सम्भव नहीं है।²² कबीर की विद्रोही, "क्रांतिकारी धार सत्ता व्यवस्था के द्वारा अपनाये गये जन विरोधी (जीवन, पर्यावरण विरोधी भी) सभी व्यवहारों को काटता है। वे सभी प्रकार के अन्यायों, उत्पीड़नों के सामने झुकते नहीं, बल्कि चुनौती देते हैं।"²³

सन्त कबीरदास समन्वय भावना के पोषक थे। यद्यपि उन्होंने कभी भारतीय संस्कृति को गंगा-जमुनी संस्कृति अथवा कम्पोजिट कल्चर की बोटग्राही दृष्टि से कभी न देखा परन्तु हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति के बीच कटुता दूर करने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया।²⁴ मूर्तिपूजक न होते हुए भी कबीर ने सिकन्दर लोदी के मूर्ति भंजक कार्यों की कटु आलोचना की। इसकी सजा के रूप में उन्हें उफनती यमुना नदी में फेंक दिया गया था।²⁵ एक लेखक का मत है कि "इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि यदि रामानन्द व कबीर अछूतों और हिन्दू समाज के उपेक्षित जनों में एक आशा और भरोसे की नींव न डालते तो उनमें से अधिकतर मुसलमान हो जाते।"²⁶ निःसन्देह उस समय सिकन्दर लोदी जैसे अत्याचारी तथा धर्मान्ध सुल्तान का विरोध करना²⁷ बड़े साहस का कार्य था जो कबीर जैसा विलक्षण व्यक्तित्व ही कर सकता था। विभांशु दिव्याल²⁸ ने कबीर के बारे में सही कहा है कि "छह शताब्दियों पार कर जाने के बाद जो व्यक्तित्व अपने मूल स्वरूप में सबसे अलग दिख रहा होगा, वह फक्कड़ कवि, निराले संत, अक्खड़ गुरु, अटपटे दार्शनिक, बेलाग वक्ता और विद्रोहियों के खरे दोस्त कबीर का होगा। जहां बहुत से कवि, दार्शनिक, विचारक, सुधारक, रुढ़ होकर मिथक बन गये हैं और उनके कर्म किवदंतियों में ढल गये हैं। वहां कबीर नाम की यह शख्सियत वैसे ही प्रखर, वैसी ही प्रहारक और वैसे ही व्यंग्यमय बनी हुई है।"

संत कबीरदास की भांति सन्त रैदास समाज तथा धर्म के व्यापक क्षेत्र में

अहिंसक क्रांति के अग्रदूत थे। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता को अपना लक्ष्य बनाकर मुस्लिम तुष्टिकरण की बजाय तुर्की तथा अफगानी अत्याचारी शासकों द्वारा व्यापक स्तर पर जबरदस्ती धर्मान्तरण के विरोध में अपमान सहकर हिन्दू धर्म की रक्षा का हर कीमत पर उसे बनाये रखने का बीड़ा उठाया।

चवरवंश के क्षत्रिय कुल में उत्पन्न संत रविदास के दादा हरिनन्दन, पिता रघु जी तथा माता कर्मादेवी धार्मिक वृत्ति के थे। रविवार के दिन जन्म होने के कारण इनको रविदास कहते थे। इनका जन्म काशी के निकट माण्डूर ग्राम में हुआ तथा इनका शरीर चित्तौड़ में पूरा हुआ। चित्तौड़ की रानी महारानी झाला रानी इनकी अपूर्व भक्त थी तथा इनमें अपार श्रद्धा रखती थी। ऐसा भी मत प्रचलित है कि प्रसिद्ध मीरा बाई भी इनसे मिलने गई थी। ये रामानन्द के शिष्य तथा कबीरदास के समकालीन थे।

संत रविदास भारत में प्रचलित विभिन्न सम्प्रदायों को जोड़ने वाली एक मजबूत कड़ी थे। उनकी चेतना में सतनाम, सतिगुरु तथा सत्संगति की प्रचुरता थी। वे सही अर्थों में एक प्रभावशाली आध्यात्मिक पुरुष थे। इन्होंने अपने भक्तिपदों में मानवमात्र को भेदभाव से दूर रहने को कहा। उन्होंने ईश्वर को विराट रूप में स्वीकार किया था। उन्होंने मानव को जन्म से नहीं बल्कि सत्कर्मों से महानता प्राप्त करने को कहा। मन की पवित्रता को बल दिया। उनका कथन “मन है चंगा तो कठौती में गंगा” मन की शुद्धता तथा ईश्वर के विराट स्वरूप को दर्शाता है।

यह सर्वज्ञात है कि भारत में प्रायः इस्लाम का प्रवेश तलवार तथा जोर जबरदस्ती से हुआ। संत रविदास समकालीन अफगान लोदी शासक सिकन्दरशाह (1487-1517 ई.) के हिन्दुओं पर घोर अत्याचारों से बड़े क्षुब्ध थे। सिकन्दरशाह अत्याधिक निर्दयी, धर्मान्ध तथा हिन्दू विरोधी था। वह मूर्तिभंजक था तथा उसने ज्वालामुखी के मंदिर के अलावा मथुरा, मन्दैल, नरवर आदि अनेक स्थानों के मंदिरों को नष्ट किया था। उसने

कुरुक्षेत्र अथवा यमुना के तटों पर स्नान करने पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिये थे। मियां फकीर सदना ने संत रविदास से प्रभावित होकर हिन्दू धर्म अपना लिया था। सिकन्दरशाह संत रविदास के व्यापक प्रभाव से भी परिचित था, परन्तु तब भी उसने संत रविदास को जेल में डाल दिया था तथा उन्हें इस्लाम धर्म अपनाने के लिए दबाव डाला था। न मानने पर उन्हें जेल में भूखा रखा गया। संत रविदास हिन्दुओं के जबरदस्ती, सामूहिक तथा बलात इस्लामीकरण से बहुत दुखी थे। उन्होंने स्वयं लिखा :

“बाढ़े यवन यहां योहि भांति, हिन्दू घटे दिन राति
बाढ़े दुष्ट नीच अभिमानी, जिन वेदन की मार न जानी
ऊंच-नीच के भेद बढ़ाये, जिसने भारत देश बनाये
धर्म सनातन डूबो जाई, बढ़ अज्ञान दहुयों दुखदायी
भयो लोभवश नर और नारी, दई धर्म की सूरति बिसारी।”

संत रविदास ने इस सामूहिक इस्लामीकरण की प्रक्रिया को एक चुनौती के रूप में लिया। उन्होंने हिन्दू समाज को किसी भी कीमत पर अपना धर्म न छोड़ने का आह्वान किया तथा इसके लिए कोई भी निम्न से निम्नतम कार्य को भी करने के लिये तत्पर रहने को कहा। हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए उन्होंने समाज के प्रत्येक वर्ग को जागृत किया। इस्लाम की आंधी से पीड़ित समाज में धार्मिक तथा राष्ट्रीय चैतन्य उत्पन्न किया। देश में आई कठोर परिस्थितियों में भी विचलित न होने का संदेश दिया।

सम्भवतः चर्म कर्म करने की कठोर शर्त पर यह इस्लामीकरण तथा गुलामीकरण की प्रक्रिया कम हुई। तभी से इतिहास में ‘चमार’ जैसे अपमानजनक शब्द का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। इससे पूर्व ऋग्वेद से तत्कालीन साहित्य तक कहीं भी इस शब्द का प्रयोग व्यवसाय के रूप में उल्लेख नहीं है। धर्म की रक्षा के लिए संत रविदास का यह एक

महानतम तथा कठोरतम पग था, जो अस्थायी कठिनतम परिस्थितियों के लिए था।

संत रविदास ने हिन्दू धर्म में पूर्ण आस्था रखने का सन्देश अपनी वाणी में कहा:

धर्म सनातन मानन हारे, वेद शास्त्र है प्राण हमारे,

पूजौं राम कृष्ण चितलाई, गुरु द्विज संत करो सेवकाई”

इसके साथ ही संत रविदास ने हिन्दू धर्म में व्याप्त आन्तरिक कुरीतियों, बाहरी आड़म्बरों तथा कर्मकाण्डों की कटु आलोचना की। उन्होंने सामाजिक सुधारों का आह्वान किया तथा जात-पात की जटिलता का विरोध किया। उन्होंने कर्म की श्रेष्ठता तथा नैतिकता को सर्वोच्च माना। तत्कालीन विषम परिस्थिति में उन्होंने निर्गुण भक्ति का उपदेश दिया। संत रविदास वास्तव में संत शिरोमणि थे। इसीलिए संत कबीर ने उनके बारे में लिखा कि संतों में संत रैदास। वास्तव में वे हिन्दू धर्म के महान रक्षक थे। उनके 30 से अधिक पदों को गुरु ग्रन्थ साहब में स्थान दिया गया है।

सन्त कबीरदास व सन्त रविदास की भांति उनके अन्य दस शिष्य²⁹ भी प्रमुख भक्त थे। श्री अनन्तानन्द अयोध्या (ग्राम महेशपुर) के थे जिनके शिष्यों द्वारा भक्ति का प्रसार हुआ। श्री सुरसुरानन्द लखनऊ (ग्राम परखम) के थे। ऐसा माना जाता है कि उनके प्रश्नों के उत्तर में ही स्वामी रामानन्द ने श्रीवैष्णव मताब्ज भास्कर ग्रन्थ की रचना की थी। श्री सुखानन्द उज्जैन (ग्राम किरीटपुर) के थे जिन्होंने भक्ति का प्रचार के साथ ‘सुखसागर’ की रचना की थी। श्री नरहरियानन्द ने स्वामी रामानन्द व श्री अनन्तानन्द के साथ रहकर भक्ति का प्रचार किया। श्री योगानन्द गुजरात में सिद्धपुर क्षेत्र से थे। ये वैष्णव भक्त के साथ एक महान योगी थे। इसी भांति श्री पीपाजी राजस्थान के गांगरोनगढ़ के राज परिवार से थे जिन्होंने धर्म का प्रचार किया। श्री भावानन्द के पूर्वज मिथिला से आकर पण्डरपुर (ग्राम आलिन्दी) में रहने लगे थे। यहीं इनका जन्म हुआ। वे बड़े रामभक्त थे। श्री सेन जी मध्य प्रदेश के बाधवगढ़ से थे जो सेन भक्त के नाम से प्रसिद्ध हुए। श्री गालवानन्द

सिन्धु के (ग्राम पवाया) थे जो बड़े ज्ञानयुक्त तथा महान योगी थे। श्री धन्ना जी राजस्थान के टोंक के (धुवन ग्राम) में हुए थे। वे इतिहास में धन्ना भक्त के नाम से प्रसिद्ध हैं जो भक्तों, सन्तों तथा साधकों की बड़ी सेवा करते थे।

उपरोक्त स्वामी रामानन्द तथा उनकी शिष्य परम्परा से ज्ञात होता है कि स्वामी रामानन्द के शिष्य विभिन्न जातियों तथा वर्गों से थे। वे उत्तर भारत के विभिन्न स्थानों से थे। परन्तु सभी में ईश्वर भक्ति तथा राष्ट्रभक्ति की अटूट भावना थी। सभी ने हिन्दू समाज के धर्म के साथ सांस्कृतिक तथा सामाजिक जीवन को आन्दोलित किया तथा मुस्लिम आक्रांताओं से सुरक्षा तथा रक्षा कवच का काम किया। जिस भांति स्वामी रामानन्द तथा उनके 12 शिष्यों ने भक्ति की धारा का सर्वत्र विस्तार किया, उसी भांति पुष्टिमार्गीय कवियों को महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य के पुत्र गुसाईं विठ्ठलदास ने आठ पुष्टिमार्गीय कवियों को छांटकर संवत् 1602 ई. में अष्टछाप³⁰ की स्थापना की। गुसाईं विठ्ठलनाथ, वल्लभाचार्य के छोटे पुत्र थे। अपने बड़े भाई गोपीनाथ के आकस्मिक निधन के कारण इन्होंने आचार्य पीठ सम्भाली थी। इनके नेतृत्व में जहां पुष्टि सम्प्रदाय की तीव्र गति से उन्नति हुई, वहां इनके सान्नादय से अमस्त ब्रजभूमि एक तीर्थस्थल, ब्रजभाषा एक प्रमुख भाषा तथा श्रीकृष्ण भक्ति का चहुं ओर तेजी से विकास हुआ।

अष्टछाप की स्थापना में चार शिष्य – सूरदास, कुंभनदास, परमानन्द दास तथा कृष्णदास वल्लभाचार्य के थे तथा नन्ददास, गोविन्दस्वामी, छीतस्वामी तथा चतुर्भुजदास गुसाईं, विठ्ठलनाथ के शिष्य थे। इन अष्टछाप कवियों का योगदान हिन्दी साहित्य, विशेषतः ब्रजभाषा की अमूल्य देन माना जाता है। स्वयं विठ्ठलदास ने भी लगभग 50 ग्रन्थों की रचना की थी। इन आठ कवियों के अलावा गुसाईं विठ्ठल के 252 शिष्य थे जो विभिन्न जातियों तथा वर्गों के थे। इन्होंने देश के विभिन्न भागों में प्रवास किया, जिसका प्रमाण 28 बैठकें हैं।

कुंभनदास का नाम अष्टछाप के कवियों में सर्वप्रथम है। श्री बल्लभाचार्य के शिष्यों में प्रथम थे, आयु में भी सबसे अधिक आयु के थे। वे महान संगीतज्ञ तथा सरस पदों के रचयिता थे। एक बार सम्राट अकबर ने उन्हें फतेहपुर सीकरी आने को बाध्य किया। अकबर के कहने पर उन्होंने निर्भीकतापूर्वक गाया :

“संतन को कहा सीकरी सों काम।

आवत जात पन्हैया टूटी, बिसरि गयो हरि नाम।

जिनको मुख देखे अति पातक करनी पड़ी सलाम।

‘कुंभनदास’ आस गिरिधन की नाहिं और सों काम।।

यह सुनकर अकबर हक्का बक्का रह गया। पर उसने एक रत्नमाला दी, बाहर आकर उसने तोड़कर फकीरों में बांट दी। गोवर्धन के निकट अपने जमुनावती ग्राम के लोगों ने पूछा, “सम्राट ने क्या दिया?” उन्होंने अपनी पगड़ी में से वह खाली रेशम की डोरी निकालकर जिसमें रत्न पिरोए हुए थे, दिखलाते हुए कहा, “माया ससुरी बांधने आई थी सो हम वा बांधनहारी की तौड़िके लै आए।”

उपरोक्त कथन से भारतीय समाज की मुगल शासक के प्रति मानसिक भावना प्रकट होती है।

महाकवि सूरदास श्री बल्लभाचार्य के दूसरे विश्व विख्यात शिष्य थे। इनका जन्म वर्तमान हरियाणा के सीही ग्राम में हुआ। इस समय इस गांव पर मुसलमानों का भीषण आक्रमण हुआ था। ऐसा कहा जाता है कि सूरदास के 6 भाई इस संघर्ष में बलिदान हो गए थे। एक मत यह भी है कि सूरदास जन्म से अन्धे न थे बल्कि ये भी चोट से अन्धे हो गए थे तथा इन्हें एक कुएं में धक्का दे दिया गया था। किसी भी प्रकार से इन्हें कुएं से निकाला गया था तथा इनकी भेंट प्रयाग में श्री बल्लभाचार्य से हुई। वे सूरदास की

मधुर वाणी से बड़े प्रभावित हुए तथा अपने साथ ब्रज ले आये थे। सूरदास तन्मयता से श्रीकृष्ण के जीवन पर पदों की रचना करने लगे। उन्होंने कृष्ण की बाललीलाओं का इतना सजीव वर्णन किया, जो कहीं भी मिलना कठिन है। उन्होंने अपनी काव्य रचना में श्रीमद्भागवत के दशम-स्कंध में वर्णित श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर मथुरा गमन तक घटनाओं को अपने विख्यात ग्रन्थ ‘सूर-सागर’ में स्थान दिया। इसी भांति परमानन्द ने ‘परमानंद सागर’ की काव्य रचना की, जिसमें 835 पद हैं। शिष्य कृष्णदास ने भी भगवान कृष्ण के जीवन पर ‘जुगलमान चरित्र’, ‘भ्रमरगीत’ तथा ‘प्रेम-तत्त्व-निरूपण’ लिखे।

श्री छीतास्वामी मथुरा के रहने वाले थे तथा इन्होंने पदों में श्रृंगार का वर्णन किया तथा ब्रजभूमि का यशोगान किया। श्री गोविन्द स्वामी एक उच्च कोटि के भक्त तथा गायक थे। चतुर्भुजदास जी, कुंभनदास के पुत्र थे। इन्होंने कृष्ण जीवन पर अनेक पदों की रचना की। नंददास युगल लीलाओं का सरस गान करते थे। संक्षेप में अष्टछाप के कवियों ने सम्पूर्ण भारत के वातावरण को ही झकझोर दिया। यह एक प्रकार की सामाजिक तथा आध्यात्मिक क्रांति का सूत्रपात था जिसने भारतीयों को पठानों तथा मुगलों के भययुक्त समाज से मुक्त कराया।

यदि हम संक्षेप में मुस्लिम आक्रांताओं के मुख्य काल (1206-1707 ई.) को देखें तो इसी काल में भक्ति आन्दोलन की रामभक्ति तथा कृष्णभक्ति की धारा समूचे भारत में तेजी से फैली। भारत का कोई क्षेत्र ऐसा न रहा जहां सन्तों, भक्तों अथवा विद्वानों ने इस पुण्य प्रवाह में स्नान न किया।

भारत के पूरब में असम में श्रीकृष्ण भक्त शंकरदेव (1449-1569 ई.) इसमें अग्रणीय थे। प्रभु की कृपा से उन्होंने आयु भी 120 वर्ष की पाई थी। शंकरदेव का जन्म सामान्य परिवार में हुआ तथा इनके बाल्यकाल में इनके माता-पिता का साया न रहा था।

अल्पायु में शिक्षा प्राप्त कर आपने अपना नाता भगवान श्रीकृष्ण से जोड़ लिया। वे तीर्थाटन को निकल पड़े। वे असम में प्रचलित शाक्त से वैष्णव धर्म के उपासक हो गये। आपको गीता, भागवत तथा भगवद्भजन में बड़ा आनन्द आने लगा। शीघ्र ही उनका यश चारों ओर फैलने लगा। उन्होंने संस्कृत भाषा में 'भक्ति रत्नावली' की रचना की जिसका अनुवाद असमिया भाषा में रामशरण ठाकुर ने किया। इन्होंने 'दशम', 'कीर्तन', 'नामघोष' प्रमुख ग्रन्थ लिखे। इनके द्वारा प्रचारित वैष्णव धर्म को 'महाधर्म' या 'महापुरुष धर्म' अथवा महापुरुषिया धर्म कहा गया।

शंकरदेव का मत श्रीमद्भागवत के भक्ति सिद्धांतों पर आधारित है और अद्वैत के साथ भक्ति के संयोग को मानता है। उनके उपदेशों का सैद्धांतिक पक्ष आध्यात्म और व्यवहारिक पक्ष कृष्ण भक्ति की साधना का है।

शीघ्र ही शंकरदेव की भक्ति भावना, कीर्तन भजन ने असम की जनता का मन मोह लिया। उनके मत की अनेक शाखायें स्थान-स्थान पर खोली गई, एक लेखक ने शंकरदेव को 'असम का महाप्रभु चैतन्य' कहा है।³¹ कुछ उन्हें 'महापुरुष शंकरदेव' के नाम से भी स्मरण करते हैं।³² शंकरदेव के शिष्यों दामोदरदेव, माधवदेव, हरिदेव, गोपाल अत्ता आदि ने उनसे प्रेरणा लेकर अलग पंथों द्वारा भक्ति आंदोलन को बढ़ाया। असम में शंकरदेव, माधव देव तथा दामोदर देव - तीनों को विष्णु के अलग-अलग अवतारों के रूप में माना जाने लगा। इनके कारण अधिकतर समस्त असम, कृष्ण भक्ति का अनुयायी हो गया।

बंगाल, बिहार, उड़ीसा में इसी भक्ति भावना का संचार कवि विद्यापति तथा चैतन्य महाप्रभु ने किया। विद्यापति (1350-1448 ई.) में लोकप्रिय मैथिल कवि थे जिन्हें हिन्दी बंगला तथा उड़िया में प्रथम पंक्ति में स्थान दिया जाता है। उन्होंने श्रृंगार तथा भक्ति दोनों रसों में रचनायें की। उनकी रचना की भाषा अवहट्ट संस्कृत मिश्रित मैथिल

है। एक लेखिका के अनुसार, "उनकी कृतियों में तत्कालीन समाज की झलक है। राजा के युद्धों का वर्णन है। विदेशियों के आक्रमण का तत्कालीन इतिहास के संपूर्ण दस्तावेज हैं विद्यापति की कृतियां।" उनकी कविताओं में भक्ति तथा शक्ति दोनों हैं।

इसी भांति बंगाल तथा उड़ीसा में ही कृष्णभक्ति की प्रेम भावना को फैलाया। बंगाल के नदिया जिले के नवद्वीप में जन्मे चैतन्य महाप्रभु (1486-1533 ई.) ने। पिता जगन्नाथ मिश्र तथा माता सची देवी ने पुत्र का नाम रखा 'विश्वंभर'। शरीर से गोरे तथा हरि भक्त होने पर कहलाये गौरांग या गौरहरि। न्यायशास्त्र के विद्वान होते हुए शीघ्र ही कृष्ण भक्ति को जीवन का उद्देश्य बनाया। कृष्ण के प्रति उनके मन में राधा सरीखी भक्ति हमेशा रहती। 17 वर्ष की आयु में उन्हें गुरु रूप में सन्यासी ईश्वर पुरी मिले, 'कृष्णा-कृष्णा हरिबोल' का मन्त्र फूँका। 24 साल की आयु में केशव भारती ने उन्हें सन्यासी बनाया। ऐसा माना जाता है कि जब वे कृष्ण प्रेम में मस्त हो नृत्य करते, तो पशु भी इनके साथ नाचने लगते। उन्होंने समूचे भारत का भ्रमण किया। वृन्दावन में ठहरे परन्तु जीवन के अंतिम वर्षों में अपना केन्द्र उड़ीसा में जगन्नाथपुरी को बनाया। मणिपुर आदि पूर्वोत्तर क्षेत्र में भी उनका बड़ा प्रभाव हुआ। उड़ीसा नरेश प्रतापरुद्र भी चैतन्य के संकीर्तन टोली के संग झूमने लगते थे। उन्होंने उपदेश किया कि प्रभुनाम सुमिरन से ही कलियुग में शांति और प्रेम का आगमन हुआ।

चौदहवीं शताब्दी में कश्मीर में जन्मी लल्लादेवी या लल्लेश्वरी को मीरा का पूर्वज माना जाता है। वह आधुनिक काश्मीरी भाषा तथा साहित्य की प्रारम्भकर्ता मानी जाती है। सांसारिक प्रेम तथा पारिवारिक जीवन से असन्तुष्ट हो वे सन्यासी बन गई थी तथा गांव-गांव में घूमती थी। वे एक विद्वान गुरु सिद्ध श्रीकांत अथवा सिद्धमूल से प्रभावित हुई तथा उनको अपना आध्यात्मिक गुरु बनाया जिन्होंने उन्हें शैवमत का अनुयायी बनाया।

उल्लेखनीय है कि लल्लेश्वरी को संस्कृत भाषा में लिखने का आग्रह किया गया। कहा गया कि “जैन और बौद्ध विद्वानों ने कश्मीर में संस्कृत भाषा और साहित्य की अपार संपदा विरासत में पाई थी। यहां के राजाओं ने शिवभक्तों व अन्य धर्मावलंबियों के लिए भी मंदिर बनवाये। संस्कृत भाषा के विद्वानों और कश्मीर राज्य में सम्मान देने वाले राजाओं का इतिवृत्त कवि कल्हण ने लिखा।”

लल्लेश्वरी ने संस्कृत भाषा के प्रति सम्मान व्यक्त करते हुए कहा कि “क्या शंकर स्तुति को जनभाषा में क्यों नहीं स्वीकार करनी चाहिए। भगवान क्या संस्कृत में की गई स्तुति को समझते हैं।” अतः उन्होंने राजकीय सम्मान, राज्याश्रय, राज्यकवि की किसी भी इच्छा को अस्वीकार कर कश्मीर की जनभाषा में शिव की अराधना में लिखा। उनकी ‘बाखों’ को कश्मीर में ऊंचा स्थान मिला तथा वहां के पंडितों को जो मुस्लिम अत्याचारों से पीड़ित थे, सांत्वना तथा शक्ति प्राप्त हुई।

पंजाब में इसी भक्ति तथा इसके साथ शक्ति का प्रसार अथवा शांति तथा साहस का संचार गुरु नानक देव (1469-1539 ई.) व उनके उत्तराधिकारी गुरुओं ने किया। गुरु नानक देव जगत गुरु थे। वे एक महान समाज सुधारक तथा आध्यात्मिक पुरुष थे। गुरुनानक ने अपने धर्म प्रचार के साथ अपने काल की विषम परिस्थितियों का भी अध्ययन किया। जनता सिकन्दर लोदी के क्रूर तथा धार्मिक अत्याचारों से परेशान थी। तभी लुटेरे तथा धर्मान्ध बाबर के आक्रमणों से स्थिति और भी विकट हो गयी थी। मुसलमान जबरदस्ती हिन्दुओं को मुसलमान बना रहे थे। गुरु नानक ने सिकन्दर लोदी तथा बाबर के वीभत्स अत्याचारों की कठोर शब्दों में निंदा की। उन्होंने बाबर के आक्रमण को ‘पाप की बारात’ कहा तथा उसे ‘यमराज’ कहा।

गुरु नानक का वैशिष्ट्य इस तथ्य में है कि उन्होंने धर्म के व्यवहारिक पक्ष पर अधिक बल दिया। वे मानव के दोहरे स्वभाव के विरुद्ध थे। उन्होंने समाज में कोरे

आदर्शवाद, बाहरी आडम्बर, सामाजिक संकीर्णता तथा जातीय कटुता का घोर विरोध किया। गुरुनानक ने स्वयं के व्यवहार से एक सच्चे कर्मयोगी का जीवन प्रस्तुत किया। उन्होंने सन्यासी बनने की अपेक्षा गृहस्थ के रूप में समाज सेवा करने को कहा। उन्होंने अपने उपदेशों में सतनाम की महिमा, सामान्य व्यक्ति में सत्य की तड़फ तथा पाखण्ड के विनाश की बात की। उन्होंने ईश्वर के साक्षात्कार के लिए आत्मसमर्पण के शाश्वत विचार को रखा। उनके उदात्त धार्मिक विचारों से हिन्दुओं के अलावा बौद्ध, मुस्लिम तथा ईसाई धर्म के लोग भी आकर्षित हुए थे। प्रसिद्ध दार्शनिक डा. राधाकृष्णन के अनुसार³³ वे अपने युग में भी हिन्दुओं के गुरु तथा मुसलमानों के पीर की तरह माने जाते थे। भाई महावीर के अनुसार³⁴ गुरुनानक ने भी हिन्दू तथा मुसलमान दोनों धर्मों के बाहरी आडम्बरों व दिखावे का विरोध किया था तथा दोनों ही उनकी सादगी एवं प्रेम से अत्याधिक प्रभावित थे। प्रसिद्ध विद्वान लाबजेंग के अनुसार, ईश्वर के साक्षात्कार के लिए, अहं भावना की समाप्ति में उनके विचार ईसा मसीह से मिलते जुलते हैं।³⁵

गुरु नानक ने अपना उपदेश न केवल भारत तक, बल्कि एशिया के जनमानस तक पहुंचाया। उन्होंने हजारों मील की पैदल यात्रायें कीं। वे भारतीय धर्म तथा संस्कृति के प्रचार-प्रसार के लिए सिलोन, अरबिया, मिस्र, टर्की, रूसी तुर्किस्तान तथा अफगानिस्तान गये। गुरुनानक उस ऋषि परम्परा के थे जिन्होंने अतीत में सांस्कृतिक बृहत्तर भारत की स्थापना की थी। संक्षेप में उन्होंने अपनी समस्त शिक्षाओं को तीन वाक्यों में रखा – कृत कर, नाम जप तथा वंड खा अर्थात् परिश्रम कर, सतनाम का जाप तथा बांट कर खा। ये हिन्दू जीवन के तीन आदर्श वाक्यों, कर्म, भक्ति तथा ज्ञान का अद्भुत समन्वय है।

गुरुनानक देव के पश्चात् सिख पंथ के अन्य नौ गुरु प्रसिद्ध हुए। सिख गुरुओं के पवित्र विचारों को गुरु ग्रन्थ साहिब में स्थान दिया गया। सिख पंथ के अन्य गुरु – गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुनदेव, गुरु हरगोविंद, गुरु हरराय, गुरु हरकिशन, गुरु

तेगबहादुर तथा गुरु गोविन्दसिंह भक्ति तथा शक्ति के अद्भुत उदाहरण थे। प्रायः सभी का मुगलों अथवा मुसलमानों के अत्याचारों से टकराव हुआ। उदाहरणतः गुरु अमरदास ने एक बार हरिद्वार में कुंभ के अवसर पर अपने संगतों में घुस आए तुर्कों से साधुओं की रक्षा की। सम्राट जहांगीर गुरु अर्जुन द्वारा ग्रन्थ के संकलन से क्रोधित हो उठा। गुरु को सच्चा पादशाह कहा जाने लगा। जहांगीर के विद्रोही पुत्र खुसरो, जो काबुल की ओर भागता हुआ, एक रात गोइंदवाल गुरु जी की शरण में ठहरा था, बस जहांगीर को बहाना मिल गया। गुरुजी पर राजद्रोह का आरोप लगाकर लाहौर बुलाया। धर्मान्ध जहांगीर ने उन्हें खौलते हुए पानी की देग में बैठा दिया, उन्हें गर्म तवों पर बैठाया गया। उन्हें यह भी पता चला कि अगले दिन उन्हें गाय की हत्या कर, उनकी खाल में सिलवाया जाएगा। गोहत्या की बात सुनकर गुरुजी ने शरीर त्यागने का विचार किया तथा रावी की लहरों में 20 मई 1606 को अपने जीवन का बलिदान दिया।

इसी भांति गुरु हरगोविंद का भी जहांगीर से टकराव हुआ। गुरु हरगोविंद ने अब दो तलवारें धारण कर ली थीं। एक का नाम 'मीरी' यानि सांसारिक तथा दूसरी 'पीरी' यानि आध्यात्मिक। उन्होंने अकाल तख्त का निर्माण भी किया था। साथ ही धार्मिक यात्रा की तथा प्रचलित मसनद व्यवस्था में सुधार किया था। सिख पंथ के नवें गुरु तेगबहादुर (1634-1675 ई.) हुए। जहां उन्होंने धर्म प्रचार के लिए कुरुक्षेत्र, बनारस, पटना, असम तथा ढाका में घुबरी तक गये तथा वहां एक गुरुद्वारे की स्थापना की थी। धर्म की रक्षा के लिए तेगबहादुर का बलिदान विश्व के इतिहास में एक अद्भुत शौर्य, वीरता तथा पराक्रम का आदर्श उदाहरण है। इसी भांति इनके पुत्र गुरु गोविंदसिंह (1666-1708 ई.) ने अपने जीवन में भक्ति और शक्ति का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया। इन्हें इतिहास में 'सन्त सिपाही' के नाम से पुकारा जाता है। वे एक ऐसे गुरु थे जिन्होंने अपने पिता गुरु तेगबहादुर को बलिदान की प्रेरणा दी। अपने चारों पुत्रों का

बलिदान दिया, स्वयं का बलिदान दिया तथा अपने शिष्य बन्दा बहादुर को बलिदान के लिये तैयार किया। निःसन्देह विश्व के इतिहास में एक भी उदाहरण नहीं मिलता। उन्हें पंथ में सुधार तथा मुगलों के साथ सतत संघर्ष के लिए खालसा पंथ की 1699 ई. में बैशाखी के पर्व पर की थी जिन्होंने नाम के पीछे 'सिंह' लगाकर पांच ककार अपनाने को भी कहा था। तभी से गुरु ग्रन्थ साहिब सिख पंथ का मार्गदर्शक तत्व बन गया है। इसके साथ ही गुरु गोविन्द स्वयं भी एक कवि तथा लेखक थे। उनके दरबार में 52 कवियों का समूह होता था। अतः उन्होंने भक्ति के साथ शक्ति की अटूट परम्परा का निर्माण किया था।

सार रूप में गुरुनानक से गुरु गोविंद की महान गुरु परम्परा ने भारतीयों में आत्मविश्वास, आत्म गौरव के साथ अद्भुत साहस तथा वीरता का भाव उदीप्त किया, "न केवल राष्ट्रीय जागरण किया बल्कि भारतीयों को मुगलों के साथ प्रतिकार कर शत्रुओं को पराभूत करने का भी साहस जगाया था।

सिन्ध (वर्तमान पाकिस्तान में) में दसवीं शताब्दी में प्रसिद्ध भक्त झूलेलाल का जन्म नरसपुर में श्री रत्नराय के यहां हुआ। पहले इनका नाम उदय था जो बाद में उदर कहलाया। उन्होंने प्रारम्भ से ही अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाई तथा एक अत्याचारी धर्मान्ध मुस्लिम नवाब मिर्क को पराजित किया। पर वे शीघ्र ही भक्ति व आध्यात्मिकता के मार्ग की ओर बढ़े तथा इन्हें झूलेलाल के रूप में माना जाने लगा। ये सिन्धी समाज में वरुण देवता के अवतार कहे जाने लगे। उन्हें आज भी वैदिक सनातन धर्म के रक्षक के रूप में माना जाता है।

राजस्थान जहां अपने वीरत्व, साहस, पराक्रम के लिए जाना जाता है वहां हिन्दू धर्म के विभिन्न समुदायों, पंथों की भी पुण्यस्थली रहा। इस भूमि पर प्रसिद्ध गोगा जी से लेकर तेजा जी (12 शताब्दी), पाबूजी (तेरहवीं शताब्दी), पीपाजी (चौदहवीं शताब्दी),

मालिननाथ व रामदेवाजी (चौदहवीं शताब्दी), जम्बेश्वर (16वीं शताब्दी), मीराबाई (16वीं शताब्दी), दादू दयाल व लाल दास (16वीं शताब्दी) तथा नागरीदास (18वीं शताब्दी) आदि प्रत्येक युग में धार्मिक भक्तों तथा सन्तों का आविर्भाव हुआ।

गोगा जी चुरु के चौहान सामन्त थे। इनका जीवनकाल (935-1025 ई.) था। इतिहास में इनका स्थान दो वैशिष्ट्य से माना जाता है। वे प्रसिद्ध गो भक्त थे तथा उसकी रक्षा के लिए सर्वस्व त्याग के लिए प्रतिबद्ध रहते थे। साथ ही उन्होंने अपने परिवार सहित मुसलमानों का विशेषकर महमूद गजनवी के भारत आक्रमण के समय घोर प्रतिरोध किया था। 90 वर्षीय गोगा बापा ने अपने पुत्र, पौत्रों तथा प्रपोत्र सहित महमूद गजनवी का मार्ग ही अवरुद्ध न किया बल्कि बाद में गोगा के 65 वर्षीय ज्येष्ठ पुत्र सज्जन चौहान ने बदला लेने के लिए अपने को जैसलमेर का एक जागीरदार बताकर, गजनी की सेना को रेगिस्तान में सीधे रास्ते में मरुस्थल पार करवाने को कहा था जो चार दिन की यात्रा के बाद भयानक अंधड़ रेगिस्तान में फंस गई थी। वीर चौहान ने भी वहीं मरु समाधि ली थी। अतः समस्त उत्तर भारत में गोगा बापा तथा उनके बलिदान की अमर कथा प्रचलित है। उनकी स्मृति में प्रति वर्ष गोगामढ़ी पर भाद्रपद कृष्ण नवमी पर मेला लगता है। सम्भवतः फिरोज तुगलक के काल में किसी इनके वंशज कर्मचन्द ने दबाव में आकर मुस्लिम धर्म अपनाया। तभी से उन्हें गोगावीर के बजाय गोगापीर कहने की भ्रांति जानबूझकर प्रचलित की गयी। परन्तु यह ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर गलत है। आज भी मंदिर का स्वरूप मस्जिदनुमा करके तथा समाधि का स्वरूप कब्रनुमा है। वस्तुतः गोगा जी व उनके परिवार का हिन्दू धर्म, गऊ माता तथा महमूद गजनवी से सोमनाथ की रक्षार्थ युद्ध करते हुए बलिदान हुआ था।

गोगा जी की भांति तेजा जी (जन्म 1239 ई.) ने जो नागौर के खण्डनाल ग्राम के थे गऊ रक्षा के लिये अपना बलिदान दिया था, जिनकी स्मृति में आज भी एक पशु

मेला लगता है तथा उन्हें एक घोड़े पर सवार तथा हाथ में तलवार लिये दिखलाया गया है। पाबू जी एक राठौर सामन्त थे, जो अपने विवाह के अवसर पर, उसे बीच में ही छोड़कर गायों की रक्षा के लिए मुसलमानों से लड़ने चल पड़े थे तथा अपना बलिदान दिया था। आज भी उन्हें एक स्थानीय देवता के रूप में महिलाओं तथा गायों का रक्षक माना जाता है। गागरोन (कोटा) के शासक पीपा जी (जन्म 1375 ई.) जो चौहान राजपूत थे उन्होंने फिरोज तुगलक की एक विशाल सेना को पराजित किया था। कुछ काल बाद वे सन्त रामानन्द के शिष्य बन गये थे। उन्हें राजस्थान में जगत गुरु पीपाचार्य के रूप में पूजा गया। मालिननाथ जो मारवाड के शासक रावल सालका के पुत्र थे, फिरोज तुगलक की सेना के साथ युद्ध किया था। साथ ही वे विष्णु के महान भक्त तथा हरि कीर्तनों के संगठक थे। राम देवाजी भी उनके समकालीन थे जो तोमर राजपूत थे उन्होंने गरीबों की रक्षार्थ तथा तत्कालीन अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष किया। उनके रामद्वारे नाम से कई मंदिर बनाये गए।

15वीं तथा 16वीं शताब्दी में भी राजस्थान में भक्ति की अपूर्व परम्परा चलती रही। इसी काल में पीपासर (नागौर) के सामन्त जम्बा जी (1441-1525 ई.) हुए। वे एक पवार (परमार) राजपूत थे तथा लोहित जी के पुत्र थे। उन्होंने गहन चिंतन के बाद जीवन में 29 सिद्धांतों का प्रतिपादन किया जो वस्तुतः पर्यावरण की रक्षा के लिए सर्वोत्तम कहे जा सकते हैं। उनके द्वारा स्थापित सम्प्रदाय बिशनोई सम्प्रदाय कहलाता है।

मध्यकाल में न केवल राजस्थान बल्कि सम्पूर्ण भारत में इतनी ईश्वर समर्पित कोई भारतीय महिला ऐसी न हुई जितना मीरा बाई। राजस्थान के जोधपुर राज्य के संस्थापक राजा जोधा जी राठौर थे। इनके पुत्र राव दूदा जी को मेड़ता की जागीर मिली थी। मीराबाई इन्हीं राव के पुत्र रत्नसिंह की पुत्री थी। इनका जन्म 1498 ई. में कुडकी नाम ग्राम में हुआ। बचपन में इनके माता-पिता की मृत्यु हो गई थी। ये अपने पितामह राव

दूदाजी के पास आकर रहने लगी थी। परन्तु पितामह के मरने पर उनके पुत्र वीरम देव ने इनका विवाह चित्तौड़ के सिसौदिया वंश के प्रतापी राजा राणा सांगा के सबसे बड़े लड़के भोजराज से कर दिया था। दुर्भाग्य से दस वर्ष पश्चात् मीरा के पति का भी स्वर्गवास हो गया।

मीराबाई अपने दादा से मिली, श्रीकृष्ण की पूजा और आराधना में पूरी तरह समर्पण भाव से लग गई। उनके स्वरचित भक्तिपूर्ण भजनों की गूंज दूर-दूर सुनाई देने लगी। परन्तु उनके कष्टों का साया जीवन भर उन पर छाया रहा। मीरा पर राजसी नियमों का उल्लंघन कर साधु सन्तों से मिलना जन साधारण में भक्ति गीत गाना तथा नाचना राज परिवार को न भाया। भोजराज के भाई विक्रमजीत ने मीरा को मारने के लिये कई षडयन्त्र किये, कभी विषैले नागकी मंजूषा, कभी विष का प्याला भिजवाया, परन्तु इस प्रभु की दीवानी का बाल बांका न हुआ। आखिर में असहाय मीरा अपनी सहेलियों ललिता, उदा के साथ चित्तौड़ से पैदल ही पुष्कर होती हुई वृंदावन पहुंची। कुछ दिनों बाद मीरा द्वारिका गई। वहीं 1546 ई. में उनका शरीर पूरा हुआ। मीरा के भावपूर्ण भजन इतिहास में अमर हो गए जो आज भी किसी भी भक्त, साधक को द्रवित करते हैं।

राजस्थान में दादू दयाल (1524-1603 ई.) एक अत्यन्त प्रसिद्ध प्रभावी तथा तेजस्वी सन्त थे। लोग उन्हें 'राजस्थान का कबीर' कहते हैं। उनकी अपने जीवनकाल में अनेक संतों तथा भक्तों से भेंट हुई। सम्राट अकबर से भी उनकी भेंट हुई। उनकी प्रेरणा से दादू पंथी की स्थापना हुई जिसमें रज्जब, उल्सार, गरीबदास, बावन, जयगोपाल जैसों ने अपनाया। उसी काल में लालदास (1540-1648 ई.) हुए जो मूलतः एक मुस्लिम मेव थे, पर वे हिन्दू भक्त बन गये थे। उन्होंने अपना नाम लालदास रख लिया था।

जहां भगवान सोमनाथ का मंदिर गुजरात की देन है, वहां भक्त नरसी मेहता भी उसकी अद्वितीय देन हैं। 15वीं शताब्दी में इनका जन्म हुआ। इनके पिता कृष्णदास

गुजरात में गिरिनगर (जूनागढ़) जिले के कृतिपाड़ा में रहते थे। इनके दो पुत्र बंशीधर एवं नरसी थे, बचपन में माता-पिता का निधन हो जाने पर इनका पालन इनकी दादी ने ही किया। नरसी जन्म से गूंगे थे। इससे दादी उनके भविष्य के बारे में चिंतित रहती थी। वह नित्य मंदिर जाती तथा प्रभु से प्रार्थना करती। माना जाता है कि एक बार रास्ते में बैठे किसी सन्यासी को देख, दादी ने उनसे अपने पौत्र की पीड़ा सुनाई तथा गूंगेपन से छुटकारे के लिए आशीर्वाद देने को कहा। बच्चे को बुलाकर कान में कहा, 'राधेकृष्ण कहो।' तभी से नरसी बोलने लगे। नरसी के बोलने का समाचार चारों ओर फैल गया।

तभी से नरसी मेहता कृष्णभक्ति में पूर्णतः तन-मन से लग गये। भगवान कृष्ण के भजन के सम्मुख वह खाना-पीना भूल जाते। नरसी के जीवन की अनेक घटनायें प्रसिद्ध हैं। नरसी की आर्थिक स्थिति शोचनीय थी, परन्तु अपने द्वार से उन्होंने कभी किसी को रीते हाथों नहीं जाने दिया। यह प्रसिद्ध है कि भगवान द्वारकानाथ उनका मुनीम बनकर उनका समस्त ऋण चुकाते थे।

नरसी मेहता पढ़े-लिखे न थे। कभी पाठशाला न गये थे। परन्तु उन्होंने लगभग 5000 स्वर रचित पदों की रचना की थी। नागदमन, लीलादान, मानलीला, गोपिका वस्त्र हरण, सुदामा चरित्र, शामिलशा जो विवाह, मामेरू आदि उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। नरसी मेहता का यह पद "वैष्णव जन तो तेणे कहिए, जे पीड़ पराई जाणे रे।" तो लोकप्रिय है अर्थात् "दूसरों की पीड़ा में जो दुःखानुभव करे, वही वैष्णव है। माना जाता है कि एक दिन कृष्ण भक्ति में मग्न करतल बजाते बजाते इनका देहावसान हुआ। संक्षेप में भगवद्विश्वास में उनका सम्पूर्ण जीवन तथा सम्पूर्ण दर्शन निहित है।

गुजरात में एक दूसरे प्रसिद्ध भक्त तथा गुरु प्राणनाथ स्वामी (1618-1694 ई.) हुए जो वीर छत्रसाल के मार्गदर्शक थे। इनका जन्म जामनगर में क्षत्रिय परिवार में हुआ। इनके पिता केशव ठाकुर, जामनगर राज्य के प्रधानमन्त्री थे। 12 वर्ष की आयु में

इनका सम्बन्ध प्रसिद्ध सन्त देवचंद से आया था। इन्होंने वेदों तथा पुराणों का अध्ययन किया। भारत का भ्रमण कर अत्याचारी मुगल सम्राट औरंगजेब के कुकृत्यों को प्रत्यक्ष देखा तथा सुना। वे इसके प्रतिकार के लिए भारत के विभिन्न स्थानों पर योग्य पराक्रमी प्राप्ति के लिये घूमे। आखिर बुन्देलखण्ड के छत्रसाल में उन्होंने वे सब आवश्यक गुण देखे।

स्वामी प्राणनाथ ने न केवल वैदिक एवं अन्य भारतीय शास्त्रों का अध्ययन किया बल्कि इस्लाम-यहूदी मतों का भी अध्ययन किया था। श्रीमदभागवत् के आधार पर कुरान की 'सनन्ध' नामक टीका लिखी थी। उन्होंने कई बार औरंगजेब से मिलना चाहा, पर सम्भवतः औरंगजेब उनसे शास्त्रार्थ करने में डरता था। स्वामी प्राणनाथ ने धर्मान्ध औरंगजेब से टक्कर लेने के लिए प्रत्येक घर से एक-एक युवक मांग कर धर्म रक्षा के लिए एक विशाल सेना एकत्रित की थी। इनके अनेक शिष्य थे। इन्होंने अपने गुरु देवचंद द्वारा स्थापित प्रणामी पंथ को संगठित किया तथा उसका विस्तार किया।

उत्तर भारत में गोस्वामी तुलसीदास को किसी परिचय की आवश्यकता नहीं है। उनका 'रामचरितमानस' हिन्दू परिवारों में सर्वाधिक पढ़ा जाने वाला ग्रन्थ है। बचपन से ही वे कठिन परिस्थितियों में पले थे, परन्तु उससे विचलित न हुए थे। नरहरि के सम्पर्क में आने पर उन्हें रामजीवन की विस्तृत जानकारी मिली थी। इनका विवाह हुआ, परन्तु शीघ्र ही पारिवारिक जीवन छोड़कर पूर्णतः रामभक्ति में लग गये थे। वे राम नाम में इतने तल्लीन हो गये कि उन्हें 'सियाराम मय सब जग जानी' लगने लगा था। गोस्वामी संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे परन्तु उन्होंने जनवाणी हिन्दी में अपने ग्रन्थों की रचना की। उनके ग्रन्थ हैं - श्री रामचरितमानस, विनयपत्रिका, श्री हनुमान चालीसा, कवितावली, पार्वतीमंगल, जानकी मंगल, बरवै रामायण, रामाज्ञा प्रश्न, वैराग्य संदीपनी, गीतावली, श्रीकृष्ण गीतावली, हनुमान बाहुक, रामलला नहछू, दोहावली।

उपरोक्त सभी ग्रन्थों में उनका रामचरितमानस तथा हनुमान चालीसा सर्वाधिक प्रभावी हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन पर भारतीय संस्कृति के आदर्श रूप में जनजीवन के कण-कण में व्याप्त है। भारत के राष्ट्रीय जागरण में इन ग्रन्थ की सर्वदा अमूल्य देन रही है।

उत्तर भारत के गिने चुने प्रसिद्ध मुस्लिम भक्तों में सर्वोपरि स्थान रसखान (1558-1618 ई.) का है जिनका असली नाम मियां इब्राहीम था, जो मूलतः दिल्ली के रहने वाले थे। विश्व में कोई ही ऐसा कृष्णभक्त होगा जो उनकी अनूठी भावपूर्ण कृष्ण भक्ति की कविताओं से परिचित न होगा। उन्होंने बल्लभाचार्य सम्प्रदाय के गोस्वामी विट्ठलनाथ से दीक्षा लेकर अपना सम्पूर्ण जीवन कृष्ण भक्ति में लीन कर दिया। वे गोस्वामी के 252 शिष्यों में से एक थे। उन्होंने अपनी रचनायें कविताओं तथा सवैयों के रूप में लिखीं। इनका संग्रह प्रेम वाटिका तथा सुजान रसखान के रूप में संकलित किया गया है। उन्होंने लगभग 310 छंदों की रचना की। उनका एक प्रसिद्ध प्रचलित छंद है -

“मानुष हो तो वही रसखान, बसौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन,
जो पशु हों तो कहा बस मेरौ, चरौं नित नन्द की धेनु मझारन।
पाहन हों तो वही गिरि कौ, जो धर्यौ कर छत्र पुरन्दर कारन,
जो खग हो तो बसेरौ करौं, नित कालिंदी कूल कदम्ब की डारन।।”

कवि रसखान द्वारा कृष्ण की बाल लीला का वर्णन महाकवि सूरदास को छोड़कर अन्यत्र दुर्लभ है। 1618 ई. में इनकी समाधि गोकुल से दो किलोमीटर पूर्व में है। समाधि परिसर में ही रसखान की बहिन ताज की भी समाधि है जिसने भी बल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षा लेकर अपना जीवन कृष्ण भक्ति में लगाया था।

महाराष्ट्र की भूमि सदैव भक्तों, सन्तों तथा गुरुओं की भूमि रही। जहां भक्तों ने

सम्पूर्ण क्षेत्र में धार्मिक प्रवृत्ति का संचार किया, वहां गुरुओं ने राष्ट्रीय प्रतिरोध को जन समाज को तैयार किया। महाराष्ट्र के भक्तों में सर्वप्रथम स्थान सन्त ज्ञानेश्वर (1275-1296 ई.) का है जिन्होंने अपने जीवन के कुल 21 वर्षों में भी कृष्णभक्ति का अद्भुत जागरण किया। श्री विठ्ठलपंत के तीन पुत्र निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर, सोपानदेव तथा एक पुत्री मुक्ताबाई थे। श्री विठ्ठलपंत ने सन्यास लेने के पश्चात् स्वामी रामानन्द की आज्ञा से पुनः गृहस्थ धर्म स्वीकार किया था परन्तु ब्राह्मणों के विरोध पर श्री विठ्ठलपंत ने अपनी पत्नी रुक्मिणी बाई सहित, प्रायश्चित्त के रूप में प्रयाग में जल समाधि ले ली थी। अत्यन्त गरीबी के कारण बालक बालक भिक्षा मांगकर अपना निर्वाह करते थे।

श्री ज्ञानेश्वरी का जन्म आलन्दी ग्राम में हुआ था। आलन्दी के ब्राह्मणों ने इन बालकों के लिए रहना कठिन कर दिया। इन पर यह शर्त लगा दी कि यदि पैठण के ब्राह्मण उनको यज्ञोपवीत का अधिकारी मान लें तो उन्हें स्वीकार कर लेंगे। वे चारों पैठण गये। वहां के ब्राह्मणों ने शुद्धि के काल भगवान की अनन्य भक्ति करने को कहा। परन्तु उन्हें यज्ञोपवीत का अधिकार न दिया।

चारों भाई-बहिन ने आज्ञा मानी तथा वे सभी ज्ञानी, भक्त तथा योगनिष्ठ हुए। ज्ञानेश्वर ने अपने बड़े भाई निवृत्तिनाथ से दीक्षा ली जिन्होंने उन्हें भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति करने का उपदेश दिया। पैठण में कुछ दुष्ट लोगों ने इन पर व्यंग्य किया तथा कहा कि यदि तुम सब में आत्मा को देखते हो, तो भैंसे से वेद पाठ कराओ। कहते हैं कि इससे पूर्व जब इस भैंसे को तीन डण्डे मारे तो ज्ञानेश्वर के शरीर पर तीन निशान बन गये। अतः जैसे ही ज्ञानेश्वर ने भैंसे के सिर पर हाथ रखा तो वह वेद वाक्य बोलने लगा। सभी ये देखकर हक्के-बक्के रह गये। तभी से वे संत ज्ञानेश्वर कहे जाने लगे। इस समय उनकी आयु कुल पन्द्रह वर्ष थी। उन्होंने श्रीमद्भगवत गीता पर टीका ज्ञानेश्वरी लिखी। इसके अलावा अमृतानुभव, चांगदेव पासष्टी, हरिपाठ, योग वशिष्ठ टीका तथा स्वात्म पत्र

लिखा। उन्होंने अपने भाइयों तथा बहिन के साथ आलन्दी से निकलकर कम्हाड़, सतपुड़ा, उज्जयिनी, प्रयाग से काशी पहुंचे। वे गया, वृंदावन, द्वारका, गिरवार, मारवाड होते हुए अन्त में पंढरपुर पहुंचे। कुल इक्कीस वर्ष की आयु में उन्होंने आलन्दी में ही महासमाधि ली। इसके एक वर्ष बाद ही निवृत्तिनाथ, सोपान देव व मुक्ताबाई का भी शरीर पूरा हो गया। उनके अनेक 'अभंग' आज भी बड़ी श्रद्धा तथा भक्ति से गाये जाते हैं। वे पंढरपुर के बारकरी भक्ति सम्प्रदाय के मुख्य प्रवर्तक थे³⁶ जिसका उनके भाईयों-बहन ने विस्तार किया।

सन्त ज्ञानेश्वर के ही समकालीन भक्त नामदेव (1270-1350 ई.) हुए। इनका जन्म पंढरपुर के निकट एक ग्राम में हुआ। इनके पिता दामाशेट एक छीपी थे तथा माता गोणाई थी। बाल्यकाल में इनका विवाह राजाई के साथ हुआ, परन्तु वे पारिवारिक जीवन को छोड़कर पंढरपुर चले गये थे। यहां पर उनकी भेंट श्री ज्ञानेश्वर के साथ बिठोबा सराफ, नरहरि स्वर्णकार, चोखामेला कुंभकार, सावंत माली से भी हुई थी। वे संत ज्ञानेश्वर के साथ तीर्थयात्रा पर गये थे तथा वापिस लौटते हुए बीकानेर के निकट कौलायत जी नामक स्थान पर संत ज्ञानेश्वर से योग सीखा था। श्री नामदेव के जीवन से जुड़ी अनेक चमत्कारी घटनायें प्रसिद्ध हैं। उदाहरण के लिए एक दिन जब उन्होंने रोटी बनाकर रखी, एक कुत्ता रोटियां लेकर भाग गया। नामदेव उसके पीछे-पीछे दौड़े, साथ में बोलते गये, 'अरे, रूखी मत खा, घी तो लगवा ले।'।

उन्होंने संत ज्ञानेश्वर के पश्चात् देश भ्रमण किया था। यह काल क्रूर गुलाम खिलजी तथा तुगलक शासकों का था। वे अनेक वर्षों पंजाब में भी रहे तथा पठानों के अत्याचारों को देखा। गुरु अर्जुन देव ने भक्त नामदेव की 63 रचनाओं को गुरु ग्रन्थ साहिब में स्थान दिया। 80 वर्ष की आयु में नामदेव जी ने पंढरपुर में विठ्ठल मंदिर के महाद्वार की सीढ़ी पर अपना शरीर त्यागा। इनकी कविताओं का संग्रह 'नामदेव की मुखबानी' के रूप

में है। संत नामदेव भी बारकरी भक्ति का संदेश पंजाब तक लेकर गए थे।

महाराष्ट्र के सन्तों में संत एकनाथ (1533-1599 ई.) का उच्च स्थान है। बचपन में ही उनके पिता सूर्यनारायण तथा माता रुक्मिणी देवी का देहांत हो गया था। पितामह चक्रपाणि ने उनका पालन पोषण किया। एकनाथ प्रारम्भ से ही कुशाग्र बुद्धि के थे। इनको अध्ययन के लिए देवगढ़ जनार्दन स्वामी के पास भेजा गया। 12 वर्ष की आयु में वे तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़े तथा 13 वर्ष तक यात्रा करके 25 वर्ष की आयु में लौटे। इसी काल में उन्होंने काशी में चतुश्लोकी भागवत की रचना की। पितामह चक्रपाणि तथा गुरु जनार्दन स्वामी की आज्ञा से उन्होंने गिरिजाबाई से विवाह किया जिससे एक पुत्र तथा दो पुत्रियां हुई।

वैदिक कर्मकाण्ड करते हुए उन्होंने सामाजिक समरसता का बड़ा महत्त्व दिया। तत्कालीन समाज में महाराष्ट्र में निम्न समझे जाने वाले म्हारों के साथ भोजन किया। नित्य प्रवचन सुनने वाली वैश्या को अपनी बेटी, जो स्वयं तपस्विनी बन गई। चोर भी इनके भक्त बन गये थे।

चतुश्लोकी भागवत के अलावा रुक्मिणी स्वयंवर, चिरंजीवी पद, भावार्थ रामायण और एकनाथी भागवत लिखी।

महाराष्ट्र में सन्त तुकाराम (1606-1650 ई.) को सन्त शिरोमणि माना जाता है। वे एक वैश्य परिवार में जन्मे थे तथा वे साधारण दुकानदार थे। इनका जन्म देहू ग्राम में हुआ था। वे भगवान विठ्ठल श्रीकृष्ण के परम भक्त थे। इनके कीर्तन भजन की ख्याति दूर-दूर तक फैली थी। उनके अनेक अभंग बहुत प्रसिद्ध हैं। उन्होंने लगभग 5000 अभंगों की रचना की।

उनके अभंगों ने राष्ट्रीय चेतना जगाई। वे शिवाजी महाराज के आध्यात्मिक

प्रेरक थे³⁷ तथा उन्हें गुरु के समान मानते थे। शिवाजी के साथ उनका मुख्य सम्पर्क 1646-1649 ई. के बीच हुआ जबकि शिवाजी स्वराज्य संस्थापन के लिए प्रयत्नशील थे।

वे राष्ट्रोत्थान के लिए धर्म तथा शक्ति का समन्वय के पक्षधर थे। शिवाजी ने अतुल धनराशि सहित संत तुकाराम को भी निमन्त्रण दिया। धन लौटाते हुए उन्होंने 9 अभंगों का एक पत्र³⁸ भी लिखा था। शिवाजी स्वयं उनसे मिलने लौह गांव गये और उनकी वाणी को सुनकर मुग्ध हो गये थे। कुछ दिनों तक सन्त तुकाराम की कथा सुनने वह नित्य पूना से जाने लगे। इसी अनन्य भक्ति के कारण उनमें वैराग्य की भावना आ गई थी, जो मां जीजाबाई के हस्ताक्षेप से छोड़नी पड़ी थी। सन्त तुकाराम के सिपाहे बाने के 11 अभंग हैं जिसमें उन्होंने वीरत्व के गुणों का वर्णन किया है। ये अभंग की रचना ऐसी है जो धर्मवीर तथा रणवीर दोनों पर लागू होती है। आज भी कोई भी उनके अभंग गाकर भावविभोर हो उठता है। संतों की दिव्य परम्परा में महाराष्ट्र में 'पंच प्राण' में संत ज्ञानेश्वर, संत नामदेव, संत एकनाथ, संत तुकाराम के पश्चात् समर्थ रामदास (1608-1681 ई.) का नाम बड़े सम्मान तथा गौरव से लिया जाता है। इतिहासकार राजवाडे के शब्दों में, "600 वर्षों में महाराष्ट्र में जिन महापुरुषों ने जन्म लिया उनमें से दो वीर पुरुषों - समर्थ रामदास स्वामी तथा छत्रपति शिवाजी महाराज की जीवनियां लिखी गई, उतनी किसी अन्य की नहीं।"⁴⁰

समर्थ गुरु रामदास जाम्ब ग्राम निवासी सूर्या जी पंत तथा राणुबाई की दूसरी सन्तान थे। इनका पहले नाम था नारायण। प्रारम्भ से इनका व्यक्तित्व तेजस्वी था तथा यह हनुमान के भक्त थे, वे हनुमान की तरह अविवाहित रहते, साधना में लग गये थे। बाद में राम को अपना इष्ट मानकर इन्होंने अपना नाम रामदास रख लिया था। इनके जीवन में भलाई से भरे अनेक चमत्कारी घटनाओं का वर्णन है जिन्हें यह राम की कृति मानते थे।

ये अनेक ग्रन्थों के रचियेता थे। इसमें सर्वाधिक प्रसिद्ध है 'दासबोध' जो उन्होंने एक ही रात्रि में बोलकर लिखा था। उन्होंने 'भ्रमण और भिक्षा' के मार्ग से सम्पूर्ण देश की यात्रा की तथा देश की परिस्थितियों का अवलोकन किया था। उन्होंने 'श्रीराम राम जय राम जय जय राम' का उद्घोष कर धर्म के प्रति आस्था व शत्रु के प्रति प्रतिकार की भावना जगाई थी।⁴¹ जिस समय शिवाजी स्वराज्य स्थापना के लिए प्रयासरत थे, समर्थ रामदास ने लगभग 1200 अखाड़े शक्ति केन्द्र स्थापित किये, जो शिवाजी की सफलताओं में बड़े सहायक सिद्ध हुए।

इतिहास में यह विवादास्पद है कि शिवाजी की समर्थ गुरु रामदास से पहली बार भेंट कब हुई। वास्तव में "समर्थ गुरु रामदास ने उनके (शिवाजी) भावों को राष्ट्रीयता और धार्मिकता की खराद पर चढ़ाकर चमका दिया था।"⁴² 'चिटनिस बखर' तथा शिवाजी दिग्विजय के अनुसार उनकी भेंट 1649 ई. में हुई जबकि कुछ आधुनिक लेखक 1672 ई. के आसपास मानते हैं⁴³, कुछ भी हो समर्थ गुरु रामदास शिवाजी के गुरु तथा प्रेरक थे। शिवाजी जब भी संयोग होता, समर्थ गुरु राम से गंभीर मंत्रणा करते थे। सम्भवतः अफजल खां की प्रकृतियों को जानते हुए उसे मित्रता के नाते मिलकर अवसर पाकर एकांत में उसका वध करने का मार्ग रामदास ने ही बतलाया था तथा इसे सुअवसर बतलाया।⁴⁴ शिवाजी के राज्याभिषेक के पश्चात् समर्थ गुरु रामदास ने 'आनन्द भुवन' नामक अपनी कविता में असीम प्रसन्नता का भाव व्यक्त किया है। समर्थ गुरु रामदास का दासबोध सदैव ही भारतीय जन मानस का पथ प्रदर्शन करता रहा है। उन्होंने एक ऐसी राष्ट्रीय भावना जगाई जो देश के स्वतन्त्रता सेनानियों के लिए प्रेरक रही।

दक्षिण भारत भी भक्ति आन्दोलन का केन्द्र रहा। कर्नाटक तथा आंध्र प्रदेश में संत बसवेश्वर (1131-1167 ई.) में कन्नड भाषा में भक्ति का प्रचार किया। वह शैव मत के संस्थापक थे। यह मत समाज में किसी प्रकार के भेदभाव को नहीं मानता।

बसेश्वर का जन्म कर्नाटक के बागेवाडी ग्राम (जिला बीजापुर) में हुआ था। इनके पिता का नाम नदिराज तथा माता का मदाम्बिका था। वृषभेश्वर शंकर की कृपा से उत्पन्न इनका नाम कन्नड़ में बसवेश्वर रखा। तत्कालीन कल्चुरी वंश के राजा बिज्जल का मन्त्री बलदेव ने इनके गुरु संगमेश्वर से जो उनका भी भक्त था अपनी लड़की का विवाह बसवेश्वर से करने तथा उसे कल्चुरी राज्य में नौकरी करने को कहा। बसवेश्वर ने गुरु की आज्ञा को स्वीकार कर ली। शीघ्र ही उन्होंने राज्य में यश तथा कीर्ति प्राप्त की। उन्होंने अनुभव मंडप नामक की एक संस्था की स्थापना की, जिसका उद्देश्य आध्यात्मिक प्रगति था। उनका अधिकतर समय शिव भक्ति में जाता था। इसी भांति कर्नाटक में पुरन्दरदास (16वीं शताब्दी) सन्त कवि हुए। ये माध्वाचार्य सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे। वे शिवभक्त थे।

संक्षेप में भक्ति आंदोलन एक विशुद्ध हिन्दू आन्दोलन था जो मोहम्मद बिन कासिम के आक्रमण से लेकर समस्त मुस्लिम आक्रांताओं के सतत संघर्ष के रूप में चलता रहा। इससे पूर्व भारत को कभी ऐसे सतत आन्दोलन की आवश्यकता नहीं पड़ी। रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, माध्वाचार्य तथा बल्लभाचार्य जैसे महान आचार्य इस काल में हुए। महाराष्ट्र तथा गुजरात में यह भक्ति की लहर संत नामदेव, संत ज्ञानेश्वर, संत एकनाथ तथा बाद में सन्त तुकाराम तथा समर्थ गुरु रामदास द्वारा प्रभावित हुई। असम में शंकरदेव, बंगाल में चैतन्य महाप्रभु तथा कश्मीर में लल्लेश्वरी ने इसको नवचेतना दी। पंजाब में गुरुनानक देव, गुरु गोविन्द तथा अन्य गुरुओं ने एक नव जागृति लाई। उत्तर भारत में स्वामी रामानन्द, कबीर, रविदास, मीरा, रसखान ने इसे नवजीवन दिया।

इस आन्दोलन ने हिन्दू समाज में धार्मिक आस्था तथा विश्वास जगाया। व्यक्ति तथा धर्म के महत्व को बतलाया। गुरु की महानता का बोध हुआ। अनेक सामाजिक कुरीतियों को दूर करने तथा सामाजिक सुधारों की ओर जनमानस को आकृष्ट किया।

अध्याय-चार

सन्दर्भ सूची

1. ए.एल. श्रीवास्तव, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ. 4-5
2. देखें, डा. ताराचन्द, इन्कुलेन्स आफ इस्लाम आन इंडियन कल्चर (इलाहाबाद, 1946)
3. जार्ज ग्रियर्सन, माडर्न वर्नाकुलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान (कोलकाता, 1889)
4. डा. राजेन्द्र सिंह कुशवाहा, ग्लिम्पसेस आफ भारतीय हिस्ट्री (दिल्ली, 2003), पृ. 235
5. विस्तार के लिए देखें आर.सी. मजूमदार (सम्पादक), द हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ द इंडियन पिपुल, भाग तीन (मुम्बई) पृ. 327-333; डा. राजेन्द्र सिंह कुशवाहा, पूर्व उद्धरित, पृ. 235; आचार्य सोहनलाल रामरंग, भारतभूमि का जाट (दिल्ली, 2006), पृ. 27-30
6. आचार्य सोहनलाल रामरंग, पूर्व उद्धरित, पृ. 26
7. डा. ताराचन्द, पूर्व उद्धरित
8. ए.बी. कीथ, हिस्ट्री आफ द संस्कृत लिटरेचर, पृ. 476
9. देखें, सतीशचन्द्र मित्रल, 'शंकराचार्य की ऐतिहासिकता', पाञ्चजन्य, 13 दिसम्बर, 2009
10. परमेश्वर नाथ मिश्र, अमिट काल रेखा सौरभ : भगवत्पाद भाष्यकार आद्य शंकराचार्य का आविर्भाव काल (पटना, 2000); उदयवीर शास्त्री, ऐज आफ शंकर, 1981; पी.एन. ओक, सम बलंडर्स आफ इंडियन हिस्ट्री, 1984, पृ. 211-225; के.वी. राव, द डेट आफ शंकर, द आर्गनाइजर, 26 जून 1988; एक लेखक ने अपने निष्कर्षों के आधार पर यह पहली शताब्दी ई. पूर्व के लगभग मानी है - देखें, एन. रामेशम, डेट आफ शंकर, भवन अनरल, 29 अप्रैल 1962, पृ. 52-56; ज्योतिर्मय शंकराचार्य की ऐतिहासिकता, जनसत्ता, 5 फरवरी 1991
11. आचार्य सोहनलाल रामरंग, पूर्व उद्धरित, पृ. 252-253
12. उमा पांडेय, भारत का सांस्कृतिक केन्द्र वाराणसी (दिल्ली, 1981), पृ. 61
13. विलियम जे. डायर, भक्ति इन कबीर (पटना, 1981), पृ. 113
14. डा. मुंशीराम शर्मा, भक्ति का विकास (वाराणसी, 1938), पृ. 352
15. डा. वंशीधर त्रिपाठी, 'राम के अनन्य भक्त स्वामी रामानन्द' दैनिक जागरण, 29 जनवरी 2008
16. प्रमुख 12 शिष्यों के विस्तृत वर्णन के लिए देखें गीता प्रेस, गोरखपुर का भक्ति अंक तथा अवतार कथांक तथा भक्तमाल
17. विलियम जे. डायर, पूर्व उद्धरित, पृ. 14

सन्तों ने जनभाषा का उपयोग करके जन समाज को आन्दोलित किया। इससे प्रांतीय भाषाओं का विकास हुआ। धीरे-धीरे हिन्दी, बंगला, मराठी, मिथिला आदि भाषाओं का विकास हुआ।⁴⁵ विपुल साहित्य का विकास तथा निर्माण हुआ।

धार्मिक आन्दोलन का सर्वाधिक प्रभाव इसके राष्ट्रीय जागरण तथा संघर्ष में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। अनेक सन्तों तथा भक्तों ने सम्पूर्ण देश की यात्रा कर, विशेषकर तीर्थस्थलों की, देश की राष्ट्रीय एकात्मता का बोध कराया। अनेक सन्तों ने मुसलमानों के अत्याचारों, क्रूर दमन की कटु आलोचना की। कुछ सन्त तो भारतीय शासकों के मार्गदर्शन बने। पंजाब में सिख धर्म तथा महाराष्ट्र में महाराष्ट्र धर्म महत्त्वपूर्ण शक्ति के रूप में उभरे जिन्होंने हिन्दू समाज का मुसलमानों के विरुद्ध प्रतिरोध तथा इसका नेतृत्व किया। भक्तों ने इन संघर्षों तथा उनसे जूझने की शक्ति दी। हिन्दुओं में आत्मविश्वास, आत्मसंतोष तथा सतत संघर्ष की प्रवृत्ति को विकसित किया। इन धार्मिक आन्दोलनों ने राष्ट्रीयता की भावना की जड़ों को सींचा जिससे देश की नव पीढ़ी पुनः देश के नेतृत्व के लिये आगे आई।

18. गुरु ग्रन्थ साहिब (अमृतसर), पृ. 1195
19. वी. श्रीवास्तव, रामानन्द सम्प्रदाय, पृ. 294
20. देखिये, परमानन्द तिवारी द्वारा सम्पादित कबीर ग्रन्थावली (इलाहाबाद, 1961)
21. डा. बलदेव वंशी, कबीर और आध्यात्मिक वैश्वीकरण, राष्ट्रीय सहारा, 21 मार्च 2001, पृ. 9
22. वही
23. वही
24. डा. दुर्गाशंकर मिश्र, कितने प्रासंगिक हैं कबीर, राष्ट्रधर्म, जून 2003
25. वही
26. डा. मोतीचन्द्र, काशी का इतिहास (मुम्बई, 1962), पृ. 201
27. बांके बिहारी, संत कबीरदास, भवन जनरल, 11 जून 1961, पृ. 22
28. विमांशु दिव्याल, होता अगर कबीर, राष्ट्रीय सहारा, 27 जून 1998
29. विस्तार के लिए देखें, भक्त माल
30. दीनदयालु गुप्ता, अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, दो भाग, इलाहाबाद, 1970
31. डा. राजेन्द्र दीक्षित, कृष्ण भक्त शंकरदेव, दैनिक जागरण, 4 नवम्बर 2003; विस्तार के लिए, ए नियोन शंकरदेव एण्ड द वैष्णव मूवमेन्ट्स इन असम (कोलकाता, 1978)
32. डा. राजेन्द्र सिंह कुशवाहा, पूर्व उद्धरित, पृ. 245
33. डा. राधाकृष्णन, नानक, भवन जनरल, दिसम्बर, 1961
34. डा. भाई महावीर, देखें, उनका लेख, द आर्गनाइजर, दिवाली अंक, 1964
35. लाबजेंग, गुरुनानक, हिन्दुस्तान टाइम्स, अगस्त 1961
36. विद्याधर मा. ताठे, 1000 वर्ष से चली आ रही है अनोखी वारकरी यात्रा, विट्टल विट्टल, विटोबा, पाञ्चजन्य, 5 अगस्त 2007
37. विस्तार के लिये देखें, सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय, महान संगठक शिवाजी (दिल्ली, 1977), पृ. 81-84
38. श्री लक्ष्मण रामचंद्र पांगारकर, श्री तुकाराम चरित्र (गोरखपुर, 1966), पृ. 502-504
39. विद्याधर मा. ताठे, पूर्व उद्धरित
40. तर्कतीर्थ लक्ष्मण शास्त्री (सं.) राजवाडे लेख संग्रह (संकीर्ण लेख, संग्रह)
41. सतीशचन्द्र मित्तल, मराठा शक्ति का उदय : महान संगठक शिवाजी, पृ. 85-92
42. राजेन्द्र सिंह गौड, दक्षिण के देशरत्न (इलाहाबाद, 1963), पृ. 15
43. लोकाकोव व केलुसकर, लाइफ आफ शिवाजी (मुम्बई, 1921), पृ. 538
44. म.तु. कुलकर्णी, राष्ट्रगुरु समर्थ जीवन दर्शन (दिल्ली, 1963), पृ. 92
45. डा. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास (1000-1707 ई.) पृ. 317; सतीशचन्द्र मित्तल, मुस्लिम शासक तथा भारतीय जन समाज (नई दिल्ली, 2007)

उपसंहार

राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद की संकल्पना भारतवर्ष में प्राचीनकाल से रही है। यह सर्वोच्च, भावात्मक, रागात्मक तथा समर्पण भाव का एक अटूट सम्बन्ध है। वेदों से हजारों वर्षों पूर्व से भारत में ऋषियों, मनीषियों ने श्रद्धापूर्वक इसका सतत यशोगान किया है। ऋग्वेद से लेकर वर्तमान में भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधियों, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द, लोकमान्य तिलक, श्री बंकिम चट्टोपाध्याय, श्री गुरुजी (माधवराव सदाशिराव गोलवलकर) आदि ने इसे सर्वोत्तम धर्म, भारत की अद्वितीय शक्ति तथा भारत माता के रूप में माना है।

यूरोपीयन जगत में इसका निर्माण उत्तर-मध्ययुग में हुआ। मुख्यतः इसका निर्माण 1789 ई. की विश्व प्रसिद्ध फ्रांस क्रांति तथा नेपालियन बोनापार्ट के युद्धों के परिणामस्वरूप हुआ। पाश्चात्य राष्ट्रीयता मुख्यतः वियना की सन्धि (1815 ई.) के समझौते या सहमति की उपज है। अंग्रेजों ने औपनिवेशिक अहंकारवश इसे 16वीं शताब्दी में पाश्चात्य जगत में अपने को इस चिन्तन का जन्मदाता भी कहा है।

पाश्चात्य चिन्तन से अत्याधिक प्रेरित कुछ भारतीय विद्वानों ने भारत में राष्ट्रीयता का चिन्तन तथा विकास 19वीं शताब्दी में ब्रिटिश शासन की देन माना है। सम्भवतः या तो उन्होंने अज्ञानतावश अथवा किसी प्रकार के दबाव के कारण यह भ्रम फैलाया। यह भी हो सकता है कि संस्कृत अथवा भारतीय भाषाओं के ज्ञान के अभाव में उनकी यह भ्रामक सोच बनी हो।

निःसन्देह भारत एक पुरातन राष्ट्र है। यह आध्यात्मिक, सांस्कृतिक तथा

सामूहिक चिन्तन तथा विवेक दृष्टि से प्लावित सनातन धर्म पर आधारित है। इसकी प्रमुखता राजनीतिक अथवा आर्थिक की बजाय इसकी सांस्कृतिक तथा सामाजिकता में है। यह धर्म (कर्तव्य) को प्रमुखता देता है। पाश्चात्य चिन्तन के राष्ट्रों के राज्यों की बजाय राज्यों का राष्ट्र सिद्धांत को स्वीकारता है।

भारतीय राष्ट्रीय संकल्पना मातृभूमि के प्रति अटूट प्रेम तथा पूर्ण समर्पण भाव पर टिकी हुई है। इसका विशद वर्णन अथर्ववेद तथा अन्य वैदिक एवं संस्कृत ग्रन्थों में उपलब्ध है। पुराण ग्रन्थों, वाल्मीकि रामायण, महाभारत तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थों में बार-बार इसकी भावपूर्ण विवेचना की गई है।

इसके साथ दूसरा भारतीय राष्ट्रीयता के चिन्तन का तत्व है सांस्कृतिक जीवन प्रणाली। इसमें स्थान-स्थान पर व्यक्ति की श्रेष्ठता को स्वीकार करते हुए भी सामूहिक जीवन के बोध तथा परमेष्ठि तक पहुंचने का इसे मार्ग सुझाया है। सांस्कृतिक जीवन में आध्यात्म तथा धर्म को सर्वोच्च स्थान दिया है। इसने धर्म को कभी भी संकुचित तथा हेय वस्तु न मानकर इसकी एक व्यापक अनुकरणीय व्याख्या की है। सनातन, शाश्वत्, विश्व आदि कहकर इसे विश्वव्यापी तथा लोक कल्याणकारी माना है। इसका विस्तृत विवेचन स्वामी विवेकानन्द, महामना मदनमोहन मालवीय, लोकमान्य तिलक तथा महात्मा गांधी जैसे राष्ट्र पुरुषों ने किया। सांस्कृतिक जीवन मूल्यों में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों - आध्यात्म, धर्म, नैतिकता, भाषा, साहित्य दर्शन के साथ सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक जीवन आदि का विस्तृत चिन्तन किया है तथा उसके व्यवहारिक स्वरूप तथा परस्पर समरसता तथा सहयोग की विवेचना की है।

प्राचीन भारतीय राष्ट्रीयता के चिन्तन तथा विकास को समझने के लिये हमें सर्वप्रथम ब्रिटिश प्रशासकों तथा ईसाई मिशनरियों द्वारा 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा 19वीं शताब्दी में फैलाये मनगढ़न्त भ्रमजालों तथा विसंगतियों से मुक्त होकर भारत के

अतीत में झांकना होगा। उसकी प्रतिछाया से अथवा प्रभावों से मुक्त हुए बिना हम भारत राष्ट्र की सही अवधारणा तथा विकास का दर्शन न कर सकेंगे।

वैदिक साहित्य में मानव जीवन के आदर्शों, जीवन मूल्यों तथा जीवन प्रणाली का विस्तृत वर्णन किया है। इसमें एक वैभव सम्पन्न, उन्नत, सुदृढ़ तथा आदर्श राष्ट्र का विस्तृत वर्णन है। स्थान-स्थान पर आदर्श राष्ट्र जीवन की संकल्पना में व्यक्तियों में विभिन्न गुणों की आवश्यकता बतलाते हुए, राष्ट्र के प्रति व्यक्ति के कर्तव्यों का बोध कराया गया है। वेदों में राष्ट्रीयता की सर्वकल्याणकारी दृष्टि है। चारों की वेदों में राष्ट्र की सजीव संकल्पना है। अथर्ववेद में तो राष्ट्र के सन्दर्भ में 63 प्रसिद्ध मन्त्र हैं जिन्हें 'वेदों का राष्ट्रीय गीत' कहा है। इसमें व्यक्ति ने 'पृथ्वी को माता' तथा अपने को उसका 'पुत्र' कहा है।

विद्वानों ने भारत राष्ट्र के निर्माण की कहानी की विवेचना प्रमाणिक तथा तथ्यपूर्ण ढंग से की है। प्राचीन ग्रन्थों में व्यक्ति, विवाह संस्था, परिवार व्यवस्था, ग्राम, ग्राम सभाओं से लेकर राष्ट्र समिति, मंत्रिमण्डल आदि के विकास का क्रम बड़े तर्कपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इसमें विभिन्न शासन प्रणालियों के प्रगति का वर्णन बड़ा सुन्दर विवेचन किया गया है। उत्तर वैदिक काल में जनपदों का विकास तथा महाभारत के पश्चात् अनेक छोटे-छोटे जनपदों का वर्णन है। इसी भाँति गणराज्यों की परम्परा प्राचीन है।

भारतीय राष्ट्र के विकास में समय-समय पर विदेशी आक्रमणकारियों, ईरानियों तथा यूनानियों ने देश की एकता, अखण्डता, सुदृढ़ता तथा समृद्धि को प्रभावित करने का प्रयास किया। परन्तु इनसे संघर्षों ने भारत की आन्तरिक सुरक्षा तथा दृढ़ता को अधिक बल प्रदान किया। इण्डो-पार्थियन, इण्डो-बैक्ट्रियन, कुषाण, शक तथा हूणों आदि के विशाल संख्या में आगमन पर भारत के लोगों ने न केवल सफलतापूर्वक उनका प्रतिरोध

किया बल्कि उनको भारतीय सांस्कृतिक ढाँचे में समरस तथा आत्मसात किया। गुप्तकालीन भारतीय राष्ट्र, विभिन्न क्षेत्रों में इसकी उन्नति का गौरवकाल था। दक्षिण भारत में भी राष्ट्र चिंतन की तीव्र गति से उन्नति हुई। परिणामस्वरूप विश्व में बृहत्तर सांस्कृतिक भारत की स्थापना हुई तथा भारत विश्वगुरु कहलाया अर्थात् विश्व का कोई भी स्थान ऐसा न बचा जिसने भारत से कुछ न कुछ सीखा न हो अथवा अपनाया या लिया न हो, जिसके आज भी विश्व के अनेक राष्ट्र भारत के ऋणी हैं।

भारत में इस्लाम का आक्रमण, भारतीय इतिहास की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा परिवर्तनकारी घटना रही। इससे पूर्व जो भी भारत पर आक्रमणकारी आये वे सभी भारत के सांस्कृतिक-सामाजिक जीवन से एकरस हो गये थे, परन्तु इस्लाम एक मजहबी आन्दोलन था जो प्रारम्भ से ही मजहबी साम्राज्यवादी भावना से ओतप्रोत था। उनके समूल राजनीतिक चिन्तन का मुख्य आधार मजहबी उन्माद रहा। इस्लाम राष्ट्रवाद या राष्ट्रीयता को स्वीकार नहीं करता, बल्कि वह राष्ट्रवाद को मजहब का सबसे बड़ा रोड़ा मानता है। इस्लाम के अनुसार मजहब तथा राष्ट्रवाद सर्वथा एक-दूसरे के विपरीत हैं। वे मजहब के अन्तर्गत जिहाद को अपनी साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों तथा आकांक्षाओं की पूर्ति का मार्ग मानते हैं।

मजहबी जुनून से प्रेरित हो मोहम्मद बिन कासिम, महमूद गजनी, सालार मसूद तथा मोहम्मद गोरी ने भारत की अतुल धनराशि को लूटने तथा इस्लाम का क्रूरतापूर्वक प्रचार तथा प्रसार करने के प्रयास किये, उन्होंने विशेषतः भारत के सांस्कृतिक गौरव स्थलों को नष्ट किया। मंदिर तथा शिक्षा केन्द्र ध्वंसित किये। परन्तु इनकी सुरक्षा के लिए राष्ट्रभक्त दाहिर, आनन्दपाल, राजा सुहेलदेव, पृथ्वीराज चौहान, चंदरबरदाई कवि आदि ने उत्कृष्ट प्रयत्न किये। 1206 ई. से पूर्व भारत में इस्लाम अपना राजनीतिक आधिपत्य स्थापित करने में असफल रहा।

भारत में इस्लाम के प्रचार-प्रसार में विदेशी देशों में प्रभुत्व की अपेक्षा बहुत देर लगी। अतः भारत में इस्लाम का दमनचक्र नर-संहार तथा क्रूर अत्याचार भी अधिक भीषण तथा घृणास्पद हुए। दिल्ली के तख्त पर क्रमशः गुलाम, खिलजी, तुगलक, सैयद तथा लोदी वंशों का राज्य स्थापित रहा। भारत के सांस्कृतिक जीवन को तहस-नहस किया गया। सोमनाथ जैसे पवित्र मंदिर को नष्ट किया गया। तक्षशिला तथा नालन्दा जैसे विश्वविद्यालयों तथा प्रमुख शिक्षा, संस्कार तथा सामंजस्य के केन्द्रों को नष्ट किया गया। तलवार तथा राक्षसी शक्ति के आधार पर नरसंहार किया गया। राष्ट्र की अस्मिता तथा सामूहिक जीवन प्रणाली को नष्ट करने के भरपूर प्रयत्न हुए। सार रूप में भारत में इस्लामीकरण तथा गुलामीकरण का प्रयत्न हुआ। परन्तु साथ ही साथ इसका तीव्र प्रतिरोध भी होता रहा। दिल्ली में कुछ समय के लिए देवलरानी तथा खुशरो खां का शासन - हिन्दू साम्राज्य के पुण्य उदय का एक चमत्कारिक तथा अत्यन्त गौरवमय प्रयास था। विजयनगर साम्राज्य की स्थापना, विश्व के इतिहास की सर्वोत्तम, विस्मयकारी तथा युगान्तरकारी घटना थी। सम्भवतः विश्व में यही एकमात्र राज्य था जिसकी सभी तत्कालीन यात्रियों, लेखकों तथा इतिहासकारों ने बिना किसी अपवाद के मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

भारत में मुगलों का शासनकाल (1526-1857 ई.) पठानों-अफगानों से भी अधिक क्रूर तथा अत्याचारी था। मुख्यतः यदि उसके प्रमुख शासकों (1526-1707 ई.) तक का विचार करें तथा उनके व्यक्तित्वों तथा क्रियाकलापों का विश्लेषण करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि जहां बाबर एक धर्मान्ध लुटेरा तथा हिमायूँ एक आलसी विलासी अफीमची, वहां अकबर एक धूर्त, धार्मिक दृष्टि से कुटिल राजनीतिज्ञ था। इसी भांति जहांगीर एक पियक्कड़ तथा शाहजहां एक कामी तथा औरंगजेब एक धर्मान्ध तथा स्वार्थी शासक था। इसके विपरीत भारत की अस्मिता तथा सांस्कृतिक जीवन मूल्यों तथा भारत

भूमि की स्वतन्त्रता के लिए राणा सांगा, हसन खां मेवाती, हेमचन्द्र विक्रमादित्य, रानी दुर्गावती, महाराणा प्रताप, शिवाजी तथा गुरुगोविंद सिंह ने प्राणपण से प्रयत्न किये थे।

विश्व के अन्य देशों की तुलना में भारत में सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टियों से हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध प्रायः अधिक कटुतापूर्ण रहे। जो आज भी देखे जा सकते हैं। 1300 सालों से साथ-साथ रहने पर भी उनके सम्बन्ध औपचारिक बने रहे। मुसलमान शासक प्रारम्भ से हिन्दुओं को दूसरी अथवा तीसरी श्रेणी का नागरिक समझते रहे। पठानों-अफगानों तथा मुगल शासकों के प्रयत्न भारत को दारुल हरब से दारुल इस्लाम बनाने के चलते रहे। वे भारत भूमि को कभी भी मातृभूमि या पुण्यभूमि के रूप में न अपना सके और न ही उन्होंने भारतीय परम्पराओं, भारतीय सांस्कृतिक वातावरण, रहन-सहन आदि को अपने से जोड़ा। इतनी लम्बी शताब्दियों के बाद साथ-साथ रहने के पश्चात् भी उनके भावपूर्ण सम्बन्ध न बन पाये।

यह विचारणीय है कि भारत के कुछ वामपंथी तथा मुस्लिम इतिहासकारों तथा तथाकथित सेकुलरवादी विद्वानों ने मुस्लिम शासकों, विशेषकर मुगल शासकों के बारे में अपने राजनैतिक हितों, अवसरवादी महत्वाकांक्षाओं तथा क्षुद्र स्वार्थी वश भ्रमजालपूर्ण तथा इतिहास का एक पक्षीय तथा पूर्वग्रसित वर्णन किया है। उन्होंने मुगल शासकों को 'राष्ट्रीय शासक' तथा मुगल काल को भारतीय इतिहास का 'स्वर्णयुग' माना है। साथ ही उन्होंने अकबर तथा औरंगजेब को एक विशुद्ध राष्ट्रवादी शासक तथा उनकी तुलना में स्वाधीनता अथवा मातृभूमि की रक्षा करने वालों, राष्ट्रभक्तों को एक अत्यन्त सीमित स्थान दिया है। प्रश्न है कि क्या कोई स्वाभिमानी, आत्मगौरव तथा तथ्यों के आधार पर चिंतन करने वाला भारतीय अथवा विद्यार्थी इन धिनौने, भद्दे तथा तर्करहित मज़ाकों को गंभीरता से लेगा?

भारत राष्ट्रभक्ति की गौरवमय परम्परा में भक्ति आन्दोलन एक विशुद्ध हिन्दू

आन्दोलन था जो भीषण मुस्लिम अत्याचारों तथा धर्मान्तरण के विरुद्ध एक संजीवनी बूटी की भांति प्रकट हुआ। 'इस्लाम अथवा मृत्यु' के साये में इस आन्दोलन ने एक नव आशा तथा आत्मविश्वास का भाव जागृत किया। यद्यपि भारत में विकसित भक्ति की यह धारा कोई नवीन न थी। उत्तर तथा दक्षिण भारत में इसकी परम्परा अति प्राचीन रही है। जहाँ प्राचीनकाल में आदि गुरु शंकराचार्य से लेकर आलवार तथा नयनामार में प्राचीन वैष्णव तथा शैव भक्ति की परम्परा रही, मध्यकाल में आचार्य रामानुज, निम्बार्क, माधव तथा वल्लभ ने इसे अक्षुण्ण बनाये रखा। वहाँ स्वामी रामानन्द ने अपने 12 शिष्यों तथा गोसाईं बिट्टलनाथ तथा उनके अष्टछाप के कवियों ने इसे उच्चतर शिखर तक पहुँचा दिया। कबीर, रैदास, तुलसी, सूर, रसखान ने उत्तर में, मीरा ने राजस्थान में, पंजाब में गुरुनानक व अन्य गुरुओं ने, असम में शंकरदेव, काश्मीर में लल्लेश्वरी, बंगाल में चैतन्य महाप्रभु तथा महाराष्ट्र में सन्त ज्ञानेश्वर, एकनाथ, नामदेव, तुकाराम तथा रामदास ने इसमें नवीन प्राण फूँके। भक्ति आन्दोलन से हिन्दू जीवन में नवीन चेतना तथा उमंग जागी तथा इसने राष्ट्रीय अस्थिरता के विरुद्ध सांस्कृतिक संघर्ष की लौ जलाई।

महान भक्ति आन्दोलन के संदर्भ में कुछ विद्वानों ने यह भ्रम भी फैलाया कि यह इस्लामी मजहब अथवा ईसाई मत से प्रभावग्रस्त था। जहाँ मुस्लिम तुष्टिकरण अथवा कांग्रेस में हिन्दू-मुस्लिम एकता की कांग्रेस नीति से प्रेरित होकर, प्रसिद्ध विद्वान इतिहासकार डा. ताराचन्द ने भारतीय संस्कृति पर इस्लाम के प्रभाव को मनमाने थोथे तर्कों से गढ़ डाला, वहाँ भारतीय संस्कृति में अलगाव तथा ईसाइयत का मुलम्मा चढ़ाने के लिए प्रसिद्ध ईसाई ग्रियसन ने भी इसे ईसाइयत से प्रभावित बतलाया जबकि यह पूर्णतः हिन्दू सांस्कृतिक आन्दोलन रहा जिसमें अपवाद रूप में इने गिने मुसलमानों को भी प्रभावित किया।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि भारत में राष्ट्रीयता का चिंतन चिर

पुरातन तथा चिर नवीन के रूप में रहा है। मातृभूमि तथा सांस्कृतिक जीवन मूल्यों की रक्षा के लिए यह संघर्ष अतीत से समूचे मुस्लिम शासन काल तक भारत में आगे भी अबाध रूप से चलता रहा। भारत एक राष्ट्र के रूप में सदैव चैतन्य तथा गरिमा से युक्त रहा है।

सन्दर्भ सूची

संस्कृत वाङ्मय

ऋग्वेद (हिन्दी अनुवाद डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) (सहारनपुर, 2008)

सामवेद (वही)

यजुर्वेद (वही)

अथर्ववेद (वही)

वाल्मीकि रामायण

महाभारत (शांति पर्व, भीष्म पर्व)

विष्णु पुराण

ईशोपनिषद्

ऐतरेय

मनुस्मृति

अनुवादित मूल ग्रन्थ (फारसी से हिन्दी अथवा अंग्रेजी में)

इस ग्रन्थ के लेखन में प्रमुख समकालीन लेखकों तथा कुछ इतिहासकारों आदि की रचनाओं का आवश्यकतानुसार उपयोग किया गया है।

Elliot and Downson (Edited), The History of India as told by its own Historians, the Muhammadan Period (originally published in 1867-1868) 8 Vols., Indian Reprint, 1990.

Beviredge (Translated) Babarnama or Tujak-i-Babri.

रिजवी एस.ए.ए. (अनुवाद), आदि तुर्ककालीन भारत (अलीगढ़, 1955)

....., तुगलककालीन भारत, भाग 1 (अलीगढ़, 1956)

....., तुगलककालीन भारत, भाग 2 (अलीगढ़, 1957)

....., उत्तर तैमूरकालीन भारत, भाग 1 (अलीगढ़, 1958)

....., उत्तर तैमूरकालीन भारत, भाग 2 (अलीगढ़, 1959)

....., मुगलकालीन भारत – बाबर (अलीगढ़, 1960)

श्रीवास्तव, डा. नरेन्द्र (अनुवाद) मुल्ला मुहम्मद कासिम हिन्दूशाह फरिश्ता-तारीख-ऐ-फरिश्ता (लखनऊ, 2003)

समाचार पत्र एवं पत्रिकाएं (अंग्रेजी तथा हिन्दी में)

Bhawan Journal

Dharam Patrika

The Indian Express

The Hindustan Times

The Organiser

Panchnand Shodh Journal

Young India

The Times of India

इतिहास दर्पण

दैनिक जागरण

जनसत्ता

पाञ्चजन्य

राष्ट्रधर्म

राष्ट्रीय सहारा

विश्व संवाद पत्रिका (लखनऊ)

प्रमुख विश्वकोष

Encyclopaedia Britannica

Encyclopaedia of Islam

Encyclopaedia of Social Sciences

Encyclopaedia Haryana

Books (English)

Ali, Dr. S.L., The Geography of Puranas (New Delhi, 1966)

Ali, Sayyid Amir, The Spirit of Islam

Aletakar, Dr. A.S., The Rastrakutas and their times

Arnold, Dr., The Khilafat

Arvindo, Sri, Speeches (Pondicherry, 1952)

....., The Idea of human unity (Pondicherry)

....., Sanatan Dharm Uttarpadda Speech (Pondicherry, 1972)

Ayenger, S. Krishnaswami, A class book of Indian History (Chennai, 1945)

Bagh, Dr. Dinkar Mukut, Historical Geography of India (Poona, 2000)

Banerjee, S.K., Himayun Badshaha (Oxford, 1938)

Bipin Chandra, Modern India (New Delhi, 2005 edi.)

Carr, E.H., Nationalism (Royal Institute of International Affairs) (New York, 1945)

Chatterson, Bishop Aiyere, The History of Gondwana

Ctesias, Persia (Ed. Gilmora)

Danino, Michel, The Indian Mind then and now (Canada, 2000)

Desai, A.R., Social Background of Indian Nationalism

Dev, Arun, The Story of Civilization, 2 Vols. (New Delhi, 1989)

Dyer, William J., Bhakti in Kabir (Patna, 1981)

Erskine, William, A History of India under the House of Timur - Babar and Himayun,
2 Vols. (London, 1854)

Frawley, Dr. David, Hinduism : The International Tradition

Golwalkar, M.S., Bunch of Thoughts (Bangloroo, 1966)

Gopal, Dr. Ram, Muslim Rule in India

Goyal, Sitaram, Perversion of India's Politics, Parlance (Delhi, 1984)

Grierson, Georg, The Modern Vernacular Literature of Hindustan (Kolkata, 1889)

Haig, Wolesey, The Cambridge History of India Vol. III (Cambridge, 1928)

Hayes, C.J.H., Nationalism : A Religion (New York, 1960)

Hunter, Sir W.W., A Brief History of the Indian People (London, 1895)

Husain, Dr. Yusuf, Glimpses of Medieval Indian Culture (Mumbai, 1957)

Jois, Justice M. Rama, Hindutva, Our Cultural Nationalism and Values of Life (Delhi,
1996)

Jones, Sir William (Ed.) Asiatic Studies, Vol. I (Kolkata, Rept. 1884)

Kaur, Smt. Surinder & Tapan Sanyal, Towards Communal Harmony : A Secular Em-
peror Babur (Sirhind, 1987)

Keith, A.B., History of the Sanskrit Literature

Kohn, Hans, The Idea of Nationalism (New York, 1950)

Khosla, Shyam & B.K. Kauthiyal (Ed.), Hindu Nationalism : A Contemporary Per-
spective (Chandigarh, 2009)

Kulkarni, V.B., Heroes who make History (Mumbai, 1967)

Kushwaha, Dr. Rajendra Singh, Glimpses of Bhartiya History (New Delhi, 2003)

Lanepoole, Staneley, Medieval India under Mohammedan Rule (712-1764 A.D.) (London, 1925)

Locacov & Kaslunkav, Life of Shivaji (Mumbai, 1921)

Loga, Hurst A.H., Hampi Ruins (Chennai, 1917)

Madhavan, Dr. T.M.S., Metaphysics in Hinduism (Patiala, 1969)

Majumdar, R.C., The Classical Accounts of India
.....(ed.), The History and Culture of Indian People, Vol. III (Mumbai)

Majumdar, Suhash, The Islamic Doctrine of Permanent War (New York, 1994)

Malik, S.K. Brigadier, The Quaranic Concept of War

Mishra, Dr. Ram Gopal, Indian Resistane to Early Muslim Invaders upto 1206 (Meerut)

Mishra, Dr. S.G., History of Freedom Movement in India (1857-1947) (New Delhi, 1991)

Mittal, Dr. S.C., India Distorted : A Study of British Historians on India, 3 Vols. (New Delhi, 1996-1998)

Mittal, Dr. Shiv Kumar, Sir Aurbindo's Integral Approach to Political Thought (New Delhi, 1981)

Mukhia, Harbans, Historians and Histriography during the reign of Akbar (Delhi, 1976)

Mududi, Maulana, Nationalism in India (Lahore, 1947)

Naipal, V.S., Beyond Belief : Islamic excursions among the converted Peoples (Penguin, 2001)

....., India : A Million Mutinies now (London, 1990)

NCERT Publication, Sanskrit, The Voice of India's Soul and Wisdom (New Delhi, 2001)

Nehru, Pt. Jawaharlal, The Discovery of India (New York, 1946)

Niyon, A., Sankardev and the Vaishnava Movements in Assam (Kolkata, 1978)

Nizami, Dr. K.A., Religious and Political Studies in Medieval Indian History.

Oak, P.N., Some Blunders of Indian History (Delhi, 1984)

Parender, Geoffery (ed.), A Illustrated History of World Religions (Great Britain, 1983)

Pipes, Daniel, In the Path of God, Islam and Political Power (New Delhi, 1981, Rept. 2001)

Plutarch, Life of Alexander

Pockhammer, William Von, India's Road to Nationhood, A Political History of Sub-Continent (New Delhi, 1981)

Prakash, Dr. Budh, Glimpses of Ancient Punjab (Patiala, 1966)

Prasad, Dr. Beni, History of Jahangir (Allahabad, 1930)

Prasad, Dr. Ishwari, History of Medieval India (Allahabad, 1933)

Proceedings, The Indian History Congress (Published in various years)

....., Punjab History Conference, Patiala (Published in various years)

Ramswarup, On Hinduism Reviews and Reflactions (New Delhi, 2000)

....., Understanding Islam through Hadis, Religious Faith or Fanaticism (New Delhi, 1983)

Ranade, Eknath, Rousing Call to Hindu Nation (Kolkata, 1963)

Report, Sanskrit Commission Report (New Delhi, 1957)

Rizvi, S.A.A., A History of Sufism in India upto 1600 A.D. (Delhi, 1978)

Roe, V.C., The History of Vijaynagar (Chennai, 1905)

Saletore, Social and Political life in Vijaynagar Empire, 2 Vols.
 Sarkar, Jadunath, Shivaji and His Times (3rd ed. Kolkata, 1928)
 , A Short History of Aurangzeb
 , Aurangzeb Vol. III
 Sharma, S.R., The Crescent in India (Agra, 1954)
 Shastri, Age of Sankar (1981)
 Shustrey, A.M.A., Outlines of Islamic Culture
 Sirkar, D.C. Iranians & Greeks in Ancient Punjab (Patiala, 1973)
 Sikri, S.L., Rise and Fulfillment of the Indian National Movement
 Souvneir 300th Anniversary of Coronation of Chatrapati Shivaji Maharaj (New Delhi, 1974)
 Smith, V.A., The early History of India (IVth ed. Rept Oxford, 1962)
 , The Oxford History of India (IInd ed., Oxford, 1923)
 , Ashoka the Buddhist Emperor of India (Indian ed. Bulandshahar, 1981)
 , Akbar the Great Mughal (1542-1605) (Ist ed. 1917, Rept. Delhi, 1962)
 Srivastava, Dr. A.L., The Mughal Empire (1526-1803) (Delhi, 1962)
 , The Delhi Sultanate (Agra, 1950)
 Strabo, Strabo's Geography (Trans. by Hamilton and Fallconner)
 Sugg, Richard, Mummies, Cannibals and Vampires (London, 2011)
 Swell, Robert, A Forgotten Empire : Vijaynagar, Contribution to History of India (London, 1900)
 Synder, Louis L., Varieties of Nationalism : A comparative Study (Illinois, 1976)
 Tara Chand, Dr., Influence of Islam on Indian Culture (Allahabad, 1946)

Thapar, Romila, A History of India, Vol I (Ist Ed. 1966, Rept 1984, Great Britain)
 , and Harbans Mukhia and Bipin Chandra, Communalism and the Writings of Indian History (Ist ed. 1967, Rept Delhi, 1972)
 Tod, Colonel, The Annals and Antiquities of Rajasthan, 3 Vols. (Rept New Delhi, 1971)
 Tripathi, R.P., Some Aspects of Muslim Administration (Allahabad, 1936)
 Vivekananda, Swami, The Complete Works of Swami Vivekananda, 8 Vols. (Kolkata, 1989) (Also available in Hindi)
 Vivian, L., Akbar (1932)
 William, Rushbrooke, Babur : An Empire Builder of the Sixteenth Century (London, 1918)

हिन्दी पुस्तकें

अग्रवाल, डा. वासुदेवशरण, पाणिनीकालीन भारत
 अरविन्द, श्री, उत्तरपाड़ा का भाषण (पांडिचेरी, 1983)
 , धर्म और जातीयता (बनारस, 1934)
 आयंगर, डा. कृष्णास्वामी, दक्षिण भारतीय इतिहास का आरम्भ
 आचार्य, श्रीराम शर्मा, समस्त विश्व को भारत के अजस अनुदान, दो भाग (मथुरा, 1990)
 काटदेर, इन्दू (सं.), भारतीय शिक्षण परम्परा एवं वर्तमान सन्दर्भ (अहमदाबाद, 2001)
 कुलकर्णी, मा.तु., राष्ट्रगुरु समर्थ रामदास का जीवन दर्शन (दिल्ली, 1963)
 गांधी, मोहनदास कर्मचंद, सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (अहमदाबाद, विभिन्न समय प्रकाशित)
 गुप्ता, दीनदयालु, अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, 2 भाग (इलाहाबाद, 1970)
 गुप्ता, बजरंग लाल, हिन्दू अर्थ चिन्तन (नागपुर, 5100 युगाब्द)
 गुरु ग्रन्थ साहिब (अमृतसर)
 गोलवलकर, एम.एस. (श्रीगुरुजी), श्रीगुरुजी समग्र दर्शन, 7 खण्ड (नागपुर, 1974-1978)
 गौड, राजेन्द्र सिंह, दक्षिण के देशरत्न (इलाहाबाद, 1963)

- चन्द्र, डा. मोती, काशी का इतिहास (मुम्बई, 1962)
- चमनलाल, भिक्षु, हिन्दू अमेरिका
- चौहान, ओमप्रकाश, जाहवीर गोगा जी चौहान (उदयपुर, 2011)
- चौधरी, राधाकृष्ण, प्राचीन भारत का राजनीतिक और सामाजिक इतिहास (पटना, 1998)
- ठेंगडी, दत्तोपंत, संकेत रेखा (नई दिल्ली, 1981)
- तिवारी, परमानन्द (सं.), कबीर ग्रन्थावली (इलाहाबाद, 1961)
- दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय
- दुर्गादास, भारत कर्जन से पहले और उसके पश्चात् (1971)
- दूबे, डा. सत्यनारायण, आधुनिक राजनीतिक विचारधारयें (आगरा, 1989)
- नाहर, रतिभानुसिंह, पूर्व मध्यकालीन भारत
- पंडित, एम.पी., आधुनिक भारत के निर्माता, श्री अरविन्द (नई दिल्ली, 1985)
- पाण्डेय, उमा, भारत का सांस्कृतिक कोष (वाराणसी, 1981)
- पांगरकर, श्रीलक्ष्मण रामचन्द्र, श्री तुकाराम चरित्र (गोरखपुर, 1966)
- भारतीय प्रचार समिति, शासकीय राष्ट्र और सांस्कृतिक राष्ट्र (भूपाल, 1999)
- मित्तल, सतीशचन्द्र, मुस्लिम शासन तथा भारतीय जनसमाज (नई दिल्ली, 2007)
-, मराठा शक्ति का उदय, महान संगठक शिवाजी (दिल्ली, 1977)
-, अविस्मरणीय विजयनगर साम्राज्य एवं महाराजा कृष्णदेवराय (नई दिल्ली, 2009)
-, भारतीय राष्ट्र चिंतकों का वैचारिक दर्शन तथा इतिहास दृष्टि (हैदराबाद, 2001)
- मिश्र, परमेश्वर नाथ, अमिट कालरेखा सौरभ - भगवद्पाद भाष्यकार आद्य शंकराचार्य का आविर्भाव काल (पटना, 2001)
- याजदानी जी (सं.), दक्षिण का प्राचीन इतिहास
- रानाडे, एकनाथ (संकलन), उत्तिष्ठत जाग्रत (स्वामी विवेकानन्द का हिन्दूराष्ट्र को अमर सन्देश) (कानपुर, 1963)
- रामरंग, आचार्य सोहनलाल, भारत भूमि का भाट (दिल्ली, 2006)
- वेदालंकार, क्षीतीश, सातवेलकर, अभिनन्दन ग्रन्थ (दिल्ली, तिथि नहीं)
- विवेकानन्द, स्वामी, विवेकानन्द साहित्य, 10 भाग (कोलकाता, 1989)
- वेदवाचस्पति, प्रियव्रत, वेदों का राष्ट्रीय गीत
- शर्मा, डा. मुन्शीराम, भक्ति का विकास (वाराणसी, 1938)
- शर्मा, डा. रामविलास, इतिहास दर्शन
- शास्त्री चितराय, प्राचीन भारत स्थलकोष (पूना, 1969)
- शास्त्री, तर्कतीर्थ लक्ष्मण (संकलनकर्ता), राजवाड़े लेख संग्रह (संकीर्ण लेख संग्रह)
- सतीशचन्द्रा, मध्यकालीन भारत (नई दिल्ली, 1966 संस्करण)
- साठे, श्रीराम, भारतीय इतिहास माला राजनीति खण्ड, भाग 1 (नागपुर, 1982)
- सेन, जयदीप, भारत में जिहाद (नई दिल्ली, तिथि नहीं)
- हैनसांग, हैनसांग का भारत भ्रमण (अनुवाद ठाकुर प्रसाद शर्मा) (प्रयाग, 1929)
- हेबालकर, डा. शरद, कृवन्तो विश्वमार्यम (नई दिल्ली, 2010)